भवन्स बुक यूनिवर्सिटी

जय श्री लक्ष्मी

जयदेव सिंघानिया

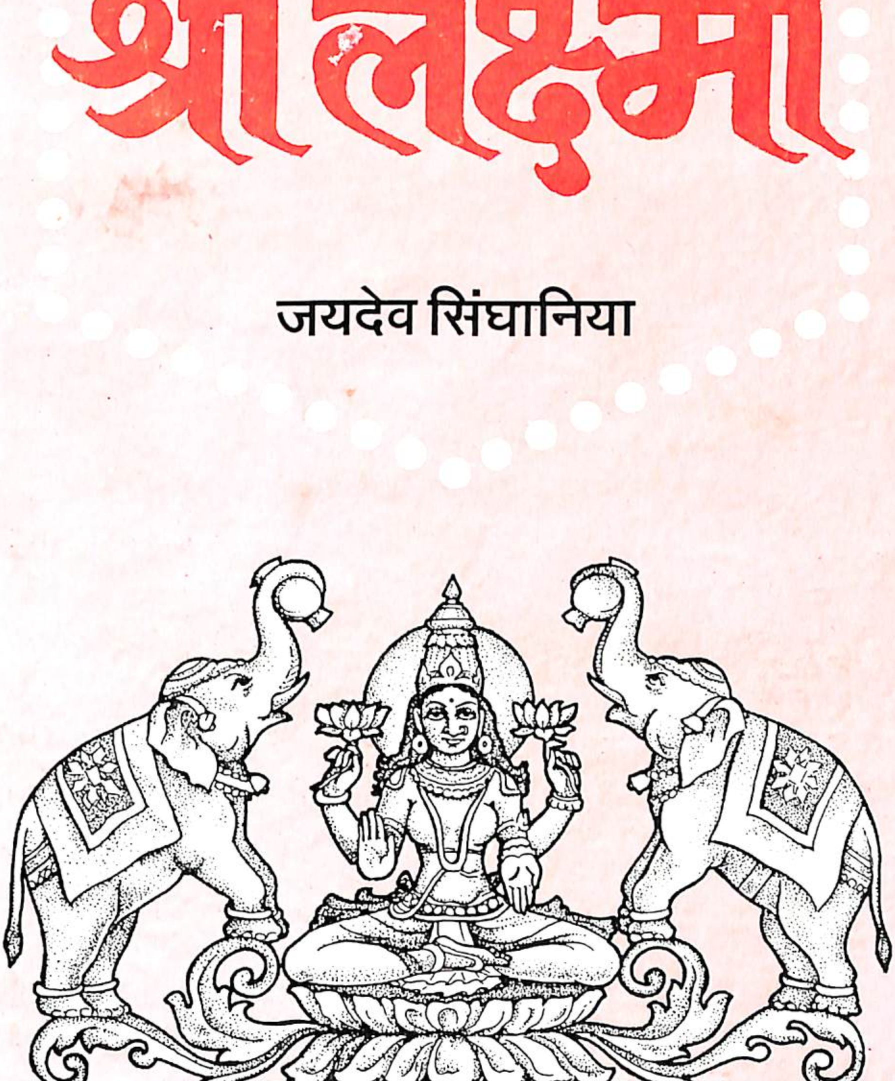

Bharatiya Vidya Bhavan

जय श्री लक्ष्मी

जयदेव सिंघानिया

Bharatiya Vidya Bhavan

श्रीं

ॐ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः।
कृष्णप्रियायै सारायै पद्मायै च नमो नमः।।

।। जय श्री लक्ष्मी ।।

जयदेव सिंघानिया

भारतीय विद्या भवन
कुलपति क. मा. मुन्शी मार्ग,
मुंबई - ४०० ००७

जय श्री लक्ष्मी

© लेखक : **जयदेव सिंघानिया**

प्रकाशक :

सु. रामकृष्णन

कार्यकारी सचिव

भारतीय विद्या भवन

क. मा. मुन्शी मार्ग,

मुंबई-४०० ००७

प्रथम संस्करण :

गणतंत्र दिवस

२६ जनवरी २००३

आवरण :

सत्यनारायण वडीशेरला

मूल्य : २०० रुपये

अक्षर संयोजन एवं मुद्रण

आरती चौहान

१६४-१६५/ए-१०४, श्रीप्रस्थ कॉम्प्लेक्स,

नालासोपारा (प.)-४०१२०३

JAY SHRI LAXMI

By JAIDEV SINGHANIA

।। अथ जय श्रीलक्ष्मी ।।

किसी भी देश या विशिष्ट व्यक्तित्व की भाँति प्रत्येक देवी या देवता का भी एक इतिहास होता है, एक परम्परा होती है, एक लोक विश्वास होता है एवं होती है एक विशिष्ट शक्ति-सम्पन्नता। धन-धान्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी के देवत्व का भी एक अतीत है, एक परम्परा है, एक लोक-विश्वास है और है देवी के देवत्व की विशिष्ट शक्ति सम्पन्नता। अतः देवी लक्ष्मी के देवत्व का पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिये देवी के वर्तमान स्वरूप को समझना ही पर्याप्त नहीं है। देवी के दिव्य-भव्य देवत्व का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिये, यह परम आवश्यक है कि युग-युगों में जो परिवर्तन-परिवर्धन देवी के देवत्व एवं उपासना पद्धतियों में होते आये हैं, उनकी भी जानकारी हमें प्राप्त हो। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देवी के देवत्व का ज्ञान प्राप्त होने से ही हम उनके (देवी के) देवत्व तथा उपासना के महत्त्व के वर्तमान स्वरूप का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

देवी के देवत्व की विशेषता एवं महत्ता का प्रथम दर्शन हमें वैदिक वाङ्मय के सुप्रसिद्ध सूक्त 'श्री सूक्त' में होता है। 'श्री सूक्त' परमात्मा की 'शक्ति' का स्तुतिपरक सूक्त है। परमात्मा की शक्ति की संज्ञा 'श्री सूक्त' में 'श्री' और 'लक्ष्मी' हैं तथा इन्हें एक ही देवी माना गया है। 'श्री सूक्त' में देवी श्री लक्ष्मी को सम्पत्ति और सौभाग्य की अधिष्ठात्री देवी के साथ-साथ उन्हें (श्री लक्ष्मी देवी) अन्न-धान्य से पूर्ण करने वाली 'अन्नपूर्णा' एवं भूमि की उर्वरता की वृद्धि करने वाली भी कहा गया है। - ('श्री सूक्त : परचिय, प्रतिपाद्य-विषय एवं माहात्म्य' शीर्षक अध्याय देखें)।

देवी श्री लक्ष्मी के देवत्व का विकसित रूप एवं उनके (देवी के) सगुण स्वरूप का सुदर्शन वैदिक काल के परवर्ती पौराणिक साहित्य में होता है एवं समुद्र-मंथन की प्रक्रिया में देवी श्री लक्ष्मी का प्राकट्य उनके देवत्व का चरम शिखर है।

'समुद्र-मंथन' की अद्‌भुत कथा प्रतीकात्मक है, जिसमें गूढ़ आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान-परक बोध-पाठ निहित है। 'समुद्र' शब्द का एक अर्थ है - 'वह जिसमें सभी प्राणी मोदपूर्वक रहें'। (समोदन्ते अस्मिन भूतानि) अर्थात् 'जगत्'। मानव अपनी प्रगति और सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के लिये जगत् रूपी समुद्र के प्राकृतिक तत्त्वों और उपादानों के रहस्यों को खोजने का प्रयास सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक करता आया है, करता रहेगा। 'मंथन' की यह प्रक्रिया सतत क्रियाशील है। मंथन की इस प्रक्रिया में उसने रत्नों रूपी अनेक वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कारों एवं अनुसंधानों में सफलता प्राप्त की है, जिनसे मानव-समाज लाभान्वित हुआ है तथा लक्ष्मी के आलोक का दर्शन उसे हुआ है। ('समुद्र मंथन और देवी लक्ष्मी का प्राकट्य' शीर्षक अध्याय देखें)।

जन साधारण में प्रचलित यह प्रवाद कि देवी सरस्वती और देवी लक्ष्मी में परस्पर वैमनस्य है, न केवल मिथ्या है, अपितु भ्रामक भी है। वस्तुतः देवी सरस्वती और देवी लक्ष्मी आदिशक्ति के दो (सात्विक और रजोगुणी) रूप हैं, अतः इनमें आपस में बैर-भाव होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। (इस संबंध में 'देवी लक्ष्मी और अन्य देव-गण' शीर्षक अध्याय के उपशीर्षक सं. ८ देवी सरस्वती और देवी लक्ष्मी देखें)।

धन-धान्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी और ज्ञान-विज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती - इन दोनों मातृ-शक्तियों को हिन्दी के महाकवि निराला ने एक-दूसरी की पूरक एवं अभिन्न माना है। निरालाजी ने अपने एक गीत 'जागो जीवन धनिके' में जीवन् में धन-प्रदात्री को जगाने का प्रयास किया है। जहाँ एक ओर विश्व भर के व्यापार / उद्योग की वणिके (व्यापार करने वाली) से निवेदन है कि वह 'बहु जीवनोपाय भर दो, घर' वहीं दूसरी ओर देवी सरस्वती से प्रार्थना है कि 'भारती! (सरस्वती) भारत को फिर दो वर, ज्ञान विपणि खनिके' अर्थात् ज्ञान के क्षेत्र में भी भारत का वर्चस्व हो। राष्ट्र की प्रगति के लिये निरालाजी ने इन दोनों देवियों के समन्वय को आवश्यक माना है। इनके समन्वय के कारण ही आज के युग में ज्ञान आधारित व्यापार / उद्योग उत्पाद या श्रम आधारित व्यापार / उद्योग से अपेक्षाकृत अधिक सफल एवं सम्पन्न हैं।

देवी श्री लक्ष्मी की कृपा से इस पुस्तक के लेखन एवं प्रकाशन के कार्यों में जिन महानुभावों का सहयोग और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, मैं उन सबका हृदय से आभार मानता हूँ। विशेषतया धार्मिक धारावाहिकों के सुप्रसिद्ध कथा लेखक श्री दर्शन लाड़ का अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने 'जय श्री लक्ष्मी' की पाण्डुलिपि अथ से इति तक पढ़कर,

इसके संबंध में 'प्राक्कथन' के रूप में दो शब्द लिखकर मुझे प्रोत्साहित किया है। अब जिन विद्वान मित्रों ने इस पुस्तक के लिये सामग्री एवं चित्र आदि जुटाने के कार्य में मुझे सहयोग दिया एवं अपने सुझाव दिये वे हैं — डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव (लखनऊ), प्रो. उदयभानु हंस (हिसार), श्री मदनमोहन शास्त्री (हिसार), नवनीत (हिन्दी मासिक) के संपादक डॉ. गिरिजाशंकर त्रिवेदी, श्री पुरुषोत्तम जाधव (भूतपूर्व डिप्युटी चेरिटी कमिश्नर, ग्रेटर मुंबई एवं सम्प्रति श्री महालक्ष्मी मंदिर, मुंबई के व्यवस्थापक) एवं श्रीमती उमा शर्मा तथा श्री देवेन्द्र जैन।

इस ग्रंथ लेखन में मेरे परिजनों, विशेषतया मेरे पुत्र विनोद कुमार और पत्नी श्रीमती गीताबाई ने मुझे पूर्ण सहकार दिया एवं इनके सहकार से यह कार्य सम्पन्न हो सका।

पुस्तक के परिशिष्ट में देवी श्री लक्ष्मी की उपासना से संबंधित स्तोत्र, कवच एवं ध्यान-श्लोक आदि (हिन्दी भावार्थ सहित) का समावेश किया गया है तथा संदर्भिका में उन पुस्तकों और पत्रिकाओं की सूची दी गई है, जिनके आधार एवं सहायता से इस पुस्तक का लेखन कार्य सम्भव हो सका। मैं इन पुस्तकों और पत्रिकाओं के लेखकों, प्रकाशकों एवं सम्पादकों का हार्दिक आभार मानता हूँ।

पुस्तक के प्रकाशन के लिये भारतीय विद्या भवन के कार्यकारी सचिव श्री सु. रामकृष्णन तथा सहायक रजिस्ट्रार श्री पी. व्ही. शंकरन् कुट्टी और मुद्रण एवं सज्जा के लिये सुश्री आरती चौहान का आभारी हूँ, जिन्होंने देवी श्री लक्ष्मी के प्रति परम श्रद्धास्पद भावना से इन कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया है।

अन्त में देवी सरस्वती की कृपा से लिखित एवं देवी श्री लक्ष्मी की कृपा से प्रकाशित यह ग्रंथ रूपी कमल पुष्प दोनों देवियों के चरणों में समर्पित करता हूँ।

— जयदेव सिंघानिया

२९-ए, बालाराम स्ट्रीट,
ग्रान्ट रोड, मुंबई-४०००००७

●

|| प्राक्कथन ||

'जय गणेश' तथा 'जय देवी सरस्वती' के पश्चात् 'जय श्री लक्ष्मी'। भारतीय संस्कृति के आधार-स्तंभ वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण-ग्रंथों तथा पुराणों के गहन अध्ययन एवं तलस्पर्शी अन्वेषण-अनुसंधान द्वारा भारतीय अस्मिता के 'नवनीत' को प्रस्तुत करने वाले श्री जयदेव सिंघानिया ने इन तीनों गौरव-ग्रंथों के माध्यम से वर्तमान तथा भावी पीढ़ी के लिए अमर कृतियों की रचना की है और 'जय श्री लक्ष्मी' इन तीनों में विशिष्ट है।

परन्तु यह प्रशंसा या संस्तुति नहीं, एक तथ्य का विनम्र उद्घोष है। जो कार्य कई शोध-ग्रंथकर्ता मिलकर भी नहीं कर पाते वह अकेले जयदेवजी ने अपनी शारीरिक असमर्थताओं के बावजूद कर दिखाया है।

'जय श्री लक्ष्मी' में वह सब कुछ है, जो देवी लक्ष्मी के विषय में प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य में उपलब्ध है। दूसरे शब्दों में इस ग्रंथ का पर्यायवाजी नाम 'वृहद लक्ष्मी कोश' भी हो सकता है।

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में चार पुरुषार्थों का महत्त्व सर्वविदित है - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इस मननीय ग्रंथ में देवी लक्ष्मी के प्रतीकात्मक स्वरूप का बार-बार उल्लेख किया गया है। धन-वैभव-समृद्धि इसी देवी लक्ष्मी के प्रतीक हैं और ये सब 'अर्थ' पुरुषार्थ में समाहित हो जाते हैं, परन्तु 'अर्थ' पुरुषार्थ भी 'धर्म' तथा 'काम' पुरुषार्थों के बिना कार्यकारी सिद्ध नहीं हो सकता। यही कारण है कि लक्ष्मी का उपयोग

दान-दक्षिणा रूपी 'धर्म' और जीवन की कामनाओं की पूर्ति के लिए 'काम' पुरुषार्थ का भी आधारभूत है।

श्री जयदेवजी सिंघानिया ने इस ग्रंथ को इक्कीस अध्यायों में विभाजित किया है। इसके प्रथम छह अध्यायों में देवी लक्ष्मी की सार्वभौमिकता और सर्वव्यापकता पर प्रकाश डाला गया है। महालक्ष्मी और लक्ष्मी की प्राकट्य कथाओं में विभिन्न पुराणों में लक्ष्मी की उत्पत्ति के वर्णन के अनुसार उनकी प्रतीकात्मक महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। इन कथाओं के अंत में देवी लक्ष्मी के समुद्र से प्रकट होने की लोकप्रिय कथा का विस्तार से वर्णन है। इन कथाओं से देवी लक्ष्मी के पौराणिक और सर्वमान्य रूप का विशद परिचय प्राप्त होता है। अगले कुछ अध्यायों में देवी लक्ष्मी के विविध अवतारों, उनके सगुण स्वरूप की विशिष्टताओं, उनकी प्रिय वस्तुओं तथा प्रतीकात्मक चिह्नों का विस्तार से परिचय दिया गया है, साथ ही विभिन्न देवताओं और देवियों से लक्ष्मी के सनातन संबंधों की व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है।

अंतिम कुछ अध्यायों में देवी लक्ष्मी के निवास-स्थान, पुरातत्त्वीय दृष्टि से लक्ष्मी के सगुण रूप की पुरातनता, ललित-साहित्य में देवी लक्ष्मी, लक्ष्मी-उपासना, लक्ष्मी समर्पित व्रतों और उत्सवों एवं देवी लक्ष्मी के मंदिरों का उल्लेख किया गया है। परिशिष्ट में महालक्ष्मी-लक्ष्मी संबंधी स्तोत्रों को भावार्थ सहित उद्धृत किया गया है।

इस प्रकार इस ग्रंथ का धार्मिक महत्त्व भी कम नहीं है, श्रद्धालुजन इसे नित्यपाठ में सम्मिलित कर सकते हैं। इनमें कुछ लक्ष्मी-स्तोत्रों का साहित्यिक महत्त्व भी है! आदि शंकराचार्यजी रचित 'अष्ट लक्ष्मी स्तोत्र' में 'आदिलक्ष्मी', 'धान्यलक्ष्मी', 'धैर्यलक्ष्मी', 'गजलक्ष्मी', 'संतान लक्ष्मी', 'विजयलक्ष्मी', 'विद्यालक्ष्मी', 'धनलक्ष्मी' का जो वर्णन है, उसमें जीवन और संसार की सभी समृद्धियों तथा सफलताओं का समावेश है। लक्ष्मी का व्यापक प्रतीकात्मक स्वरूप इन 'अष्ट लक्ष्मियों' में समाविष्ट हो जाता है।

आधुनिक संदर्भ में यदि देवी लक्ष्मी की महिमा पर दृष्टिपात किया जाए तो कई वैचारिक प्रश्न उपस्थित होते हैं; परन्तु श्री जयदेवजी रचित 'जय श्री लक्ष्मी' की महत्ता इन सभी तात्कालिक परिस्थितियों से ऊपर सर्वकालिक है। इस प्रेरक ग्रंथ के पठन-चिंतन-मनन से देवी लक्ष्मी के सनातन स्वरूप का ज्ञान होता है और हमारी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति गौरव की भावना विकसित होती है।

मैं कामना करता हूँ कि श्री जयदेवजी का यह श्रेष्ठ प्रयास केवल पुस्तकालयों की शोभा बनकर न रहा जाए, अपितु इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हो ताकि हम हमारी सांस्कृतिक अस्मिता की प्रतीक देवी लक्ष्मी की महानता को मान्य करके धन-प्राप्ति को नैतिकता और श्रेष्ठ विचारों से जोड़कर अपने जीवन का आदर्श निर्धारित करें।

एक बार पुनः श्री जयदेवजी सिंघानिया के इस महान प्रयास के लिए उन्हें साधुवाद प्रेषित करता हूँ।

—दर्शन लाड़

'सम्यक दर्शन',
बी-२७/१०५, सुंदर नगर,
कालीना, मुंबई-४०००९८

•

।। जयदेव सिंघानिया ।।

आपके प्रपितामह श्री गुलराज सिंघानिया जिविकोपार्जनार्थ मुंबई आये और व्यापार शुरू किया तथा ईस्वी सन् १८५२ में अपनी दुकान (ऑफिस) का मुहूर्त किया, जिसे उनके पुत्र श्री जगन्नाथ सिंघानिया ने बढ़ाया और तभी से यह परिवार मुंबई से जुड़ा है। श्री जयदेव सिंघानिया का जन्म दिनांक १२ सितम्बर १९२१ के दिन राजस्थान के फतेहपुर (शेखावाटी) में हुआ, लेकिन आपकी शिक्षा मुंबई के मारवाड़ी कमर्शियल हाई स्कूल एवं सेंट जेवियर्स कॉलेज में हुई। मुंबई विश्वविद्यालय से सन् १९४२ में 'इन्टरमीजियट' की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आप गवर्नमेंट लॉ कॉलेज में भर्ती हुए, लेकिन अगस्त १९४२ में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान कॉलेज छोड़ दिया। बाद में सन् १९४५ में बी. ए. की परीक्षा दी और कुछ वर्ष इंडिया युनाइटेड मिल्स में कार्य किया एवं सन् १९५३ में बम्बई अस्पताल ट्रस्ट के मैनेजर पद पर नियुक्त किये गये तथा इस पद पर जनवरी १९५८ तक कार्य किया। आपने नौकरी के साथ अध्ययन करते हुए, सन् १९५३ में एम. ए. (इतिहास व राजनीति) किया तथा सन् १९५५ में एल-एल. बी. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। अगस्त १९५८ से आप बम्बई हाई कोर्ट के एडवोकेट के रूप में तथा अप्रैल १९८९ से महाराष्ट्र प्रशासन द्वारा नियुक्त 'नोटरी पब्लिक' के रूप में कार्यरत हैं। आपने के. सी. लॉ कॉलेज (१९६७-६८) तथा मुंबई विश्वविद्यालय (स्नातकोत्तर विधि विभाग) (१९६८-७०) में पार्ट-टाइम लेक्चरर के रूप में अध्यापन कार्य भी किया है।

बाल्यकाल से ही श्री सिंघानिया को सार्वजनिक कार्यों में सक्रिय भाग लेने का शौक था। मारवाड़ी कमर्शियल हाई स्कूल के छात्र संघ के आप अध्यक्ष तथा सन् १९४२ में कांग्रेस के विद्यार्थी संगठन 'बम्बई स्टुडेन्टस् युनियन' की कार्य समिति के आप सदस्य

थे। अगस्त आन्दोलन के समय कांग्रेस के साहित्य को बांटते थे तथा जेलों में बंद स्वातंत्र्य-सैनिकों के परिवारों से संपर्क रखकर उनकी सहायता करते थे। सन् १९४४ में सेंट जेवियर्स कॉलेज में आपके प्रयत्नों से हिन्दी साहित्य मंडल की स्थापना हुई तथा जिसके आप प्रथम महामंत्री निर्वाचित किये गए।

आपके पिताश्री युधिष्ठिरप्रसाद सिंघानिया साहित्य-प्रेमी थे, उन्हें विशारद एवं साहित्य-शिरोमणि की उपाधि प्रदान की गई थी। आपको पैतृकदाय के रूप में बाल्यकाल से ही हिन्दी भाषा और साहित्य के संवर्धन में रुचि रही है। सन् १९४१ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) ने आपको 'विशारद' की उपाधि तथा सन् १९९५ में विक्रमशीला हिन्दी विद्यापीठ ने 'विद्यारावस्पति' (पी-एच. डी.) की मानद् उपाधि प्रदान की है।

राजस्थानी समाज की प्रमुख संस्था 'मारवाड़ी सम्मेलन' मुम्बई के आप आजीवन सदस्य हैं। सन् १९४२ से ही इस संस्था से आपका सक्रिय लगाव रहा है तथा सम्मेलन द्वारा संचालित हिन्दी पुस्तकालय, सीताराम पोद्दार बालिका विद्यालय तथा श्रीमती भागीरथीबाई मानमल रूइया गर्ल्स कॉलेज एवं संस्था की सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेते रहे हैं। आप वर्ष १९५५-५६ एवं १९५६-५७ में मारवाड़ी सम्मेलन की सांस्कृतिक समिति के संजोयक रहे। वर्ष १९५७ से १९६० तक सीताराम पोद्दार बालिका विद्यालय के महामंत्री एवं १९६०-६१ तथा १९६४ से १९६७ एवं वर्ष १९८०-८१ में मारवाड़ी सम्मेलन के प्रधानमंत्री पद पर तथा सन् १९६७ से १९७० तक इस संस्था के उपाध्यक्ष पद पर कार्य किया है। जब आप सन् १९५८ में सीताराम पोद्दार बालिका विद्यालय के मंत्री थे, तब आपने विद्यालय में जुलाई १९५८ में एस. एन. डी. टी. महिला विश्वविद्यालय की बी. ए. की परीक्षा हिन्दी माध्यम से दी जा सके, इसके लिये मार्गदर्शनी कक्षाएँ प्रारम्भ की तथा दो वर्ष बाद जून १९६० में विश्वविद्यालय ने इन कक्षाओं को मान्यता प्रदान कर दी तथा जून १९६३ में नाम बदल कर श्रीमती भागीरथीबाई मानमल रूइया गर्ल्स कॉलेज किया गया। आज भी यह महाविद्यालय हिन्दी माध्यम से महाविद्यालयीन शिक्षा देने वाला मुम्बई महानगर में इकलौता महाविद्यालय है। मार्च १९६४ में सम्मेलन की स्वर्ण जयंती पर प्रकाशित 'स्मृति-ग्रंथ' में महाविद्यालय की स्थापना के संदर्भ में यह उल्लेख किया गया है कि "सन् १९५७-५८ के सत्र से एक नवीन प्रयोग का शुभारम्भ हुआ, जिसकी कल्पना एवं साकारता श्री जयदेव सिंघानिया के अहर्निश प्रयत्नों ही से संभव हो सकी।" - (मारवाड़ी सम्मेलन, स्वर्ण जयंती स्मृति-ग्रंथ, पृ. ३७)। मारवाड़ी सम्मेलन की मुखपत्रिका

'समाजवाणी' का सम्पादन कार्य आपने सन् १९५९ से दिसम्बर १९६५ तक मानद् संपादक के रूप में निष्ठापूर्वक निभाया है।

श्री सिंघानिया सन् १९६६ से कांग्रेस के सक्रिय सदस्य अनेक वर्ष रहे हैं। मुगभाट-फणसवाड़ी ब्लॉक कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष एवं 'सी' वार्ड कांग्रेस कमेटी तथा बम्बई विभागीय कांग्रेस कमेटी की कार्यसमिति के आप सात वर्षों तक सदस्य रहे हैं। सन् १९६६ में आप नवीवाड़ी-जयहिंद इस्टेट (वार्ड नं. १२) से बृहन्मुंबई महानगरपालिका के ५ वर्षों के लिये पार्षद चुने गये थे। आप महानगरपालिका की शिक्षा एवं विधि समितियों के सदस्य निर्वाचित किए गए तथा महानगरपालिका में आपके कार्यों की प्रशंसा के रूप में अप्रैल १९६९ में आपको विधि समिति का अध्यक्ष चुना गया। महानगरपालिका में नागरिक समस्याओं के संबंध में आपका योगदान सराहनीय रहा है।

श्री सिंघानिया का सम्पर्क एस. एन. डी. टी. महिला विश्वविद्यालय से सन् १९५८ में हुआ तथा आप उसकी सीनेट के सदस्य तीन सत्रों (सन् १९७१-७२, १९७२-७३ एवं १९८०-८१) में रहे हैं।

बाल कल्याण के क्षेत्र की अग्रणी संस्था 'चिल्ड्रेन्स एड सोसायटी', जो डेविड सासून इन्डस्ट्रियल स्कूल (माहिम), उमरखाड़ी रिमाण्ड होम, चेम्बूर का बाल एवं मंद बुद्धि बालगृह (मानखुर्द) की संचालक संस्था है, के मानद मंत्री के रूप में श्री सिंघानिया सन् १९६५ में निर्वाचित हुए तथा इस पद पर सन् १९७५ तक कार्य किया। आपके मंत्रित्वकाल में इस संस्था के अंतर्गत चेम्बूर में 'बाल कल्याण नगरी' स्थापित करने की योजना बनी थी, जिसका शिलान्यास २२ अक्टूबर ७४ को तत्कालीन राष्ट्रपति श्री फखरूद्दीनअली अहमद ने किया था।

महिला कल्याण के क्षेत्र में सक्रिय कार्य कर रही संस्था 'एशोसियेशन फॉर सोशल हेल्थ इन इंडिया (महाराष्ट्र) के उपाध्यक्ष पद पर श्री सिंघानिया सन् १९८३ में निर्वाचित हुए तथा सन् १९९४ तक इस पद पर कार्य किया है। इस संस्था के अन्तर्गत चेम्बूर (मुंबई) में 'सुख-शांति' नामक गृह है, जहाँ शोषण की शिकार महिलाओं के लिए अस्थायी निवास व भोजन की व्यवस्था है।

मुंबई के उपनगर अंधेरी में स्थित श्री मदनलाल राजपुरिया विद्यार्थी गृह की संचालक संस्था राजस्थान विद्यार्थी गृह से इसके स्थापना काल (१९५७) से ही आप सम्बद्ध हैं तथा सन् १९६३ से १९९५ तक उसके ट्रस्टी रहे हैं।

उपरोक्त संस्थाओं के अतिरिक्त आप सुर-सिंगार संसद, श्री बृजमोहन रूइया विद्यालय, विलेपार्ले, अग्रवाल सेवा समाज, मुंबई से भी कई वर्षों तक सम्बद्ध रहे हैं।

महाराष्ट्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मुंबई की स्थापना (सन् १९७६) काल से आप इस संस्था से जुड़े हैं। पहले कोषाध्यक्ष (सन् १९७६ से मई ९० तक), बाद में प्रधानमंत्री (मई ९० से सितम्बर ९९ तक)। सम्प्रति आप महाराष्ट्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मुंबई के उपाध्यक्ष, मुंबई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा की कार्यसमिति के सदस्य, संयोग कला मंच के उपाध्यक्ष तथा 'संयोग साहित्य' नामक पत्रिका के मानद् कानूनी सलाहकार एवं 'आदिज्ञान' नामक पत्रिका के संपादन सलाहकार हैं। आप हिन्दी विद्या प्रचार समिति, घाटकोपर के सदस्य हैं, जो समिति श्री रामनिरंजन झूंझनूवाला कालेज एवं हिन्दी हाई स्कूल एवं शैक्षणिक संस्थाओं का संचालन करती है। इनके अतिरिक्त राजस्थान की नारी-शिक्षा क्षेत्र की एक प्रमुख संस्था 'महिला मंडल, उदयपुर के संरक्षक सदस्य हैं। शोध-क्षेत्र में कार्यरत 'पंचाल शोध संस्थान', कानपुर के आप आजीवन सदस्य हैं।

आपके पूर्वजों द्वारा संस्थापित सेठ गुलराज सिंघानिया चेरिटी ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं, जिस ट्रस्ट के अर्न्तगत मथुरा (उ. प्र.) में श्री गोपीनाथजी मंदिर तथा फतेहपुर (शेखावाटी, राजस्थान) में सेठ गुलराजजी की छतरी, बाग, कुआ तथा प्रमोद आयुर्वेदिक औषधालय का संचालन होता है।

अंग्रेजी भाषा की पुस्तक 'द मारटियर्स' (शहीदों की जीवनी) के संपादक मंडल के आप एक सदस्य हैं। आपकी हिन्दी भाषा में प्रथम प्रकाशित कृति 'पं. नेहरू - व्यक्तित्व एक, आयाम अनेक' है, जिसमें आपने पं. नेहरू के व्यक्तित्व के समस्त रूपों के विभिन्न पहलुओं को छुआ है। आपकी दूसरी प्रकाशित रचना हैं - 'जय गणेश', जिसकी भूमिका महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री एवं सम्प्रति लोकसभा के अध्यक्ष माननीय श्री मनोहर जोशी ने लिखी है। भूमिका में श्री जोशी ने इसे श्री गणेश-विषयक एक लघुकोश बतलाया है। आपकी तीसरी पुस्तक है - 'जय देवी सरस्वती', जिसकी भूमिका भारतीय विद्या भवन के मानद् निदेशक महामहोपाध्याय प्रो. जयंत कृष्ण दवे ने लिखी है। प्रो. दवे के मतानुसार "इस पुस्तक में लेखक ने वैदिक काल से पौराणिक काल तक का देवी सरस्वती के देवत्व का इतिवृत और देवी की महिमा को प्रतिपादित करने का सफल एवं स्तुत्य प्रयास किया है।"

आपकी चौथी कृति 'जय श्रीलक्ष्मी' आपके हाथों में है।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर विविध विषयों पर आपके आलेख प्रकाशित होते रहते हैं।

●

|| जय श्री लक्ष्मी ||

विषय-सूची

१. **एकोदेव : सर्व भूतेषु** २३

(i) परमात्मा 'एक' ही है

(ii) देवी-देवतागण परमात्मा की शक्तियों के प्रतिनिधि

(iii) सगुण उपासना सहज साध्य

(iv) देवी-देवता की आकृति प्रतिकात्मक

२. **आदिशक्ति (महालक्ष्मी) और उनका रजोगुणी रूप : देवी लक्ष्मी** २७

(i) शक्ति शब्द का अर्थ

(ii) महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती : आदिशक्ति के रूप

(iii) शक्ति की महिमा

(iv) ब्रह्म और शक्ति में अभेद

(v) पराशक्ति - सगुण और निर्गुण

(vii) महालक्ष्मी आदिशक्ति के रूप में

(viii) महालक्ष्मी का रजोगुणी रूप : देवी लक्ष्मी

३. **वैदिक वाङ्मय में देवी लक्ष्मी** ३३

(क) ऋग्वेद

(i) श्री शब्द का अर्थ

(ii) लक्ष्मी शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ

(iii) ऐश्वर्य आदि के प्रदाता के रूप में ऋग्वैदिक देवता (अग्नि, इन्द्र, देवमाता अदिति एवं उषादेवी)

(iv) श्री सूक्त : ऋग्वेद संहिता का एक परिशिष्ट सूक्त

(v) ऋग्वेद में अश्री (अलक्ष्मी की परिकल्पना और उसके नाशन का सूक्त)

(ख) यजुर्वेद
(i) श्री शब्द का अर्थ
(ii) श्री-प्राप्ति का विधान
(iii) श्री का मूर्त-रूप

(ग) सामवेद

(घ) अथर्ववेद
(i) श्री का अर्थ
(ii) लक्ष्म का अर्थ
(iii) श्री और लक्ष्मी का अर्थ
(iv) पौष्टिक कर्म संबंधी सूक्त
(v) अथर्ववेद का श्रीसूक्त
(vi) पाप-लक्षण-नाशन सूक्त

(ङ) ब्राह्मण-ग्रन्थों में देवी लक्ष्मी
(i) श्री शब्द का अर्थ विस्तार
(ii) लक्ष्म और लक्ष्मी शब्द
(iii) शतपथ ब्राह्मण में वर्णित श्री (लक्ष्मी) की उत्पत्ति-कथा

(च) गृह्य सूत्रों में देवी लक्ष्मी

(छ) उपनिषदों में देवी लक्ष्मी
(i) उपनिषद साहित्य से तात्पर्य तथा प्राचीन एवं परवर्तित उपनिषद
(ii) प्राचीन उपनिषदों में श्री शब्द का अर्थ और मानवीकरण
(iii) परवर्ती उपनिषदों में देवी लक्ष्मी

४. **श्री सूक्त : परिचय, प्रतिपाद्य विषय एवं माहात्म्य** ६१
(i) परमात्मा की शक्ति का स्तुतिपरक सूक्त
(ii) श्री और लक्ष्मी का समन्वय
(iii) श्री सूक्त - एक खिल या परिशिष्ट सूक्त
(iv) श्री सूक्त का काल-निर्धारण
(v) श्री सूक्त के मंत्रों की संख्या
(vi) प्रतिपाद्य विषय
(vii) श्री लक्ष्मी सूक्त

(viii) यजुर, साम एवं अथर्व वेदों में श्री सूक्त
(ix) पुराणों में श्री सूक्त की महिमा

५. **देवी लक्ष्मी के मूर्त-रूप एवं देवत्व का विकास क्रम** ६८
(i) ऋग्वेद (मूल संहिता) में 'श्री' और 'लक्ष्मी' दोनों भाववाचक संज्ञाएँ
(ii) श्री और लक्ष्मी व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में
(iii) श्री सूक्त में श्री और लक्ष्मी का समन्वय
(iv) श्री देवी (लक्ष्मी देवी)
(v) वैदिक वाङ्मय के परवत्ती-काल के साहित्य में देवी लक्ष्मी
(vi) देवी लक्ष्मी के देवत्व का विकास-क्रम
(क) स्वतंत्र देवी
(ख) देवी लक्ष्मी और धनाध्यक्ष कुबेर
(ग) दैत्यों और असुरों के साथ देवी लक्ष्मी
(घ) देवराज इन्द्र और देवी लक्ष्मी
(ङ) भगवान विष्णु की पत्नी या शक्ति
(च) इतिहास-पुराणों में देवी लक्ष्मी

६. **देवी लक्ष्मी संबंधी प्राकट्य कथाएँ** ७६
(i) महालक्ष्मी (ईश्वरी) का स्वतः प्राकट्य
(ii) देवी लक्ष्मी-ब्रह्माजी की मानस-पुत्री
(iii) देवी लक्ष्मी - ब्रह्माजी की कन्या
(iv) देवी लक्ष्मी - भगवान विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न
(v) देवी लक्ष्मी - भगवान विष्णु के ललाट से उत्पन्न
(vi) देवी लक्ष्मी का परमात्मा श्रीकृष्ण के मन से प्राकट्य
(vii) देवी लक्ष्मी का देवी राधिका से प्राकट्य
(viii) श्री कृष्ण के वाम भाग से देवी लक्ष्मी का प्राकट्य
(ix) महालक्ष्मी : परमात्मा की एक चिति-शक्ति
(x) देवी लक्ष्मी : मूल प्रकृति (उमा) का एक भाग
(xi) देवी लक्ष्मी - पंचविध प्रकृति में से एक
(xii) देवी लक्ष्मी का कमल से प्राकट्य
(xiii) देवी लक्ष्मी : देवी सरस्वती के वामार्द्ध से प्राकट्य
(xiv) देवी लक्ष्मी : महालक्ष्मी (आद्याशक्ति) के रजोगुण से उत्पन्न
(xv) देवी लक्ष्मी का समुद्र से प्राकट्य

७. **समुद्र-मंथन और देवी लक्ष्मी का प्राकट्य** ८५
(i) समुद्र-मंथन का उद्देश्य
(ii) समुद्र-मंथन की पुरा-कथाएँ
(iii) समुद्र-मंथन का प्रतीकात्मक महत्त्व एवं बोध-पाठ

८. **देवी लक्ष्मी के विविध अवतार** ९४
(१क) महर्षि भृगु पुत्री भार्गवी
(१ख) दक्ष प्रजापति की कन्या (धर्म की पत्नी)
(१ग) महर्षि कुशध्वज एवं मालावती की वेदवती नामक कन्या
(१घ) द्रुपद सुता द्रौपदी (पांडवों की पत्नी)
(२) देवी लक्ष्मी एवं भगवान विष्णु के युगल अवतार -
(आदित्यावतार, नृसिंह अवतार, रामावतार, परशुराम अवतार, श्री कृष्ण अवतार, दत्तात्रय अवतार)
(३) देवी लक्ष्मी के मानवीतर अवतार
(i) अश्वी रूप में
(ii) नदी (पद्मावती) रूप में
(iii) वृक्ष (तुलसी) रूप में

९. **देवी लक्ष्मी के विविध सगुण स्वरूप एवं उनकी विशिष्टताएँ** १०९
(१) द्विभुजा लक्ष्मी
(२) गज-लक्ष्मी
(३) महालक्ष्मी
(४) श्री देवी
(५) वीर लक्ष्मी
(६) द्विभुजा वीर-लक्ष्मी
(७) अष्ट भुजा वीर-लक्ष्मी
(८) प्रसन्न लक्ष्मी
(९) अन्य स्वरूप (क) दीप लक्ष्मी (ख) सिद्ध लक्ष्मी
(१०) विविध श्री विग्रहों में अंतर एवं उनकी प्रतीकता (भुजाएँ, नेत्र एवं वर्ण)
(११) हाथों की मुद्राएँ

१०. **देवी लक्ष्मी की प्रिय वस्तुएँ, चिन्हक, वाहन आदि** १२५
(i) देवी का प्रिय पुष्प कमल
(ii) देवी के प्रिय फल (बिल्व एवं मातुलिंग)
(iii) देवी के प्रिय आयुध

(iv) देवी के प्रिय वाद्य-यंत्र
(v) देवी की अन्य प्रिय वस्तुएँ
(vi) देवी लक्ष्मी के वाहन
(vii) देवी लक्ष्मी के प्रिय पशु-पक्षी

११. पांचरात्र संहिताओं में देवी लक्ष्मी १३८
(i) पांचरात्र मत
(ii) लक्ष्मी तंत्र
(iii) अन्य पाँच रात्र संहिताएँ

१२. भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी १४२
(i) भगवान विष्णु एक वैदिक देवता
(ii) देवी लक्ष्मी भगवान विष्णु की पत्नी या शक्ति
(iii) भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी की सर्व व्यापकता

१३. देवी लक्ष्मी की बड़ी बहन देवी अलक्ष्मी (ज्येष्ठा देवी) १४९
(i) वैदिक साहित्य में अलक्ष्मी
(ii) पौराणिक साहित्य में अलक्ष्मी
(iii) पीपल (अश्वत्थ) वृक्ष की महिमा
(iv) देवी अलक्ष्मी का कुप्रभाव
(v) देवी अलक्ष्मी का स्वरूप, प्रतीक एवं वाहन
(vi) अलक्ष्मी के निवारणार्थ करणीय उपाय

१४. देवी लक्ष्मी एवं अन्य देवगण १६०
(i) धनाध्यक्ष कुबेर और देवी लक्ष्मी
(ii) चंद्रमा (सोम) और देवी लक्ष्मी
(iii) दैत्यराज बलि और देवी लक्ष्मी
(iv) देवराज इन्द्र और देवी लक्ष्मी
(v) कार्तिकेय (स्कंद) और देवी लक्ष्मी
(vi) श्री गणेश और देवी लक्ष्मी
(vii) देवी दुर्गा और देवी लक्ष्मी
(viii) देवी सरस्वती और देवी लक्ष्मी
(ix) भू-देवी (पृथ्वी माता) और देवी लक्ष्मी

१५. देवी लक्ष्मी के निवास योग्य स्थान एवं कृपा योग्य पात्र १८१

१६. **पुरातत्वीय दृष्टि से देवी लक्ष्मी के सगुण स्वरूप की पुरातनता** १८९
(i) सिन्धु-सरस्वती घाटी सभ्यता
(ii) उक्त सभ्यता के परवर्ती काल में देवी का अंकन
(iii) मृण्मय, पत्थर और धातु की मूर्तियाँ
(iv) प्राचीन मुद्राओं (सिक्कों) पर देवी का अंकन

१७. **ललित साहित्य में देवी लक्ष्मी** १९९

१८. **देवी लक्ष्मी की उपासना** २०९
(i) उपासना का प्रारम्भ
(ii) उपासना के आधार (मूर्ति, यंत्र एवं मंत्र)
(iii) पूजार्थ कवच एवं ध्यानादि
(iv) लक्ष्मी सहस्रनाम एवं गायत्री
(v) पूजा के अन्य प्रकार
(vi) आरती

१९. **पद्मिनी विद्या और निधियों का स्वरूप** २२१

२०. **देवी लक्ष्मी को समर्पित व्रत एवं उत्सवादि** २२५
(i) व्रत
(ii) उत्सव (कोजागर, दीपावली एवं श्री पंचमी)

२१. **देवी लक्ष्मी के कतिपय मंदिर एवं मूर्ति-फलक** २३८
(i) श्री महालक्ष्मी मंदिर, कोल्हापुर
(ii) श्री महालक्ष्मी मंदिर, मुंबई
(iii) अष्ट लक्ष्मी मंदिर, पुन्नेनल्लूर (तमिलनाडु)
(iv) लक्ष्मी-नृसिंह मंदिर, अहोबिल (आंध्र प्रदेश)
(v) श्री महालक्ष्मी माता का मंदिर, दहाणु (महाराष्ट्र)

परिशिष्ट

(i) स्तोत्रादि २५१
(ii) संदर्भिका ३२३

एको देवः सर्व भूतेषु

(i) परमात्मा 'एक' ही है

वैदिक वाङ्मय और भारतीय संस्कृति के आदिग्रन्थ ऋग्वेद के प्रथम मंडल के अध्यात्म परक सूक्त (अस्य वामीय तत्त्व ज्ञानसूक्त) में परमात्मा की एकात्मकता, उसकी सर्वज्ञता एवं सर्वशक्ति सम्पन्नता को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' (१/१६४/४६); अर्थात् ऐसे 'एक' और अनादि-अनंत परमात्मा को विद्वत्गण अनेक नामों से संबोधित करते हैं, भजते हैं। भारतीय मनीषा ने इसी सिद्धांत का विस्तार के साथ प्रतिपादन यथेष्ठ चिंतन-मनन के पश्चात् औपनिषदिक साहित्य में किया है। श्वेताश्वर उपनिषद में परमात्मा की एकात्मकता के संबंध में कहा गया है कि वह 'एक' ही देव समस्त शक्तियों का स्रोत है और वह निर्गुण (गुणातीत) है।

एको देवः सर्व भूतेषु गूढ़ः।
सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।।
कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः।
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।। - (६/११)

इसी प्रकार मैत्रायणी उपनिषद में कहा गया है कि सारे देवता निराकार ब्रह्म के ही विविध रूप हैं *(ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम्)* - ४/६

परमात्मा या ईश्वर या परब्रह्म की सर्व व्यापकता एवं सर्व स्वरूपता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि अमृत-स्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही आगे-पीछे, दायें-बायें, बाहर-

भीतर, ऊपर-नीचे सर्वत्र प्रसारित है तथा इस विश्व ब्रह्माण्ड के रूप में ये सर्व-श्रेष्ठ ब्रह्म ही प्रत्यक्ष दिखायी दे रहे हैं।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।। - (मुंडकोपनिषद, २/२/११)

परमात्मा या ईश्वर 'एक' है तथा वह 'निर्गुण' है - यह सिद्धांत वेदों और उपनिषदों द्वारा मान्य होने पर भी हिन्दुओं में अनेक देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना होती है, अनेक धार्मिक सम्प्रदाय हैं, विविध प्रकार के कर्म-काण्ड हैं और हैं विभिन्न प्रकार की मान्यताएँ, जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त परमात्मा 'एक' है और वह 'निर्गुण' है के सिद्धांत को हिन्दू धर्मावलम्बी नहीं मानते हैं, लेकिन यह अवधारणा या विचार-सारिणी युक्ति संगत नहीं है। वस्तुतः हिन्दू धर्मावलम्बी निष्ठापूर्वक यही मानते हैं कि 'परमात्मा एक है और वह निर्गुण है तथा ऐसे 'एक' परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा परमात्मा नहीं है। सर्वत्र जो कुछ दिखलाई देता है उसमें केवल परमात्मा को देखना - यही सच्चा ज्ञान है। वह निर्गुण है, क्योंकि गुणों के साथ संबंध का होना अनिवार्य है और जहाँ संबंध हैं, वहाँ उनसे सम्बद्ध अन्य वस्तुएँ होनी चाहिये।

जो 'एक' और 'अद्वितीय' है, वह निर्गुण, नित्य, अपरिच्छिन्न एवं निर्विशेष तो होगा ही। सभी प्रतिभासिक सत्ताएँ स्वरूपतः उनमें अभिन्न है। - (पुराण विमर्श, आ. बलदेव उपाध्याय, पृ. ४१६)।

(ii) देवी-देवतागण परमात्मा की शक्तियों के प्रतिनिधि

यह एक परमात्मा समस्त जीवों और इन्द्रियों-गोचर पदार्थों के तथा अनंत भेदों से युक्त सारे विश्व के अधीश्वर हैं और इस सापेक्ष-दृष्टि से वे जगत् के सर्जनहार, पालक और संहारक हैं। वे अनंत शक्ति से सम्पन्न हैं, जिनकी मनुष्य वंदना करते हैं, परन्तु उनका कोई निश्चित नाम या रूप नहीं है। वे समस्त नाम-रूपात्मक हैं, परंतु सामान्य-जन के लिये नाम और रूप की सहायता के बिना उनका चिन्तन-मनन करना कठिन है, अतः वह परमात्मा का चिन्तन-मनन और उसकी उपासना के लिये कोई भी नाम या रूप को आधार बना उपासना करता है। हिन्दुओं द्वारा मान्य अनेक देवी-देवता उस 'एक' परमात्मा की विविध शक्तियों और कार्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। सच तो यह है कि हिन्दू धर्मावलम्बी अनेक देवी-देवताओं के मूर्त या सगुण स्वरूपों की नहीं,

अपितु इन मूर्त या सगुण स्वरूपों के माध्यम से उस निर्गुण 'एक' परमात्मा की ही आराधना करते हैं।

(iii) सगुण उपासना सहज साध्य

श्रीमद् भगवत् गीता में श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन से कहा है कि मेरा सच्चा स्वरूप अनादि, अनंत, अव्यक्त, निुर्गण, निराकार ऐसा होने पर भी सभी पंच महाभूतों से युक्त यह दृश्यमान विश्व भी मैं ही हूँ। यह मेरा सगुण स्वरूप है। ऐसे विरोधाभाषी कथन को सुन अर्जुन ने जिज्ञासावश भगवान श्री कृष्ण से पूछा कि आपके सगुण स्वरूप की उपासना करने वालों और आपके अव्यक्त अक्षर ब्रह्म की उपासना करने वालों में श्रेष्ठ आप किसे मानते हैं? तब इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री कृष्ण भगवान ने कहा —

मय्या वेश्य मनो ये मां नित्य युक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ - १२/२॥

अर्थात् मुझ में मन लगाकर सदा युक्त चित्त होकर के परम श्रद्धा से जो मेरी उपासना करते हैं, वे मेरे मत में सबसे उत्तम युक्त अर्थात् योगी हैं।

श्री कृष्ण भगवान ने आगे कहा कि निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने वाले अंत में मुझ में मिल जाते हैं, लेकिन अव्यक्त ब्रह्म की, निर्गुण निराकार की उपासना अति दुष्कर है। ऐसी निर्गुण ब्रह्म की उपासना की अपेक्षा मेरे सगुण स्वरूप की उपासना करना सहज साध्य है। केवल किये गये कर्म के प्रतिफल की आकांक्षा त्यागकर, सभी कर्मों को जो मुझे अर्पण करता है, वही मनुष्य मुझे प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार सामान्यजन के लिये सगुण उपासना सहज साध्य एवं सरल मार्ग हैं और इसके माध्यम से वह निर्गुण उपासना के कठिन मार्ग तक पहुँच सकता है।

(iv) देवी-देवताओं की आकृति प्रतिकात्मक

हिन्दू धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रंथों ने धर्म और अध्यात्म आदि के सिद्धांतों एवं मान्यताओं को प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। इसी के कारण सभी देवी-देवताओं की आकृति एवं उनकी प्रिय वस्तुओं का संयोजन आदि प्रतीकात्मक विशेषता रखते हैं। प्रतीमा-पूजन आदि को इनके प्रतीकात्मक रूप में ही आराध्य समझना

चाहिये। इस प्रकार की श्रद्धा-भक्ति से ही आध्यात्मिक चिंतन एवं अनुभूति का मार्ग साधक या भक्त के लिये प्रशस्त हो सकता है। सांसारिक झंझटों के तनावपूर्ण जीवन में व्यक्ति का मन परमात्मा की साधना एवं चिन्तन में उन्मुख और स्थिर रहे, इसके लिये अनेक प्रकार के उत्सवों एवं क्रिया-काण्डों का आयोजन किया गया है, जिससे सामान्यजन की अभिरुचि परमात्मा की भक्ति में सर्वदा एवं सतत रहे।

सर्वव्यापी एवं सर्व-शक्ति-सम्पन्न परमात्मा या ब्रह्म की अनेक शक्तियों का प्रतिनिधित्व भिन्न-भिन्न देवी-देवता करते हैं तथा वस्तुतः इन अनेक देवी-देवताओं के माध्यम से परमात्मा या ब्रह्म, जो 'एको देवः सर्व भूतेषु' है, उसकी ही उपासना है।

•

आदिशक्ति (महालक्ष्मी) और उनका रजोगुणी रूप : देवी लक्ष्मी

(i) शक्ति शब्द का अर्थ

शक्ति शब्द में 'शक्' का अर्थ है — ऐश्वर्य और 'ति' का अर्थ है — पराक्रम। ये दोनों — ऐश्वर्य और पराक्रम — जिसके स्वरूप हैं तथा जो इन दोनों गुणों को प्रदान करती हैं, उसे 'शक्ति' कहा जाता है।

ऐश्वर्य वचनः शक् च तिः पराक्रम वाचकः।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री या सा शक्तिः प्रकीर्तिता।।

- (ब्रह्म. वै. पु., प्रकृति खंड, २/१०)

उक्त परिभाषा के अतिरिक्त 'शक्ति' शब्द की परिभाषा या व्याख्या प्रसंगानुसार विविध प्रकार से की गई है। कहीं शक्ति शब्द की व्याख्या 'पराशक्ति' के अर्थ में, तो कहीं देवी, ईश्वरी या मूल प्रकृति के अर्थ में।

(ii) महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती : आदिशक्ति के रूप

आदिशक्ति एक ही है, लेकिन उपासकों के गुण-कार्य के भेद से उसके महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती शिव, विष्णु और ब्रह्मा के समानधर्मी रूप हो जाते हैं। कहीं-कहीं महालक्ष्मी को आदिशक्ति मानकर, उन्हीं से महाकाली एवं महासरस्वती का प्रादुर्भाव माना गया है।

(iii) शक्ति की महिमा

शक्ति की महिमा पर प्रकाश डालते हुए श्रीमद् देवी भागवत में कहा गया है कि शक्ति ही शारीरिक विकार, मोह, अहंकार, आलस्य, राग-द्वेष तथा वासना के प्रतीक

'मधु-कैटभ', 'महिषासुर', 'शुम्भ-निशुंभ', 'धूम्र-लोचन', 'चंड-मुंड' तथा 'रक्तबीज' को सामर्थ्य या धर्म के सिंह पर आरूढ़ होकर विनाश करती है। वस्तुतः शक्ति या क्षमता के माध्यम से ही हम दुष्प्रवृतियों को नियंत्रित एवं सीमित कर सकते हैं।

(iv) ब्रह्म और शक्ति में अभेद

श्रीमद् देवी भागवत में शक्ति के माहात्म्य को निरूपित करते हुए, उसे ब्रह्म-तुल्य बतलाया गया है तथा शक्ति और ब्रह्म में अभेद दर्शाया गया है। जगदम्बिका ने अपने स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा कि वह और ब्रह्म एक ही हैं। जो वह है, वही ब्रह्म है और जो ब्रह्म है, वह 'वह' है। भेद की प्रतीति बुद्धि-भ्रम के कारण होती है।

सदैकत्वं न भेदो ऽस्ति सर्वदेवममास्य च।
यौ असौ साहमहं या सौ भेदोऽस्ति मति विभ्रमात।। - (३/६/२)

ब्रह्म की व्याख्या शास्त्रों में स्त्रीलिंग, पुलिंग एवं नपुंसक लिंग आदि सभी लिंगों में की गई है। अतः 'शक्ति' के नाम या रूप से ब्रह्म की भी उपासना की जा सकती है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने माँ, भगवती और शक्ति के रूप में ब्रह्म की उपासना की थी। एक ही पर-ब्रह्म या परम-आत्म-तत्त्व की उपासना निर्गुण, सगुण निराकार, साकार, देव, देवी, ब्रह्मा, विष्णु, शक्ति, राम, कृष्ण आदि नामों के माध्यम से की जा सकती है।

श्रीमद् भगवत गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे पार्थ! जो मुझे जिस प्रकार से भजते हैं, उन्हें मैं उसी प्रकार के फल देता हूँ। किसी भी ओर से हो, मनुष्य मेरे ही मार्ग में आ मिलते हैं —

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। - (४/११)

इस प्रकार शक्ति भी ब्रह्म का एक रूप है, जिसे 'आद्याशक्ति', 'ईश्वरी' आदि भी कहते हैं तथा लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सीता एवं राधा आदि सभी इसी शक्ति के विविध रूप हैं।

(v) शक्तिमान और शक्ति की अभिन्नता

परमेश्वर शक्तिमान है। भगवती परमेश्वरी शक्ति है। शक्तिमान शक्ति से अलग होने पर भी, अलग नहीं माने जाते हैं। यह सारा संसार शक्तिमान और शक्ति से परिपूर्ण है और इन्हीं से इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती है।

भगवान श्रीकृष्ण ने प्रकृति की स्तुति करते हुए कहा है —

त्वमेव सर्व जननी मूल प्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टि विधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका।।

कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
पर ब्रह्म स्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी।।

तेजः स्वरूपा परमा भक्तानुग्रह विग्रहा।
सर्व स्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा।।

सर्व बीज स्वरूपा च सर्व पूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमंगल मंगला।।

- (ब्र. वै. पु., प्रकृति खंड, २/६६/८-११)

भावार्थ : तुम्हीं विश्व-जननी मूल प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टि की उत्पत्ति के समय आद्याशक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो।

तुम परब्रह्म स्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो। तुम परम तेज-स्वरूप हो और भक्तों पर अनुग्रह करने के हेतु शरीर धारण करती हो। तुम सर्व बीज स्वरूपा, सर्व पूज्या एवं आश्रय रहित हो। तुम सर्वज्ञा, सब प्रकार के मंगल करने वाली एवं सर्वमंगलों की मंगल हो।

(vi) पराशक्ति : सगुण और निर्गुण

सृष्टि की रचना के समय सृष्टिकर्त्ता विष्णु भगवान को असुरों से जब संघर्ष करना पड़ा, तब उन्होंने पराशक्ति का आवाहन किया। पराशक्ति के दोनों रूप हैं - निराकार और साकार; सगुण और निर्गुण।

सगुणा निर्गुणा चैव कार्य भेदे सदैव हि।
अकर्त्ता पुरुषःपूर्णो निरीहः परमोऽव्ययः।।

- (देवी भागवत, ३/९/३४)

अर्थात् कार्य भेद से वह सगुण, निर्गुण है। अकर्त्ता है। पूर्ण पुरुष है। इच्छा रहित है। परम अव्यय है।

(vii) महालक्ष्मी आदिशक्ति के रूप में

श्री दुर्गा सप्तशती में प्रतिपादित प्राधानिक रहस्य के अनुसार महालक्ष्मी ही आदिशक्ति या ईश्वरी या पराशक्ति हैं तथा यही सृष्टि-स्थिति-संहार करने वाली हैं। यह त्रि-गुणमयी हैं। संपूर्ण ब्रह्माण्ड का आदि कारण हैं, मूलाधार हैं, मूल प्रकृति हैं एवं प्रधाना हैं। महालक्ष्मी ही देवी की समस्त विकृतियों (अवतारों) की प्रधान प्रकृति हैं तथा वही सब प्रपंच तथा सम्पूर्ण अवतारों का आदिकारण हैं। तीनों गुणों की साम्यावस्था रूपा प्रकृति भी उनसे भिन्न नहीं है। वे सच्चिदानंदमयी परमेश्वरी सूक्ष्म रूप से सर्वत्र व्याप्त होती हुई भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये परम दिव्य चिन्मय सगुण रूप से भी सदा विराजमान रहती हैं। उनके उस श्रीविग्रह की कान्ति तपाये हुए स्वर्ण की भाँति है। वे अपने चारों हाथों में मातुलिंग (बिजौरा), गदा, खेट (ढाल) और पान-पात्र धारण करती हैं तथा मस्तक पर नाग, लिंग और योनि धारण किये रहती हैं। भुवनेश्वरी संहिता के अनुसार - मातुलिंग कर्म राशि का, गदा क्रियाशक्ति का, खेट ज्ञान शक्ति का और पान-पात्र तुरीय वृति (अपने सच्चिदानंद स्वरूप में स्थित) का सूचक है। इसी प्रकार नाग से काल का, योनि से प्रकृति, लिंग से पुरुष का ग्रहण होता है। अतः तीनों का अधिष्ठान परमेश्वरी महालक्ष्मी ही है।

चतुर्भुजा महालक्ष्मी ने क्रमशः तमोगुण और सत्त्वगुण रूप उपाधि के द्वारा अपने दो रूप और प्रकट किये, जिनकी क्रमशः महाकाली और महासरस्वती नाम से प्रसिद्धि हुई। फिर इन तीनों देवियों ने स्त्री-पुरुष का एक-एक जोड़ा उत्पन्न किया। महाकाली से शंकर और सरस्वती, महालक्ष्मी से ब्रह्मा और लक्ष्मी तथा महासरस्वती से विष्णु और गौरी का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें लक्ष्मी विष्णु को, गौरी शंकर को तथा सरस्वती ब्रह्माजी को प्राप्त हुई। पत्नी सहित ब्रह्माजी ने सृष्टि, विष्णु ने पालन और शंकर ने संहार का कार्य सम्हाला। इन अवतारों की सारिणी इस प्रकार है —

आदिशक्ति (महालक्ष्मी / मूल प्रकृति / पराशक्ति / प्रधाना)
(त्रिगुणों मयी)

महाकाली (तमोगुणी)	महालक्ष्मी (तमोगुण एवं सतोगुण से रहित) रजोगुणी	महासरस्वती (सतो-गुणी)
शंकर - सरस्वती	ब्रह्मा - लक्ष्मी	विष्णु - काली

यहाँ यह बात ध्यातव्य है कि ब्रह्माजी के द्वारा बनाई गई सृष्टि का ब्रह्माजी की बहन लक्ष्मी विष्णु के साथ पालन करती है। विष्णु का पालन-कार्य समाप्त होने पर विष्णु की बहन काली शिव के साथ उसका संहार करती है एवं शिव की बहन सरस्वती संहारित जीवों की ब्रह्माजी के साथ पुनः सृष्टि करती है। यह चक्र यथावत काल-क्रम से निरन्तर चलता रहता है। बहन (प्रकृति) अपने भाई (गुण) के कार्य में सदैव सहयोग देती है।

तम-रज (सत्त्व गुणात्मक) से सृष्टि, रज-सत् (रजोगुणात्मक) से स्थिति एवं सत्-तम (तमो गुणात्मक) से संहार कार्य होता है। प्रकृति-पुरुष का यही दार्शनिक रहस्य है।

महालक्ष्मी ही सर्व सत्त्वमयी एवं सर्व सत्त्वों की अधिश्वरी है, वे निराकार और साकार रहती हुई, नाना रूप धारण कर लेती है।

महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी।
निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत॥
- (दुर्गासप्तशती, प्राधानिक रहस्य)

(viii) महालक्ष्मी का रजोगुणी रूप : देवी लक्ष्मी

आदिशक्ति (महालक्ष्मी) का रजोगुणी रूप है — देवी लक्ष्मी; जो भगवान विष्णु की शक्ति / पत्नी के रूप में संसार के पालन में उन्हें सहयोग देती है।

क्षीर सागर से श्रीलक्ष्मी के आविर्भाव होने पर जब नारद आदि महर्षियों ने उनका परिचय भगवान विष्णु से पूछा, तब स्वयं भगवान विष्णु बोले कि यह मेरी स्वरूपभूता ब्रह्मरूपिणी परम शक्ति है, यही माया है, यही अनंता है और यही मेरी वह प्रिया है, जिसने इस संपूर्ण जगते को मोहित कर रखा है। इसी के द्वारा मैं देवताओं, असुरों एवं मनुष्यों से युक्त संपूर्ण विश्व को मोहित करता हूँ, संहार करता हूँ और पुनः सृष्टि करता हूँ। ज्ञानीजन जगत् की उत्पत्ति एवं प्रलय को तथा प्राणियों के जन्म और मोक्ष को ठीक-ठीक समझकर और आत्म-तत्त्व का दर्शन कर इस महामाया के बंधन से पार उतरते हैं। मेरी सब प्रकार की शक्ति यही है, इसी के अंशों का आश्रय ग्रहण कर ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता शक्तिमान हुए हैं। यही वह सत्त्व-रज तथा तम - तीनों गुणों से युक्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति है और यही सारे संसार को उत्पन्न करने वाली है। प्राचीन काल में श्रीकल्प में यह पद्मवासिनी के रूप में मुझ से ही आविर्भूत हुई थी। ये चार भुजाओं वाली है तथा ये हाथों में शंख, चक्र, कमल तथा माला धारण किये रहती है।

सैषा सर्व जगत्सूतिः प्रकृति स्त्रिगुणात्मिका।
प्रागेव मत्तः संजाता श्रीःकल्पे पद्मवासिनी।।

चतुर्भुजा शंख चक्र पद्म हस्ता स्रगन्विता।
कोटि सूर्य प्रतीकाशा मोहिनी सर्व देहिनाम्।।

- (कूर्म पुराण, १/१/३८-३९)

इसी अध्याय में आगे इन्द्रद्युम्न के पूछने पर देवी लक्ष्मी भी भगवान विष्णु के कथन का समर्थन करती हुई कहती है कि मैं उन विष्णु की प्रकृति स्वरूपा परामाया हूँ। मुझ अद्वितीय नारायण-स्वरूपा नारायणी को मुनि तथा इन्द्र आदि देवता भी नहीं देख पाते हैं। सूक्ष्म विचार करने पर मुझ में और नारायण में कोई भेद नहीं है। मैं उनकी प्रकृति रूपा हूँ, वे विष्णु परब्रह्म हैं, परमेश्वर हैं।

न मां पश्यन्ति मुनियो देवाः शक्र पुरोगमाः।
नारायणात्मिका मेका मायाहं तन्मयी परा।।

न मे नारायणात् भेदो विद्यते हि विचारतः।
तन्मय्यहं परं ब्रह्म स विष्णुः परमेश्वरः।।

- (कूर्म पुराण, १/१/५८-५९)

●

वैदिक वाङ्मय में देवी लक्ष्मी

धन्य-धान्य, सम्पत्ति-समृद्धि एवं सुयश-सौभाग्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी का दर्शन सर्वप्रथम हमें ऋग्वेद के 'श्रीसूक्त' में होता है, लेकिन यह सूक्त ऋग्वेद का एक 'खिलसूक्त' है। 'खिलसूक्त' वे सूक्त हैं, जो मूल संहिता के बाद, ऋग्वेद संहिता में परिशिष्ट सूक्तों के रूप में परवर्ती काल में जोड़े गये। इसका तात्पर्य यही है कि 'खिलसूक्त' मूल संहिता के सूक्तों जैसे प्राचीन नहीं हैं, लेकिन इनका महत्त्व मूल संहिता के सूक्तों जैसा ही है। श्रीसूक्त में देवी लक्ष्मी का एक पर्यायवाची नाम श्रीदेवी है तथा श्री सूक्त में श्रीदेवी और लक्ष्मी देवी में कोई भेद नहीं है।

(क) ऋग्वेद

ऋग्वेद की मूल संहिता में श्री और लक्ष्मी दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है तथा जहाँ इन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वह किसी मूर्त रूप या देवी का व्यंजक या बोधक नहीं है, अपितु इन शब्दों का प्रयोग भाव वाचक संज्ञा के रूप में किया गया है।

(१) 'श्री' शब्द का अर्थ :

'श्री' शब्द देवी-देवताओं एवं मानवों के लिये सम्मान-सूचक विशेषण है। 'श्री' शब्द का एक अर्थ 'लक्ष्मी' भी है। इस शब्द में श्रेय, मांगल्य, सुषुमा और वैभव निहित है। ऋग्वेद संहिता के सूक्तों में 'श्री' शब्द का प्रयोग अनेक सूक्तों में हुआ है तथा संदर्भानुसार यह मांगल्य, वैभव-सम्पन्नता, यशस्वीता एवं शुचिता का बोध कराता है। जिन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग हुआ है, उदाहरणार्थ वे कतिपय ऋचाएँ देखें —

(i) ऐश्वर्य के अर्थ में :

(अ) श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुः। - (६/२९/३)
(हे इन्द्र!) ऐश्वर्य लाभ के लिये आपके चरणों में प्रणाम करते हैं।

(आ) . . . अशासत श्रिये। - (९/१०२/४)
(सोम) ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये प्रशंसा के पात्र हैं।

(ii) शोभा के अर्थ में :

(अ) तव स्पार्हे वर्ण आ संदृशि श्रियः। - (२/१/१२)
हे अग्निदेव ! आप के उत्तम वर्ण में सारी शोभा सिमट गई है।

(आ) सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः। - (१/१२२/२)
स्वर्णिम किरणों से युक्त उषा सूर्य की शोभा से सुशोभित हो।

(iii) सुन्दरता के अर्थ में :

(अ) मिनाति श्रियं जरिमा तनूनां। - (९/१७९/१)
वृद्धावस्था शरीर की सुन्दरता को नाश करती है।

(आ) यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् - (६/२८/६)
हे गौओं ! हमें बलवान करो और हमारे दुबले-पतले शरीरांगों को सुन्दर बनाओ।

(iv) समृद्धि-सम्पन्नता के अर्थ में :

(अ) य उ श्रिया दमेष्व आ दोषोषसि प्रशस्यते। - (२/८/३)
घरों में प्रज्वलित अग्नि की नित्य पूजा से समृद्धि होती है।

(आ) वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः। - (३/४४/२)
इन्द्र अपने भक्तों की सामर्थ्य वृद्धि करते हैं।

(v) यश / कीर्ति के अर्थ में :

(अ) समु श्रिया नासत्या सचेथे। - (१/११६/१७)
हे अश्विनी कुमारो ! सूर्य को विजित कर लेने के कारण आप को कीर्ति प्राप्त हुई।

(आ) श्रेयांचिकितुषे रणाय। - (६/४१/४)
शोधित सोम प्राशन श्रेष्ठ है। वह आप को कीर्ति देता है।

(vi) मंगल / कल्याण के अर्थ में :

(अ) श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय। - (९/९४/४)
सोम लोकमंगल के लिये उत्पन्न हुआ है। सोम स्तोता को मंगल प्रदान करता है।

(आ) श्रिये ते पृश्निरूप सेचनी भूत् श्रिये दर्विर रेपाः। - (१०/१०५/१०)
पर्यस्विनी गौ (सोम) तुम्हारा कल्याण करे। तुम्हारा वह पात्र (दर्वी). कल्याणकारी हो।

निष्कर्षतः ऋग्वेद की मूल संहिता के सूक्तों की ऋचाओं में प्रयुक्त 'श्री' शब्द ऐश्वर्य, शोभा, सुन्दरता, समृद्धि, सम्पन्नता, कीर्ति एवं मंगल आदि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, लेकिन लक्ष्मी या किसी अन्य देवी के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है।

(२) 'लक्ष्मी' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ

'लक्ष्मी' शब्द की व्युत्पत्ति 'लक्ष्म' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है — संकेत, चिन्ह और प्रतीक। वैदिक साहित्य में 'लक्ष्मी' शब्द 'भद्रा' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। भद्र का, शुभ का संकेत जिससे हो, वह 'लक्ष्मी' अर्थात् जिस प्रतीक से मंगल का बोध हो वह 'लक्ष्मी'। ऋग्वेद की निम्नांकित ऋचा में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग भाव वाचक संज्ञा के रूप में हुआ है। 'ब्रह्म-ज्ञान प्रशंसा सूक्त' (१०/७१) की ऋचा २ में कहा गया है कि ज्ञानियों के संभाषण में 'लक्ष्मी' वास करती है, अर्थात ज्ञानियों की वाणी कल्याणकारक एवं उत्तम होती है।

. . . धीरा मनसा वाचमकत।
अत्रा सरवायः सरन्यानि जानते भद्रेषां लक्ष्मी र्निहिताधिं वाचि।।

'लक्ष्मी' शब्द के उक्त प्रयोग से यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि ऋग्वेद की मूल संहिता के किसी भी सूक्त में यह शब्द किसी मूर्त रूप या देवी का बोधक नहीं है।

(३) ऐश्वर्य आदि के प्रदाता के रूप में ऋग्वैदिक देवता (अग्नि, इन्द्र, देवमाता अदिति एवं उषादेवी)

ऋग्वेद की मूल संहिता में जिन देवी-देवताओं को 'ऐश्वर्य सम्पन्न' एवं 'सामर्थ्यशाली' जैसे विशेषणों से भूषित कर धन-धान्य, सम्पत्ति-समृद्धि, सुयश-

सौभाग्य आदि सांसारिक सुख-सुविधाओं को प्रदान करने के लिये प्रार्थनाएँ की गईं हैं, वे कई हैं; परन्तु जब हम मूल संहिता में वर्णित (१) अग्निदेव, (२) देवराज इन्द्र, (३) देवमाता अदिति एवं (४) उषादेवी के देवत्व एवं कर्तृत्व के स्वरूप एवं गुणधर्म पर विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि 'श्री सूक्त' में वर्णित श्रीदेवी (लक्ष्मी देवी) के देवत्व के स्वरूप, सामर्थ्य एवं गुण-धर्म की अवधारणा एवं परिकल्पना पर उनका प्रभाव पड़ा है।

(१) अग्निदेव, (२) देवराज इन्द्र, (३) देवमाता अदिति एवं (४) उषा देवी के देवत्व के स्वरूप और सामर्थ्य का जो विवरण मूल संहिता के विविध सूक्तों में किया गया है, वह संक्षेप में इस प्रकार है —

(१) अग्निदेव :

ऋग्वैदिक देवी-देवताओं में अग्निदेव एक प्रमुख देवता है। इन्हें देवताओं में अग्रणी माना गया है तथा ये सब से आगे चलते हैं और युद्ध में सेनापति का काम करते हैं। 'अग्रणी र्भवति। अग्निर्हि देवानां सेनानीः।' - (४/१/२०) ऋग्वेद का प्रारम्भ ही अग्निदेव के स्तवन-सत्कार से हुआ है। प्रथम मंडल के प्रथम सूक्त की प्रथम ऋचा इस प्रकार है —

अग्नि मीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ - (१/१/१)

भावार्थ : मैं अग्नि देव की उपासना करता हूँ, जो परमेश्वर के सम्मुख स्थित हैं, सत्य का द्रष्टा देव हैं, योद्धा हैं, आनन्द के शक्तिशाली विधाता हैं।

अग्नि देव को देवी-देवताओं का मुख एवं जिह्वा माना गया है। अग्नि देव को अर्पण किया गया हविष्य वे (देवी-देवता) भक्षण करते हैं। अग्नि देव की महिमा का बखान करते हुए, उन्हें भुवनों का राजा कहा गया है, जो सब का कल्याण करते हैं। 'राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।' - (१/९८/१) प्रज्ज्वलित अग्नि के स्वर्णिम वर्ण की तुलना विद्युत की आभा से की गई है और अग्नि की दीप्ति को स्वर्ण के अलंकारों के सदृश सुशोभनीय कहा गया है। 'तब श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतः।' - (१०/९१/५) 'श्रिये रुक्मो त रोचत उपाके' (४/७/५)

'शारदातिलक' (५/१९) में अग्नि देव का ध्यान-श्लोक इस प्रकार है —

अग्निं प्रज्वलित वन्दे जातवेदं हुतासनम् ।
सुवर्ण वर्णममलं समिद्धं विश्वतो मुखम् ।।

भावार्थ : मैं जाज्वल्यमान अग्निदेव की वंदना कर रहा हूँ, जो धन-धान्य को देने वाले हैं तथा समस्त देवताओं के हविर्भाग को यथा-स्थान पहुँचा देते हैं। इनकी कान्ति प्रज्ज्वलित स्वर्ण जैसी है तथा इनकी ज्वालाएँ दसों दिशाओं में व्याप्त हैं। ये पूर्णरूप से अपने तेजोमय रूप में स्थित हैं।

एक अन्य ध्यान-श्लोक में अग्निदेव को कमल के आसन पर विराजमान तथा उनकी कान्ति जपा के पुष्प के समान लाल रंग की बतलाई है। (**हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद् वह्निं बद्धमौली जटाभिः।** – शा. ति. ५/३४)

'श्री सूक्त' में श्रीलक्ष्मी को भी 'हरिण्यवर्णा' एवं 'स्वर्ण-रजत-स्रजाम' कहा गया है। ऋग्वेद संहिता में करीब १७७ 'अग्निसूक्त' हैं, जिनमें अग्नि देव की दीप्ति, महिमा एवं महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। इन सूक्तों में बहुसंख्यक सूक्तों में अग्नि देव से धन-धान्य, सम्पत्ति-समृद्धि, संतति-सौभाग्य आदि सांसारिक सुख-सुविधाओं को प्रदान करने की भी याचना की गई है।

उदाहरणार्थ निम्नांकित ऋचाओं को देखें —

(i) *स इधानो वसुष्कविरग्निरीलेन्यो गिरा।*
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दिदिहि। - (१/७९/५)

भावार्थ : हे बहुमुख, प्रज्ज्वलित, स्थान-सम्पन्न, स्तुत्य एवं धन-सम्पन्न अग्निदेव! आप हमें विपुल धन दीजिये।

(ii) *इळामग्ने पुरुर्दसं सनिं गोः शश्त्तमं हवमानाय साध।*
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजाया ऽग्ने साते सुमति भूत्वस्मे।। - (३/५)

भावार्थ : हे अग्निदेव! आप के भक्तों को आप चिरस्थायी, उपजाऊ, गौ-संवर्धक भूमि एवं वंश-वृद्धि हेतु संतति प्रदान कीजिये। आप की हम पर सतत कृपा बनी रहे, यही कामना है।

(iii) *किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं विनोवोचो जातवेद श्चिकित्वान् ।*
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पंदन निदाना अगन्म।। - (४/५/१२)

भावार्थ : हे सर्वज्ञ एवं ज्ञानी वैश्वानर अग्निदेव स्वर्ग लोक और पृथ्वी पर सरलता से प्राप्त होने वाले मनोहारी एवं गूढ़ धन आप हमें दिखलावें। हम निर्धनों को अच्छा निवास स्थान दिलवावें।

(iv) *तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर।*
स क्षेपयत् स पोषयद् भुवद् वाजस्य सातय उतैधिपृत्सुनोवृधे।। - (५/९/७)

भावार्थ : हे बलवान अग्ने! ऐश्वर्य और अन्न देकर आप हमारा पोषण करें तथा युद्ध में हमें विजय दिलवावें।

(v) *एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम।*
विश्वा स्तोत्रृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।। - (७/३/१०)

भावार्थ : हे स्तोत्रस्तुत एवं सामस्तुत अग्निदेव! आप हमें विविध प्रकार की सम्पत्ति तथा बुद्धिमान और सुयोग्य पुत्र प्रदान कीजिये। हमारा कल्याण कीजिये और आप हमारी रक्षा कीजिये।.

(vi) *वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरु स्पृहः।*
सुवीर्यस्य प्रजा यतो यशस्वतः ।। - (८/२३/२७)

भावार्थ : हे अग्निदेव! आप हमें उत्तम सम्पत्ति, सामर्थ्य, कीर्ति एवं पुत्र-पौत्र प्रदान कीजिये।

(vii) *श्रीणामुदारो धरुण्णो रवीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोम गोयाः।*
वसुःसूनुः सहसो अप्सु राजा विभात्यग्र उषसाभिधानः। - (१०/४५/५)

भावार्थ : जलनिवासी, ऐश्वर्य उत्पादक, द्रव्यनिधि, कामपूरक, सोम संरक्षक एवं सर्व-व्यापी अग्निदेव को प्रातःकाल प्रदीप्त किया जाना चाहिए।

उपरोक्त उदाहरणों के अतिरिक्त अनेक 'अग्निसूक्तों तथा अन्य सूक्तों में भी अग्निदेव का सम्पत्ति, वैभव एवं अन्न आदि का अधिष्ठाता देवता मानकर, धन-धान्य एवं पुत्र-पौत्रादि के प्रदानार्थ प्रार्थना की गई हैं। (देखें ऋचा संख्या १/७९/९, १/६८/५, २/१/७, २/२/७, २/६/३, २/९/५, ३/२/१५, ३/३/७, ३/४/१, ३/१०/८, ३/१३/७, ३/१४/६, ३/१६/३, ३/१८/५, ४/२/२०, ५/१०/३, ५/२३/२, ५/२४/२, ५/२५/७, ६/१/१३, ६/१६/१२, ७/१५/६, ७/१६/१२, ७/१७/७, ८/१९/८, ८/२३/२७,२८-२९, ८/४३/१५, ८/

४४/१५, ८/७१/१३, ८/८५/६, ८/१०३/४-६, १०/११/८, १०/८०/७ एवं १०/१५६/२)।

'श्रीसूक्त' ऋग्वेद संहिता का एक परिशिष्ट सूक्त है तथा इस सूक्त के देवता (१) श्रीदेवी एवं (२) अग्निदेव हैं। सूक्तकार इस सूक्त में अग्निदेव से प्रार्थना करता है कि 'हे अग्निदेव! आप मेरे लिये श्रीदेवी (लक्ष्मी देवी) को आवाहित करें, जिससे मैं धन-धान्य, सम्पत्ति-समृद्धि एवं संतति-सौभाग्य से सम्पन्न हो सकूँ। (. . . लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह)। संभवतः मूल संहिता के अग्नि सूक्तों में वर्णित अग्नि देव के स्वरूप एवं सामर्थ्य के आधार पर ही कालान्तर में श्रीदेवी (लक्ष्मी देवी) के देवत्व की अवधारणा एवं परिकल्पना हुई है।

(२) देवराज इन्द्र

देवराज इन्द्र वैदिक युग के सर्वप्रिय देवता थे। ऋग्वेद संहिता के प्रायः २५० सूक्तों में देवराज इन्द्र का वर्णन है तथा ५० सूक्त ऐसे हैं, जिनमें दूसरे देवताओं के साथ देवराज इन्द्र का वर्णन है। अधिकांश विद्वानों की सम्मति में देवराज इन्द्र वृष्टि तथा झंझावात के देवता हैं, जो बादलों में गर्जन एवं बिजली की चमक पैदा करते हैं। प्रकृति का कोई भी उपादान इतना शक्तिशाली नहीं है, जितना विद्युत-प्रहार। यह विद्युत प्रहार ही इन्द्र का वज्र-प्रहार है। इन्द्र को अग्नि का जुड़वाँ भाई (६/५९/२) कहा गया है। देवराज इन्द्र को दानवों का संहारक, दुष्टों का नाश करनेवाला एवं विजय प्रदान कराने वाला देवता माना गया है। इनके साथ-साथ देवराज इन्द्र को उर्वरता के देवता ('उर्वराजिते', २/२१/१) एवं ('उर्वरासाम', ६/२०१) कहा गया है। 'श्री सूक्त' में श्री देवी (लक्ष्मी देवी) से उर्वरता एवं वनस्पति वर्धनार्थ प्रार्थना की गई है। (गंध द्वारां दुराधर्षा नित्यपुष्टां करीषिणीम्) अन्न-धान्य, धन-सम्पत्ति एवं पुत्र-पौत्रादि प्रदान करने की याचना भी देवराज इन्द्र से कई सूक्तों में की गई है। देवराज इन्द्र की याचना दारिद्रय निवारण एवं समृद्धिकरण के लिए जिन सूक्तों में की गई है, उनकी निम्नांकित कतिपय ऋचाओं को देखें —

(i) *नि सर्वसेन इषुधीरसक्त समर्यो गा अजति यस्यवष्टि।*
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरिवायं मा पणिर्भूर स्मदधि प्रवृद्ध।। - (१/३३/३)

भावार्थ : हे महान सेनाओं के अधिपति, धनुर्धारी इन्द्र! आपके प्रिय भक्तों को आप विपुल गौ-धन प्रदान करते हैं। हे विपुल सम्पत्तिदाता इन्द्र! आप हमारे प्रति कृपण न होवें अर्थात् हमें विपुल सम्पत्ति देवें।

(ii) *स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः।*
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवा ऽस्मे रयिं रासि वीर वन्तम्।। - (२/११/१३)

भावार्थ : हे इन्द्रदेव! आपको हविष्य अर्पण करनेवाले एवं आपकी सहायता के इच्छुक भक्तों पर कृपा कीजिये। पुत्र-पौत्रादि सहित हमें अटूट सम्पत्ति प्रदान कीजिये।

(iii) *इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दृक्षस्य सुभगत्वमस्मे।*
पोषं रयीण्णमरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानंवाचः सुदिन त्वमह्नाम।। - (२/२१/६)

भावार्थ : हे इन्द्र देव! आप हमें उत्तम सम्पत्ति, भाग्यवर्धक ज्ञान, समृद्धि, धन, आरोग्य, मधुर-वाणी एवं अच्छे दिन प्रदान कीजिये।

(iv) *नृवत् त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः।*
इक्षे हि वस्व उभयस्य राजन् धा रत्नं महि सथूरं बृहन्तम।। - (६/१९/१०)

भावार्थ : हे स्वर्गिक एवं पार्थिव सम्पत्ति के अधिष्ठाता इन्द्रदेव! आप हमें सेवक, कीर्ति और अक्षय संपत्ति प्रदान करें एवं हमारा मार्गदर्शन भी करें।

(v) *आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्षि जनानाम् ।*
धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर।। - (८/२४/४)

भावार्थ : हे स्तुत्य एवं भक्त-वत्सल इन्द्रदेव! आप हमें चिर वांछित धन एवं धैर्य प्रदान कीजिये।

(vi) *यत् त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम्*
अभि तद् द्यावा पृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः।। - (१०/४७/८)

भावार्थ : हे इच्छापूरक इन्द्रदेव! असाधारण एवं जग में प्रशंसित निवास-स्थान एवं पुत्र रूपी आश्चर्यजनक और शक्ति सम्पन्न धन आप हमें दीजिये।

ऋग्वेद संहिता के अनेक सूक्तों में देवराज इन्द्र से सम्पत्ति एवं पुत्र-पौत्रादि प्रदान करने के लिये प्रार्थना की गई है। (२/१३/१३, २/२०/९, ६/३२/४, ६/४५/१२, ६/४५/३०, ७/२०/९, ७/२४/१, ७/२७/५, ८/१३/१२, ८/२४/४, १०/४२/१० आदि)। लेकिन किसी भी सूक्त में देवराज इन्द्र का संबंध 'श्री' या 'लक्ष्मी' देवी से होने का कोई संकेत नहीं है। ऋग्वेद के परिशिष्ट सूक्त 'श्रीसूक्त' में, जो 'श्रीदेवी (लक्ष्मी देवी)' का प्राचीनतम सूक्त है, के भाष्य में देवी का नाम 'इन्दिरा' भी है। (आनन्द कर्दम चिक्लीत इन्दिरासुता ऋषयः) जो देवी का देवराज इन्द्र से संबद्ध होने का बोधक है।

वेदोत्तर काल में तो देवराज इन्द्र एवं देवी लक्ष्मी के घनिष्ठ संबंधों का उल्लेख कई पुराणों में मिलता है। संभवतः श्रीदेवी (लक्ष्मी देवी) की अवधारणा एवं परिकल्पना पर देवराज इन्द्र के देवत्व के स्वरूप एवं सामर्थ्य का भी प्रभाव पड़ा है।

(३) देवमाता अदिति

देवी अदिति ऋग्वैदिक देवियों में एक प्रमुख देवी है, जिसे देवमाता माना जाता है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के सूक्त सं. ८९ में देवी अदिति के देवत्व की व्याप्ति को असीम कहा गया है। इस सूक्त की ऋचा १० में कहा गया है कि देवी अदिति आकाश है, वायु है, माता है, पिता है, सर्व देवता है, सर्व मानव है और वही भूत, वर्तमान और भविष्य है।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदिति पंचजना अदिति र्जातमदितिर्जनित्वम॥

देवी अदिति के स्वरूप का वर्णन करते हुए उसे 'तेजस्वी/प्रकाशमयी' कहकर उनसे सुरक्षा की याचना की गई है। (अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋता वृधो देवस्य श्लोकं सवितृर्भनामहे। ७/८२/१०)। देवी अदिति के मुख की उपमा उषा से देते हुए (१/११३/१९) उनसे धन और प्रकाश देने तथा आराधकों को सुख और सुरक्षा देने की प्रार्थना अनेक सूक्तों में की गई है। - (८/१८/६-७ तथा १०/१००)

देवी अदिति के स्वरूप का जो वर्णन किया गया है, उसका बिम्ब हमें देवी लक्ष्मी के स्वरूप में दिखलाई देता है तथा यह संभव है कि श्री लक्ष्मी के स्वरूप की परिकल्पना में इससे सहायता मिली हो। यजुर्वेदीय संहिता में अदिति को विष्णु पत्नी कहा गया है तथा बाद के पौराणिक साहित्य में लक्ष्मी को विष्णु पत्नी माना गया है। इस प्रकार लक्ष्मी और अदिति परस्पर संबंधित देवियाँ हैं तथा ऐसा प्रतीत होता है कि देवी लक्ष्मी के देवत्व एवं स्वरूप की अवधारणा में देवी अदिति के देवत्व एवं स्वरूप का प्रभाव पड़ा है।

(४) देवी उषा

'वस्' धातु से बना 'उषा' शब्द का अर्थ है — प्रकाश युक्त। देवी उषा एक प्रमुख ऋग्वैदिक देवी है तथा जिसकी स्तुति में अनेक सूक्त रचे गये हैं। इन सूक्तों में देवी उषा के देवत्व, कर्तृत्व, स्वरूप, वैभव एवं स्वभाव आदि का जो वर्णन किया गया है, उस पर जब हम विचार करते हैं तो देवी उषा में हमें श्रीलक्ष्मी जी के देवत्व, कर्तृत्व, स्वरूप, वैभव एवं स्वभाव आदि का बिम्ब दृष्टिगोचर होता है। देवी उषा को 'हिरण्य वर्णा' एवं

'रथ युक्त' कहा गया है। (उषासूक्त ३/६१) जैसा 'श्री सूक्त' में देवी लक्ष्मी के लिये कहा गया है।

प्रथम मंडल के सूक्त संख्या ११३ (उषा का पालुपद सूक्त) में देवी उषा के स्वरूप का प्रतिपादन बड़ी ही काव्यात्मक भाषा में करते हुए, उसे 'पृथ्वी की समस्त सम्पत्ति की स्वामिनी' कहकर उसका अभिवंदन किया गया है —

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषे अद्येह सुभगे व्युच्छ।। - (११३/७)

भावार्थ : शुभ्र-वसना, प्रकाशदायिनी एवं पृथ्वी की समस्त सम्पत्ति की स्वाभिनी एवं प्रतिदिन उदित होने वाली हे अन्तरिक्ष कन्ये! हे सुन्दरी उषे! तुम आज भी प्रकाश मान होवो।

सप्तम मंडल में एक साथ सात 'उषा सूक्त' (सूक्त संख्या ७५ से ८१) हैं, जिनके द्वारा देवी उषा का आवाहन एवं स्तवन किया गया है। इन सूक्तों में से एक सूक्त (सूक्त संख्या ७५) में देवी उषा को 'सम्पत्ति साम्राज्ञी', 'अन्नपूर्णा' एवं 'ऐश्वर्य-सम्पन्ना' जैसी विशिष्ट अर्थ पूर्ण संज्ञाओं से सम्बोधित किया गया है और देवी उषा से अम्यर्थना की गई है, वह स्तुतिकर्त्ताओं को सद्भाग्य, यश, धन-धान्य, पशु-धन एवं सम्पत्ति आदि प्रदान करें। इस सूक्त में ८ मंत्र हैं तथा अन्तिम आठवाँ मंत्र इस प्रकार है —

नू नो गोमद् वीरवद्धेहिरत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पातस्वस्तिभिः सदा नः।।

भावार्थ : धेनु-वृषभ और पुत्र-पौत्रदात्री, उत्कर्षशाली, कल्याणकारी एवं जलमाता उषा हमारी ओर बार-बार आओ। हमारा कल्याण कर हमारी रक्षा करो।

सप्तम मंडल के सूक्त संख्या ८१ की ऋचा संख्या ६ इस प्रकार है : —

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः।
चोदयित्री मघोनः सुनृतावत्युषा उच्छदय स्रिधः।।

भावार्थ : हे भाग्य प्रेरक, वाक्-चातुर्यदायिनी, शत्रुनाशक एवं स्तोत्रों द्वारा स्तुत्य, उषा देवी! तुम हमें अविनाशी और ऐश्वर्यप्रद यश के साथ धेनु-वृषभ सहित धन-धान्य प्रदान करो।

ऐसी ही धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादि, सम्पत्ति-समृद्धि भौतिक सुख-सुविधा की याचना देवी उषा से अनेक सूक्तों में की गई है, जिनमें कतिपय सूक्त ये हैं — १/९२/८, १/४८/६, ४/५५/९, ४/५१/१०, ६/६४/४, ६/६५/६।

ऋग्वैदिक सूक्तों में उषा का मानवीकरण कर, उसके सौंदर्य एवं तेज का जो वर्णन किया गया है, उसी के आधार पर संभवतः परवर्ती काल में देवी लक्ष्मी के स्वरूप की कल्पना की गई है। ज्योति के वसन पहनकर उषा पूर्व में प्रकट हो अपने आकर्षक सौंदर्य को प्रदर्शित करती है। (एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसना समना पुरस्तात। (१/१२४/३) और तमस को भगा देती हैं। लाल रंग के अश्वों से जुड़े सुनहले रथ पर आरूढ़ हो, उषा आकाश में प्रकट होती है। (७/५६/६ एवं ७/७८/१)। 'श्री सूक्त' में देवी लक्ष्मी के लिये भी 'अश्वपूर्वा रथमध्यां' कहा गया है। देवी उषा के स्वरूप एवं देवत्व की शक्ति और देवी लक्ष्मी (श्री देवी) के स्वरूप एवं देवत्व की शक्ति में साम्यता प्रतीत होती है।

(४) श्री सूक्त : ऋग्वेद संहिता का एक परिशिष्ट सूक्त

श्री सूक्त में वर्णित श्रीदेवी (लक्ष्मी देवी) के देवत्व के स्वरूप एवं सामर्थ्य में हमें ऋग्वैदिक देवी-देवताओं विशेषतया अग्नि देव, देवराज इन्द्र, देवमाता अदिति एवं देवी उषा की कतिपय विशिष्टताओं के दर्शन होते हैं। संभवतः इन देवी-देवताओं के स्वरूप एवं सामर्थ्य की पृष्ठभूमि में कालान्तर में धन-धान्य एवं सम्पत्ति-समृद्धि आदि सांसारिक सुख-सुविधाएँ की प्रदात्री ऐहिक देवता 'श्रीदेवी' (लक्ष्मी देवी) की अवधारणा एवं परिकल्पना हुई है।

(श्री सूक्त की सविस्तार चर्चा अ. — में की गई है तथा परिशिष्ट में श्री सूक्त (हिन्दी भावार्थ सहित) उद्धृत किया गया है।)

(५) ऋग्वेद में अश्री (अलक्ष्मी) की परिकल्पना और उसके नाशन का सूक्त

श्री सूक्त के मंत्र संख्या ८ में श्री या लक्ष्मी की ज्येष्ठ बहिन अलक्ष्मी, जिसे दरिद्रता की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है, के नाश की कामना प्रार्थी करता है (. . . ज्योष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्)। 'श्री सूक्त' ऋग्वेद की मूल संहिता में नहीं है तथा इसे बाद में परिशिष्ट सूक्त के रूप में जोड़ा गया है; लेकिन अश्री या अलक्ष्मी के नाश के संबंध का 'अश्री नाशन सूक्त' (१०/१५५) मूल ऋग्वेद संहिता में है। इस प्रकार श्री या लक्ष्मी के आवाहन के पूर्व अश्री या अलक्ष्मी के नाशन की प्रार्थना ऋग्वेद में की गई

है। 'अश्री नाशन सूक्त' (ऋ. १०/१५५) की प्रथम ऋचा में कहा गया है कि हे सदान्वये! हे एकाक्षी! हे टेड़े-मेड़े अंगों वाली! हे वीभस्त दुष्टा! तू यहाँ से दूर पर्वत पर चली जा। (अरायि काणे विकटे गिरि गच्छ सदान्वे।) इसी सूक्त के तृतीय मंत्र में कहा गया है कि हे वीर स्तोत्र गान करने वालो! सागरतट के अपौरुषेय काष्ठ की साहयता से आप लोग इस दरिद्रता की देवी को दूर दूसरे तटों की ओर ले जाओ।

अदः यद दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपुरुषम्।
तत् आरभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परः तरम्।।

इस ऋचा में सागरतट के तैरनेवाले 'अपौरुषेय काष्ठ' का उल्लेख किया गया है, जिससे दरिद्रता के नाश होने का संकेत है। संभवतः सूक्तकार का यहाँ निर्देश 'नौका नयन' से है, जिसके द्वारा दरिद्रता का नाश संभव है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस निर्देश के द्वारा समुद्रीय यात्रा या व्यापार के माध्यम से अलक्ष्मी के परिहार एवं लक्ष्मी की प्राप्ति की ओर संकेत किया गया है। इस सूक्त के कथनानुसार दरिद्रता के निवास-स्थान दुष्प्रवृतियाँ हैं, जिनसे लक्ष्मी की प्राप्ति के इच्छुक को दूर रहना चाहिये तथा विपन्नता के नष्ट होने पर, सम्पन्नता अनायास आयेगी ही, फिर उसे कौन रोक सकता है। शौनक ने अपने ग्रन्थ 'बृहद् देवता' में इस सूक्त को अलक्ष्मी नाश करनेवाला सूक्त कहा है। (यदरायित्य लक्ष्मीघ्न, ८/६०)।

(ख) यजुर्वेद

यह द्वितीय वेद है। इसकी रचना मुख्यतः ऋग्वेदीय ऋचाओं के मिश्रण से हुई है। यह पद्धति-ग्रन्थ है, जो पौरोहित्य प्रणाली में यज्ञ-क्रिया को सम्पन्न करने के लिये संग्रहीत हुआ है। इसकी आजकल दो संहिताएँ मिलती हैं — प्रथम तैत्तिरीय और द्वितीय वाजसनेयी। इन दोनों संहिताओं की सामग्री प्रायः एक ही है, किन्तु उनके क्रम में अन्तर है। दोनों ही संहिताओं में 'श्री' शब्द का प्रयोग अनेक मंत्रों में किया गया है।

(i) 'श्री' शब्द का अर्थ

ऋग्वेदीय मंत्रों में प्रयुक्त 'श्री' शब्द के विभिन्न अर्थों के अतिरिक्त इस शब्द के अर्थ का विस्तार हमें यजुर्वेद में मिलता है। इस वेद में इस शब्द का प्रयोग ऐश्वर्य आदि के साथ-साथ 'ब्रह्मश्री' या 'ब्रह्म-ज्ञान' या 'तेज' आदि अर्थों में भी किया गया है।

उदाहरणार्थ :

(i) वाजसनेयी संहिता के अध्याय २ के मंत्र संख्या ५ के द्वारा मस्तक की 'श्री' को सम्पन्न करने यानि ब्रह्म-ज्ञान के तेज को मस्तक में प्रकट होने की प्रार्थना की गई है। (शिरो मे श्री . . .)

(ii) तैत्तिरीय संहिता में कथन है कि जब एक मनुष्य का स्वर्ग में वास हो जाता है, तो कहा जाता है कि उसने 'श्री' (ऐश्वर्य) प्राप्त कर लिया। (श्रीर्हि मनुष्यस्य सुवर्गो लोकी। ७/४/४/२)

'गतश्री' : श्री के आगे गत जोड़ 'गतश्री' शब्द का प्रयोग हमें, जिसे 'श्री' प्राप्त हो गई है, इस अर्थ में मिलता है। जो व्यक्ति 'गतश्री' होते हैं, वे कई प्रकार के यज्ञों को करने की पात्रता प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार 'गतश्री' व्यक्ति एक विशिष्ट या श्रेष्ठ व्यक्ति माना गया है।

उदाहरणार्थ तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि एक पंडित (ब्राह्मण), गाँव का मुखिया और योद्धा 'गतश्री' व्यक्ति हैं। (शुश्रुवान ग्रामणी राजन्यं। २/५/४/४)

(ii) 'श्री' और 'यश'

यजुर्वेद की दोनों संहिताओं में 'श्री' और 'यश' इन शब्दों को युग्म-शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है; जिससे 'श्री' और 'यश' की निकटता व्यंजित होती है।

उदाहरणार्थ : वाजसनेयी संहिता के अध्याय ३९ के मंत्र सं. ४ में कहा गया है— 'पशूनां रूप अन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा' अर्थात आहुति देते समय यह प्रार्थना की गई है कि पशु-धन, अन्न आदि, यश और श्री मेरे यहाँ वास करें। इस प्रकार काठक संहिता में यज्ञकर्ता अपने अंग स्पर्श करते हुए कहता है— 'शिरो मे श्रीः यशो मुखम्' यानि मेरा सिर श्री एवं यश मुख है। (३८/४)

(iii) 'श्री'-प्राप्ति का विधान

यजुर्वेद की संहिताओं हमें 'श्री' प्राप्ति के लिये कई प्रकार के यज्ञों के अनुष्ठान करने के विधान मिलते हैं। उदाहरणार्थ तैत्तिरीय संहिता में शत्रु (असुर) पर विजय प्राप्त करने के लिये 'पंचदशरात्र यज्ञ' करने का विधान है। (तेनासुरान पराभाव्य विजित्य श्रियमगच्छत। ७/३/७/१)। इसी प्रकार 'चतुर्विंसतिरात्र यज्ञ' करने से 'श्री' (ऐश्वर्य) की

प्राप्ति होती है। (श्रियां गच्छति . . .। ७/४/२/१) मैत्रायणी संहिता में अपने बराबरी वाले लोगों में श्रेष्ठता प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति को 'कौकिली सौत्रामणि' (३/११/१०) यज्ञ करना चाहिये।

(iv) 'श्री' का मूर्त रूप

'श्री' का मूर्त-रूप सर्वप्रथम हमें यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में मिलता है। अब तक जो 'श्री' शब्द एक भाव-वाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता था, उसे यहाँ व्यक्ति वाची संज्ञा बना दिया। इस संहिता के अध्याय ३१ के मंत्र संख्या २२ में 'श्री' और 'लक्ष्मी' को आदित्य (परम पुरुष) की दो पत्नियाँ कहा गया है। (श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्या वहोरात्रेपार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्) इस मंत्र में 'श्री' एवं 'लक्ष्मी'का मानवीकरण कर उन्हें दो अलग-अलग देवियाँ बतलाया गया है। इस मंत्र से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि वाजसनेयी संहिता के रचना-काल के समय 'श्री' और 'लक्ष्मी' की देवियों के रूप में अवधारणा एवं परिकल्पना भिन्न-भिन्न देवियों के रूप में थीं। सुप्रसिद्ध भाष्यकार श्री महिधर के अनुसार इस मंत्र में प्रयुक्त 'श्री' का अर्थ है 'वह, जिसके द्वारा सभी आश्रय योग्य होते हैं, और वह है श्री यानि सम्पत्ति और 'वह, जिसके द्वारा सभी लक्षित होते है, वह है 'लक्ष्मी' यानि सौंदर्य। लेकिन कई विद्वान इन अर्थों से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार 'श्री' का अर्थ पार्थिव सम्पत्ति करना उचित नहीं है, लेकिन 'श्री' आदित्य (परम पुरुष) की सम्पत्ति यानि शोभा, प्रकाश, ज्योति आदि है एवं लक्ष्मी का अर्थ है परम पुरुष का सौंदर्य।

यजुर्वेद का 'श्री सूक्त'

यजुर्वेद का 'रथे अक्षेषु वृषमस्य वाजेति' आदि चार ऋचाओं का एक श्री सूक्त (तैत्तिरीय ब्राह्मण-२/७/७/२) है, जो सम्पत्ति-समृद्धि वर्धक माना जाता है।

(ग) सामवेद

यह चार वेदों में से तीसरा है। इसके अधिकांश मंत्र ऋग्वेद से ही पुनः उद्धृत हैं तथा श्री या लक्ष्मी के अर्थ वैसे ही हैं जैसे ऋग्वेद में हैं।

अग्नि पुराण (अ. २६३) के अनुसार सामवेद का भी एक 'श्री सूक्त' है (३/२६७), जो 'श्रायन्त इव . . .' से प्रारम्भ होता है। यह लघु सूक्त ऋग्वेद के सूक्त ८/९९ (इन्द्रसूक्त) के मंत्र सं. ३ जैसा ही है।

(घ) अथर्ववेद

यह अंतिम वेद है तथा यह अन्य तीनों वेदों — ऋग्, यजुर् एवं साम की अपेक्षा बहुत बाद का है। इसके अनेक सूक्तों में 'श्री' और 'लक्ष्मी' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

(i) श्री का अर्थ

अथर्ववेद में भी ऋग्वेद की भाँति श्री शब्द का प्रयोग संदर्भानुसार शोभा, ऐश्वर्य, समृद्धि, विजय, मांगल्य, तेज, सुन्दरता आदि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उदाहरणार्थ निम्नांकित कतिपय 'श्री' शब्द के प्रयोगों को अर्थ सहित देखें —

(i) शोभा के अर्थ में :

इषिरा योषा युवति र्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य।
अश्वक्षभा सुहवा संभृत श्रीरा पप्रौ द्यावा पृथिवी महित्वा।। - १९/४९/१

भावार्थ : सवितृ पत्नी रात्रि की उपमा युवती से देते हुए कहा गया है कि उसकी शोभा द्यावा-पृथ्वी में सुविख्यात है।

(ii) ऐश्वर्य के अर्थ में :

. . . . . . श्रियां मा धेहि भूत्याम् ।

भावार्थ : (भूमिसूक्त-१२/१) में कहा गया है कि हे पृथ्वी माता! हमें ऐश्वर्य युक्त बनाओ। - (ऋचा ६३)

(iii) समृद्धि के अर्थ में :

. . . . . . अस्य श्रियं उपसंयात। - ६/७३/१

भावार्थ : वरुण आदि से प्रार्थना की गई है कि वे समृद्धि प्रदान करें।

(iv) विजय के अर्थ में :

. . . . . . श्रेयो वान्वानो। ५/२०/९ (दुंदुभि सूक्त)

भावार्थ : हे दुंदुभि! तुम हमें युद्ध में विजय (श्री) प्रदान कराओ।

(ii) 'लक्ष्म' शब्द का अर्थ :

यह शब्द अथर्ववेद में 'चिन्ह' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उदाहरणार्थ निम्नांकित प्रयोग देखें —

(i) श्वेत कुष्ठ नाशन सूक्त (१/२३) में श्वेत कुष्ठ के चिन्ह (दाग) के लिये 'लक्ष्म श्वेतमनीनशम्' कहा गया है।

(ii) गोकर्णयो र्लक्ष्यकरणम् सूक्त (६/१४१) में गायों की पहचान के लिये उनके कानों पर चिन्ह विशेष बनाने के लिये 'एवा सहस्र पोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना' कहा गया है।

(iii) श्री और लक्ष्मी का अर्थ

सामान्यतः अथर्ववेद के समय श्री और लक्ष्मी का मूर्त-रूप या देवी रूप प्रचलित हो चुका था तथा ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के हो गये थे अर्थात् समृद्धि की देवी, लेकिन ऐसा प्रतीत होता कि दोनों का भेद पूरी तरह मिटा नहीं था। अथर्ववेद के सूक्त संख्या १२/५ में ऋचा ६ एवं ७ में 'श्री' और 'लक्ष्मी' दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही संदर्भ में किया गया है, जहाँ ये भिन्न-भिन्न अर्थों के बोधक हैं।

(iv) पौष्टिक कर्म संबंधी सूक्त :

ब्रह्मविषयक दार्शनिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त अथर्ववेद में पौष्टिक कर्मों संबंधी सूक्तों का भी समावेश है। जीवन की पुष्टि के लिये किया हुआ धार्मिक कृत्य पौष्टिक कहलाता है। पौष्टिक कर्मों संबंधी सूक्तों में उपासक आराध्य से धन, धान्य, सम्पत्ति, समृद्धि, दीर्घायु एवं यश आदि की प्राप्ति के लिये स्तुति करता है। समृद्धि वर्धन के लिये अथर्ववेद में कई देवी-देवताओं से प्रार्थना की गई, जिनमें प्रमुख हैं — (१) अग्निदेव, (२) देवराज इन्द्र, (३) सवितृ, (४) उषा देवी आदि। समृद्धि की देवी के रूप में 'श्री देवी' (लक्ष्मी देवी) की अवधारण अथर्ववेद के समय विद्यमान थी। ऋग्वेद संहिता का परिशिष्ट सूक्त 'श्री सूक्त', जिसमें समृद्धि की देवी श्री देवी और लक्ष्मी देवी के एकीकृत रूप के दर्शन होते हैं, अथर्ववेद की रचना काल से पहले का है; लेकिन श्रीदेवी (लक्ष्मी देवी) या श्रीलक्ष्मी ही मात्र समृद्धि आदि की दात्री नहीं थी; दूसरे देवता भी थे, जिनमें प्रमुख हैं — (१) अग्निदेव, (२) देवराज इन्द्र, (३) सवितृ देव एवं उषा देवी जिनसे भी समृद्धि आदि प्रदान करने के लिये प्रार्थना की गई है।

(१) अग्निदेव :

अथर्ववेद के तृतीय कांड के 'रयि संवर्धन सूक्त' के द्वारा अग्निदेव से धन प्राप्ति के लिये प्रार्थना की गई है। (तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम्। (३/२०/१)

(२) देवराज इन्द्र :

अथर्ववेद के १९वें कांड के 'धन काम सूक्त' (सू. सं. ५) के द्वारा देवराज इन्द्र से विविधि प्रकार की सम्पत्ति प्रदान कर उपासकों को समृद्ध बनाने की याचना की गई है।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥

(३) सवितृ देव

अथर्ववेद के षष्ठकांड के 'नवशाला होमसूक्त' (सू. सं. १) के द्वारा सवितृ देव से धन-सम्पन्न करने की प्रार्थना की गई है। (दोषो गाय बृहद्गाय द्युमद्धेहि। — ६/१/१)

(४) उषा देवी

अथर्ववेद के १९वें कांड के 'शांति सूक्त' (सू.सं.१२) के द्वारा उषा देवी की प्रशंसा करते हुए, कहा गया है कि देवी उषा की कृपा से ही अन्न की प्राप्ति होती है और हम पुत्र-पौत्र सहित शतायु प्राप्त करते हैं।

उषा अप स्व सुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः॥

उपरोक्त सूक्तों एवं अन्य समृद्धि वर्धक सूक्तों (४/४०, ६/७, ६/३५-३६, ७/२०, ७/३९, ७/४०, ७/४८, ७/७९ एवं ७/८५) में विभिन्न देवी-देवताओं से समृद्धि वर्धन के लिये प्रार्थना की गई है। इनके अतिरिक्त श्रीदेवी (लक्ष्मी देवी) संबंधी भी दो समृद्धि वर्धक सूक्त हैं — एक है 'श्री सूक्त' (१/१५) और दूसरा है 'पाप लक्षण नाशन सूक्त' (७/११५) तथा श्री की प्राप्ति के लिये 'पंचौदन यज्ञ' करने का भी विधान सूक्त सं. ९/५ में है।

पंचौदन यज्ञ (**सूक्त संख्या ९/५**)

'श्री' की प्राप्ति एवं शत्रुओं की श्री के नष्ट होने के लिये अथर्ववेद में 'पंचौदन यज्ञ' करने का विघान है। इस यज्ञ में अज (बकरा) की बलि देने का विघान है। इस सूक्त में यज्ञ कैसे करना चाहिये तथा कौन-से प्रदार्थों की आहुति देनी चाहिये, इन के बारे में सूक्त में विस्तार पूर्वक विवरण दिया गया है।

(५) श्री सूक्त

अथर्ववेद का भी एक 'श्री सूक्त' (१/१५) है, जो 'सं सं स्रवन्तु सिन्धवः' ऋचा से प्रारम्भ होता है तथा इस सूक्त का पाठ धन-समृद्धि प्राप्ति के लिये किया जाता है। इस

सूक्त में चार मंत्र हैं, जो इस प्रकार हैं —

सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहो मि ।।१।।

इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः।
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः।।२।।

ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ।।३।।

ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ।।४।।

भावार्थ : नदियाँ, वायु एवं पक्षीगण मेरी इष्ट सिद्धि कीजिये। पुरातन देवगण मेरे यज्ञ में अवतीर्ण हों, दूध-भात का हविष्य स्वीकार कीजिये ।।१।।

हे देवताओं! मेरे द्वारा स्तोत्र सहित अर्पित हविर्द्रव्य को स्वीकारने के लिये आप पधारिये और मुझे संतति एवं पशु-धन से समृद्ध कीजिये। मेरे निवास-स्थान पर एक विशाल पशुशाला का आप निर्माण कीजिये ।।२।।

(हे देवताओं!) सतत प्रवाहित नदियों और कुओं की सहायता से मुझे धन-धान्य से समृद्ध कीजिये ।।३।।

हे देवताओं! घी, दूध और जल की विपुलता से आप मुझे सम्पन्न कीजिये ।।४।।

अग्नि पुराण (अ. २६३) के अनुसार अथर्ववेद का 'श्री सूक्त' 'श्रियं धातुर्मयि धेहि' ऋचा से आरम्भ होता है, परन्तु आजकल उपलब्ध अथर्ववेद की संहिता में यह सूक्त नहीं है। यह सूक्त 'आपस्तम्ब श्रौत्र सूत्र' (४/७/४) में मिलता है, जो इस प्रकार है —

श्रियं धातुर्मयि धेहि श्रियो माऽधिपति कुरु।
विशमिशानो मघवेन्द्रो मा यशस्रानयत्।।

यह सूक्त भी सम्पदा-समृद्धि वर्धक माना जाता है।

(vi) पाप-लक्षण-नाशन सूक्त (७/११५)

इस सूक्त में ४ मंत्र हैं, जिनमें लक्ष्मी के दो रूपों को बतलाया गया है। एक 'पुण्या लक्ष्मी' एवं दूसरा 'पापिष्ठा लक्ष्मी'। जब लक्ष्मी की उपस्थिति या अस्तित्व कल्याणकारी

एवं मांगल्य सूचक होता है, उसे 'पुण्या लक्ष्मी' कहते हैं। ऐसी 'पुण्या लक्ष्मी' को 'भद्रा लक्ष्मी' भी कहा जाता है। जब लक्ष्मी की उपस्थिति या अस्तित्व अमांगलिक और अनिष्टकारक होता है, उसे 'पापिष्ठा लक्ष्मी' कहते हैं। इसका दूसरा नाम है — 'निर्ऋति', जो विनाश और मृत्यु की देवी है। इस सूक्त में सूक्तकार 'अलक्ष्मी' (दरिद्रता) को दूर भाग जाने के लिये कहता है। (प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत्।) इस सूक्त के मंत्र सं. २ के द्वारा सवितृ देवता एवं मंत्र सं. ३ के द्वारा अग्निदेव (जातवेद) से दरिद्रता मिटाने तथा समृद्धि प्रदान करने की प्रार्थना की गई है तथा उपासक इन देवताओं से याचना करते हैं कि जो 'पुण्या लक्ष्मियाँ हैं, यानि सद्-प्रवृतियाँ हैं, वे जीवन में बार-बार प्रकट होवें तथा जो पापिष्ठा लक्ष्मियाँ यानि दुष्प्रवृतियाँ हैं, वे नष्ट हो जायँ। (रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ७/११५/४)।

अथर्ववेद काल में 'श्रीदेवी' और देवी लक्ष्मी के एकीकृत रूप के दो पक्षों (पुण्या एवं पापिष्ठा) को प्रस्तुत किया गया है तथा इन के भेद को प्रतिपादित किया गया है, जो कालान्तर में सौंदर्य-सौभाग्य की मंगलमयी देवी 'श्री' एवं 'पुण्या लक्ष्मी' का समन्वित रूप 'श्री लक्ष्मी देवी' के नाम से सर्वमान्य एवं सर्व पूज्य हुआ तथा जो सद्भाग्य, वैभव, समृद्धि, धन-धान्य एवं सुयश आदि की अधिष्ठात्री के रूप में उपास्य हुई।

ऋग्वेद के परिशिष्ट सूक्त 'श्री सूक्त' में श्री देवी (लक्ष्मी देवी) के देवत्व एवं कर्तृत्व का उदय हुआ था, उसे अथर्ववेद में समर्थन प्राप्त हुआ और उसका विकास हुआ पौराणिक काल में।

(ङ) ब्राह्मण-ग्रन्थों में देवी लक्ष्मी

ऋक्, यजुः और साम इन तीन संहिताओं के बाद वैदिक साहित्य में ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान आता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में श्रौत यज्ञों के कर्मकण्ड की विधि विस्तार पूर्वक दी गई है। प्रत्येक संहिता के कर्मकांड से संबंध रखने वाले एक या अधिक ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। जैसे ऋक् संहिता का मुख्य ब्राह्मण 'ऐतरेय' है। यजुर्वेद का 'शतपथ' और सामवेद का 'पंचविंश' या 'ताण्ड्य'। इनमें शतपथ ब्रह्मण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

(i) 'श्री' शब्द का अर्थ-विस्तार

ब्राह्मण ग्रन्थों में 'श्री' शब्द का प्रयोग अनेक मंत्रों आदि में मिलता है, जो भाववाचक संज्ञा या विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। संहिताओं में प्रयुक्त 'श्री' शब्द के अर्थों के अतिरिक्त इन ग्रन्थों में 'श्री' शब्द का प्रयोग अन्न, पशुधन, क्षत्र (राज-

सत्ता), राष्ट्र एवं राज्यश्री आदि सांसारिक सम्पन्नता एवं राजसी ऐश्वर्य एवं प्रभुत्व के अर्थों में भी प्रयुक्त किया गया है।

उदाहरणार्थ निम्नांकित 'श्री' शब्द का प्रयोग और उसका अर्थ देखें —

(i) 'श्री' की सम्बद्धता ब्राह्मण-ग्रन्थों में हमें राजसी समारोहों के विवरण में प्रदर्शित होती है। श्री, यश एवं अन्नाद्या की प्राप्ति एवं एकाधिपत्य स्थापित करने के लिये सम्राट् पद के अधिकारी राजा द्वारा राजसूय यज्ञ करने का विधान हैं। - (ऐतरेय ब्राह्मण ८/६ से ९)।

(ii) राज्याभिषेक राजा को श्री, यश एवं अन्नाद्या प्रदान करता है। - (ऐ. ब्रा. ७/२०/३)

(iii) राजसूय यज्ञ करने वाला सम्राट् अन्य राजाओं से उपहार आदि प्राप्त करता है और वह श्री से प्रतिष्ठित हो जाता है। (आदित्व इव.. श्रियं प्रतिष्ठित। ऐ. ब्रा. ७/३४/९)

(iv) ऐसी वर्षा, जो भूमि को उपजाऊ बनाती है, को श्री कहा गया है। (श्रियो वै पर्जन्यो वर्षीत)। शतपथ ब्राह्मण १२/४/१/११)

(v) वीणा की मांगलिक ध्वनि श्री का ही रूप है। वीणा वादक को श्री की प्राप्ति होती है। (वीणा श्रियमेवास्मिन् तत् धत। श. ब्रा. १३/१/५/१)

(vi) वर्षा से गीली धरती की सुन्दरता एवं चमक को 'श्री' कहा गया है। (श्री वैं पिलिप्पिला। श. ब्रा. १३/२/६/१६)

(vii) श्री वै वृक्षस्याग्र अर्थात् वृक्ष का उच्चतम भाग श्री है। ऐसा कहने का तात्पर्य है कि वृक्ष की हरियाली एवं वृद्धि का निवास वृक्ष के अग्रभाग पर निर्भर करता है। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/९/७/४)

(viii) क्षत्रं वैश्रीः अर्थात श्री ही क्षत्र (राज-सत्ता) है, ऐसा 'अग्नि स्तोत्र' यज्ञ करने के संदर्भ में कहा गया है (जैमिनीय ब्राह्मण-१/२७२)

(ix) 'अन्न वै श्री' अर्थात अन्न ही श्री है। (जैमिनीय ब्राह्मण १/११/७)

(x) 'श्रीमान पशुमान अर्थात जिसके पास पशु हैं, वह श्रीमान है।

श्री को पशु (धन) के अर्थ में प्रयोग किया गया है। (पंच विंश ब्राह्मण १३/२/२)

(ii) 'लक्ष्म' एवं 'लक्ष्मी' शब्द

'लक्ष्म' और 'लक्ष्मी' इन दोनों शब्दों का प्रयोग हमें ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। लक्ष्म शब्द का प्रयोग चिन्ह, संकेत, प्रतीक के अर्थ में एवं 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग ऐसा 'लक्ष्म' जो सौभाग्य एवं सम्पन्नता प्रदान करे, वह पुण्यालक्ष्मी तथा जो दुर्भाग्य एवं दरिद्रता सूचित करे वह पापी लक्ष्मी।

उदाहरणार्थ शतपथ ब्राह्मण में वेदी का निर्माण करते समय दाहिने हाथ की ओर की ईंटों को रखने को 'पुण्या लक्ष्मी' कहा गया है। (यस्य दक्षिणतो लक्ष्म भवतितं पुण्या लक्ष्मीक इति आचक्षत। श. ब्रा. ८/४/४/११)

समृद्धि, सम्पन्नता, सौभाग्य के प्रतीकों को लक्ष्मी कहते-कहते कालान्तर में 'लक्ष्मी' शब्द ही समृद्धि, सम्पन्नता एवं सौभाग्य का बोधक हो गया तथा बाद में उसका रूपान्तर एक देवी में हो गया, जो सौभाग्य एवं सम्पन्नता की अधिष्ठात्री के रूप में मान्य एवं पूज्य हुई।

(iii) शतपथ ब्राह्मण में वर्णित श्री (लक्ष्मी) की उत्पत्ति कथा (११/४/३/१४)

इस कथा में 'श्री' का मूर्त रूप प्रस्तुत किया गया है। श्री का मानवीकरण करके, उसे ब्रह्माजी की तपस्या से उत्पन्न एक सुन्दर देवी बताया गया है। समस्त ऐश्वर्य से शोभित, देदीप्यमान, प्रभायुक्त जब वह देवी ब्रह्माजी के सामने खड़ी हुई तो उसके सौंदर्य को देखकर देवगण उस पर मोहित हो गये और उन्होंने उस देवी को मारकर उसके ऐश्वर्य को छीन लेने की इच्छा ब्रह्माजी के सम्मुख व्यक्त की। ब्रह्माजी ने उन्हें स्त्री का वध करने से रोका, परन्तु उसकी विभूतियों को लेने की आज्ञा दे दी। तदनुसार अग्नि ने 'अन्नश्री', सोम ने 'राज्यश्री', वरुण ने 'साम्रज्यश्री', मित्र ने 'क्षत्र श्री', इन्द्र ने 'शक्तिश्री', बृहस्पति ने 'ब्रह्मश्री', सवितृ ने 'राष्ट्र श्री', पूषण ने 'धनश्री', सरस्वती ने 'पुष्टि' और त्वष्ट्रा ने 'रूप' आदि विभूतियाँ उस देवी से ले ली। तत्पश्चात् ब्रह्माजी के परामर्श से श्री देवी 'मित्रविन्द यज्ञ' करती है तथा उसके फलस्वरूप अपनी खोई हुई समस्त विभूतियाँ पुनः प्राप्त कर लेती है। इस लघुकथा से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि श्रीदेवी उक्त समस्त विभूतियों का समन्वित रूप है।

डॉ. उपेन्द्रनाथ धल ने इस कथा की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'विभिन्न देवता, जिन्होंने श्रीदेवी से उसकी विभूतियाँ छीनी, वस्तुतः श्रीदेवी के देवत्व की अवधारणा के पहले, वे उन विभूतियों के अधिष्ठाता थे और जब श्रीदेवी के देवत्व का उदय हुआ तब

वे उन सभी विभूतियों की अधिष्ठात्री एवं प्रदात्री माने जाने लगी।' (गोडेस लक्ष्मी (अंग्रेजी भाषा में) पृ. ३४) शतपथ ब्राह्मण की इस कथा में 'श्री' के मूर्त रूप 'श्रीदेवी' को समृद्धि प्रदान करने वाली शक्ति के रूप में प्रतिपादित किया गया है।

(च) गृह्य सूत्रों में देवी लक्ष्मी

पारिवारिक याज्ञिक अनुष्ठानों तथा परिवार के लिये आवश्यक धार्मिक कृत्यों एवं संस्कारों का सविस्तार विवरण गृह्य सूत्रों में किया गया है।

इन ग्रंन्थों में 'श्री' और 'लक्ष्मी' के अर्थों में कोई नवीनता नहीं है। पूर्ववर्ती साहित्य में जो अर्थ इनके किए गये हैं, उन्हीं के अनुरूप इनका प्रयोग गृह्य सूत्रों में भी किया गया है।

इन ग्रन्थों में हमें 'श्री' और 'लक्ष्मी' के देवी रूप में या मूर्त स्वरूप में भी दर्शन होते हैं। 'अग्नि गृह्यसूत्र' में श्रीदेवी और लक्ष्मीदेवी को ब्रह्माजी से प्रकट हुई बतलाया गया है। (२/५/३) 'काठक गृह्य सूत्र' के अनुसार विवाह पूर्ण किये जाने वाले यज्ञ में कन्या को अन्य देवी-देवताओं के साथ 'श्रीदेवी' और 'लक्ष्मी देवी' को भी आहुति देनी चाहिये। (. . . श्रियै स्वाहा लक्ष्म्यै स्वाहा। (१७/१) इसी प्रकार पारस्कर गृह्य सूत्र में 'सीता यज्ञ' का विवरण देते हुए कहा गया है, भूमि, भूति के साथ 'श्रीदेवी' को भी आवाहित करना चाहिये। (श्रीः प्रजां इह आवतु स्वाहा। (२/१७/१९)

उपरोक्त उदाहरणों के अतिरिक्त अन्य सूत्र-ग्रन्थों में भी 'श्रीदेवी' और 'लक्ष्मीदेवी' को आवाहन करने के विधान हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि सामान्यतया इन ग्रन्थों में 'श्री देवी' और 'लक्ष्मी देवी' को दो भिन्न-भिन्न देवियाँ माना गया है।

(छ) उपनिषदों में देवी लक्ष्मी

(i) उपनिषद से तात्पर्य

उपनिषद शब्द 'उप + नि + सद् + क्वीप्' शब्दों से बना है, जिसका अर्थ है — '(गुरु) के निकट 'रहस्यमय ज्ञान की प्राप्ति के लिये बैठना' अर्थात् उपनिषद वह साहित्य है, जिसमें जीवन और जगत् के रहस्यों का उद्घाटन, निरूपण एवं विवेचन है। औपनिषदिक साहित्य वैदिक साहित्य का अंतिम भाग है अथवा चरम परिणति है। वैदिक साहित्य का अंतिम भाग होने के कारण उपनिषदों को वेदांत भी कहा जाता है तथा इनमें वेदों के अन्तिम ध्येय 'ब्रह्म' का निरूपण है, अतः यह अध्यात्मपरक साहित्य है।

प्राचीन एवं परवर्ती उपनिषद

विभिन्न वैदिक शाखाओं पर आधारित बारह प्रमुख उपनिषद हैं, जिन्हें प्राचीन उपनिषद कहा जाता है। इनके अतिरिक्त सैकड़ों अन्य उपनिषद हैं, जो प्राचीन उपनिषदों के परवर्ती काल के हैं तथा जिन्हें हम 'परवर्ती उपनिषद' कह सकते हैं। ऐसे ही एक परवर्ती उपनिषद 'मुक्तिकोपनिषद' में १०८ उपनिषदों के नाम हैं। इन १०८ उपनिषदों के अलावा भी अनेक उपनिषद और हैं। परवर्ती उपनिषद मुख्यतः साम्प्रदायिक हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपनी प्राचीनता एवं श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये इन उपनिषदों की रचना की है। इन परवर्ती उपनिषदों में एक उपनिषद देवी लक्ष्मी के संबंध में भी है तथा इस उपनिषद का नाम है — 'सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद'।

(ii) प्राचीन उपनिषदों में 'श्री' शब्द का अर्थ और मानवीकरण

प्राचीन बारह उपनिषदों में से केवल दो — तैत्तिरीय उपनिषद एवं बृहदारण्यक उपनिषद में 'श्री' शब्द का प्रयोग मिलता है।

(१) तैत्तिरीय उपनिषद

यह उपनिषद तीन अध्यायों (वल्लियों) में विभाजित है, यथा — (१) शिक्षा वल्ली, (२) ब्रह्मानन्दवल्ली एवं (३) भृगुवल्ली। प्रथम अध्याय में शिक्षा का माहात्म्य प्रतिपादित किया गया है तथा चतुर्थ अनुवाक में ऐश्वर्य की कामना करने वाले व्यक्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना के साथ अग्नि में आहुति देने की रीति बतलाई गयी है। प्रथम अनुच्छेद का वाक्यांश, जिसमें 'श्री' (श्रियम्) शब्द प्रयुक्त किया गया है, इस प्रकार है —

"... ... आवहन्ती वितन्वाना। कुर्वाणाऽचीरमात्मनः। वासांसि मम गावश्च। अन्नपाने च सर्वदा। ततो मे श्रियम् आवह। लोमशां पशुभिः सह स्वाहा।" (१/४/१)

उक्त वाक्यांश का भाव यह है कि 'हे अग्नि के अधिष्ठाता परमेश्वर! जो मेरे स्वयं के लिये आवश्यकता होने पर बिना विलम्ब तत्काल ही नाना प्रकार के वस्त्र, गौएँ और खाने-पीने की विविध सामग्री सदैव प्रस्तुत कर दे, उन्हें बढ़ाती रहे तथा उन्हें नये रूप से रच दे, ऐसी 'श्री' को तू मेरे लिये भेड़-बकरी आदि रोएँ वाले एवं अन्य प्रकार के पशुओं सहित ला दो अर्थात् समस्त भोग सामग्री का साधन रूप धन मुझे प्रदान करो।' इस मंत्र का उच्चारण करके 'स्वाहा' शब्द के साथ अग्नि में आहुति देनी चाहिये तथा ऐसा करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। यहाँ 'श्री' का संबंध भेड़-बकरी आदि रोएँदार पशुओं से बतलाया गया है।

२. बृहदारण्यक उपनिषद

बृहदारण्यक उपनिषद के द्वितीय अध्याय के तृतीय ब्राह्मण की ऋचा ६ में 'श्री' शब्द का प्रयोग 'बिजली' के अर्थ में हुआ है। यह ऋचा इस प्रकार है —

"... ... यथा सकृद्विद्युत्त सकृद्विद्युत्तेव ह वा अस्य श्रीर्भवति य" अर्थात् जो ऐसा जानता है, उसकी श्री बिजली की चमक के समान सर्वत्र एक साथ फैलने वाली होती है।

इसी उपनिषद के छठे अध्याय के 'संतानोत्पत्ति विज्ञान' शीर्षक चतुर्थ ब्राह्मण में 'रजोधर्म प्राप्त करने वाली स्त्री' को 'श्री' कहा गया है (. . . श्रीर्हं वा एषा स्त्रीणां यन्मलोद्वासास्त स्मान्मलोद्वाससं यशस्विनीमभिक्रम्योप मंत्रयेत् (६/४/६) अर्थात् ऋतुकाल की तीन रात बीतने पर जब पत्नी स्नान करके शुद्ध हो जाय तब स्त्रियों में मेरी पत्नी लक्ष्मी के समान है, क्योंकि निर्मल वस्त्र पहने हैं)। इस वाक्यांश से स्पष्ट है कि इस उपनिषद के रचना काल के पूर्व 'श्री' का मानवीकरण कर उसकी देवी के रूप में मान्यता एवं प्रतिष्ठा हो गई थी।

(iii) परवर्ती उपनिषदों में देवी लक्ष्मी

परवर्ती उपनिषदों में लक्ष्मी देवी या महालक्ष्मी-विषयक प्रमुख उपनिषद हैं — (१) 'सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद' तथा अनुषंगिक उपनिषद, (२) महानारायण उपनिषद्, (३) नारायण पूर्व तापिनी, (४) नारायण उत्तरतापिनी (५) देव्युपनिषद् (६) सीतोपनिषद एवं (७) कृष्णोपनिषद एवं (८) कमलात्मिक उपनिषद।

(१) सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद

यह उपनिषद तीन खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड में श्री महालक्ष्मी का श्रीसूक्त के अनुसार ध्यान, न्यास, पूजन और यजन की विधि है तथा द्वितीय एवं तृतीय खंडों में क्रमशः योग संबंधी उपदेश एवं नव-चक्र विवेक विषय पर प्रकाश डाला गया है।

प्रथम खंड में भगवान आदिनारायण ने देवताओं के पूछने पर, जो सौभाग्य लक्ष्मी विद्या का उपदेश दिया, उसका सविस्तार वर्णन है। भगवान आदिनारायण ने कहा कि प्रथम श्रीसूक्त की पंचदश ऋचाओं द्वारा देवी का ध्यान करना चाहिये तथा देवी के विभिन्न नामों को चतुर्थी विभक्ति में रखकर आदि में प्रणव और अंत में नमः बोलकर अंगन्यास करना चाहिये। जैसे ॐ हिरण्मय्यै नमः। इसके पश्चात् निम्नलिखित मंत्र के अनुसार ध्यान करना चाहिये —

अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा
करकमलधृतेष्टाऽभीतियुग्माम्बुजा च।
मणिकटकविचित्राऽऽलंकृता कल्पजालैः
सकलभुवनमाता संततं श्रीः श्रियै नः।।

अर्थात् हल्के लाल (गुलाबी) रंग के कमलदल पर बैठी हुई, कमल-पराग की राशि के समान पीत वर्णवाली, चारों हाथों में क्रमशः वर-मुद्रा, अभय-मुद्रा और दो कमल-पुष्प धारण किये हुए, मणिमय कड़ों से विचित्र शोभा धारण करनेवाली और अलङ्कार समूहों से अलङ्कृत, समस्त लोकों की जननी श्रीमहालक्ष्मीदेवी निरन्तर हमें श्रीसम्पन्न करें ।।१।।

उपरोक्त ध्यान के पश्चात यंत्र लेखन की विधि तथा पूजा विधान के बाद में सौभाग्य लक्ष्मी देवी की पूजा का क्रम एवं विधि का उल्लेख किया गया है तथा देवी की स्तुति करते हुए, उसे वरदा, विष्णुपत्नी, वसुप्रदा, हिरण्यरूपा, स्वर्णमालिनी, बिल्वप्रिया, ईश्वरी, भुक्ति, मुक्ति, विभूति, ऋद्धि, समृद्धि, कृष्टि, पुष्टि, धनदा, श्रद्धा, भोगिनी, भोगदा, सावित्री, धात्री एवं विधाती आदि संज्ञाओं से सम्बोधित किया गया है।

उपनिषद के अंत में इसके पाठ का फल बतलाते हुए, कहा गया है कि जो इस का नित्य पाठ करता है वह सब प्रकार के धन-धान्य, स्त्री-पुत्र, हाथी-घोड़े, गाय-भैंस, दास-दासी से युक्त योगी और ज्ञानी होता है तथा अंत में परम पद को प्राप्त करता है। (स सकल धन-धान्य सत्पुत्र कलत्र हयभूगज पशुमहिषी दासी-दास योग ज्ञानवान् भवति।)

(२) महानारायण उपनिषद

यह उपनिषद वैष्णव सम्प्रदाय से संबंधित है तथा इसका रचना काल विक्रमपूर्व दूसरी शताब्दी है। (हिन्दू धर्म कोश, पृ. ५०३) इस उपनिषद के चतुर्थ खंड में 'श्री सूक्त' के नौवें मंत्र, जो 'गंधद्वारां दुराधर्षां . . .' से आरम्भ होता है, का समावेश आठवें मंत्र के रूप में किया गया है तथा नौवें एवं दसवें मंत्र श्रीलक्ष्मी के स्तुतिपरक मंत्र हैं। नौवें मंत्र में गायत्री मंत्र की शैली में श्री लक्ष्मी देवी की स्तुति इस प्रकार की गई है ¾

'ॐ भूः लक्ष्मीः भुवः लक्ष्मीः सुवः कालकर्णी तन्नो महालक्ष्मीः प्रचोदयात्।'

इस मंत्र में देवी के विविधि रूपों का उल्लेख किया गया है तथा कालकर्णी, जो अलक्ष्मी (दरिद्रता) का पर्यायवाची है, को भी देवी लक्ष्मी का ही एक रूप बतलाया गया है।

दसवें मंत्र में लक्ष्मी देवी को पद्मप्रभा, पद्मसुन्दरी एवं धर्मरता कहा गया है।

इसी उपनिषद में अन्यत्र श्री देवी को धन, पशु-धन एवं अन्न आदि की दात्री कहा गया है। (मा नो हिंसी जातवेदो गामश्वं पुरुषं जगत्। अविभ्रदग्न आगहि श्रिया मा परिपातय। २/१०)

(३) नारायण पूर्व तापिनीयोपनिषद

यह भी वैष्णव सम्प्रदाय का ही एक उपनिषद है, जो छह खंडों में विभाजित है। इस उपनिषद में श्रीमन् नारायण को परब्रह्म तथा श्री महालक्ष्मी को मूल प्रकृति के रूप में निरूपण करते हुए, श्री महालक्ष्मी के लिये कहा गया है कि . . . वे (देवी महालक्ष्मी) देवताओं में देव लक्ष्मी, सिद्धों में सिद्धलक्ष्मी, मुमुक्षओं में मोक्षलक्ष्मी, योगियों में योगलक्ष्मी, मुनियों में विवेक बुद्धि, राजाओं में राज्य लक्ष्मी है। वे ही सृष्टि रूपा सरस्वती, स्थितिरूपा महालक्ष्मी, संहार रूपा रुद्राणी हो जाती हैं। विविध रूपों के उल्लेख के बाद श्री महालक्ष्मी की स्तुति दी गई है।

इस उपनिषद के छठे खंड में नारायण यंत्र की रचना-विधि दी गई है तथा उसके मध्य में 'लक्ष्मी नारायण' लिखकर पूजा करने लिये कहा गया है। (मध्ये लक्ष्मी नारायणं विक्षेप शत्त्यावरणं शक्तिप्रभाशक्ति त्रिकोण देवताःषट्कोणं वृद्धोल्कादयःपूज्याः।)

(४) नारायण उत्तर तापिनीयोपनिषद

यह भी एक वैष्णव उपनिषद है, जो तीन खंडों में विभाजित है। यह उपनिषद नारायण पूर्व तापिनीय के बाद का है; जैसा इसके नाम से ही ज्ञात होता है।

इस उपनिषद के द्वितीय खंड में श्रीमन् नारायण की श्रीलक्ष्मी के साथ पूजा करने का निर्देश दिया गया है। जो इस प्रकार है —

"ॐ नमो भगवते श्रीमन्नारायणाय महाविष्णवे अमितबल पराक्रमाय शंखचक्रगदाधराय लक्ष्मी समेताय गरुडवाहनाय दशावताराय, सर्वदुष्ट-दैत्यदानव संहरणाय, शिष्टप्रतिपालकाय परब्रह्मरूपाय महात्मने परमपुरुषाय पुंडरीकाक्षाय पुराण पुरुषाय शुद्धबुद्धाय सच्चिदानन्दस्वरूपाय महात्मने घणिः सूर्य आदित्य ॐ नमो नारायणाय सहस्रार हुं फट् स्वाहा।"

(५) देवी उपनिषद

इस उपनिषद् में देवी की ब्रह्म स्वरूपता का प्रतिपादन करते हुए, देवी का स्तवन किया गया है। मंत्र संख्या ७ में देवी महालक्ष्मी का गायत्री मंत्र है, जो इस प्रकार हैं —

'महालक्ष्मीश्च विद् महे। सर्व सिद्धिश्च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।'

भावार्थ : हम महालक्ष्मी को जानते हैं और उन सर्व शक्तिरूपिणी का ही ध्यान करते हैं। वे देवी हमें ज्ञान-ध्यान में प्रवृत करें।

इसी उपनिषद के आठवें मंत्र में श्री महालक्ष्मी को दक्ष की पुत्री कहा गया है। ('अदितिहृर्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।')

(६) सीतोपनिषद

इस उपनिषद में सीताजी को 'मूलप्रकृति' कहा गया है ('सीता भगवती ज्ञेया मूल प्रकृति संज्ञिता, सी. उ. २) तथा आगे कहा गया है कि 'वे श्री सीताजी शक्त्यासना-शक्ति स्वरूपा होकर इच्छा शक्ति, क्रियाशक्ति एवं साक्षात् शक्ति — इन तीन रूपों में प्रकट होती हैं। इच्छाशक्तिमय उनका स्वरूप भी विविध होता है — श्रीदेवी, भूमिदेवी एवं नीलादेवी के रूप में कल्याण रूपा, प्रभावरूपा तथा चंद्र, सूर्य एवं अग्नि रूपा वे होती हैं। अपने श्रीदेवी रूप में तीन प्रकार का रूप धारण करके श्री भगवान के संकल्पानुसार सम्पूर्ण लोकों की रक्षा के लिये व्यक्त होती हैं। वे लोकरक्षणार्थ श्रीदेवी तथा लक्ष्मी देवी रूप में लक्षित होती हैं। (श्रीदेवी त्रिविधं रूपं कृत्वा भगवत् संकल्पानुगुण्येन लोकरक्षणार्थं रूपं धारयति। श्रीरिति लक्ष्मीरिति लक्ष्यमाणा भवतीति विज्ञायते। — सी. उ., ४)

७. श्री कृष्णोपनिषद

इस उपनिषद में श्री कृष्ण के परिवारों के रूप में विभिन्न देवी-देवताओं के अवतरण का उल्लेख करते हुए, श्री कृष्ण के साथ उनकी एकरूपता प्रदर्शित की है। इसके एक मंत्र में देवी लक्ष्मी का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि शंख स्वयं विष्णु है और लक्ष्मी का भाई होने से लक्ष्मी रूप भी है। (. . . स स्वयं विष्णुर्लक्ष्मी रूपो व्यवस्थितः। श्री. कृ. १६) इस प्रकार अन्य देवी-देवताओं के साथ देवी लक्ष्मी का उल्लेख इस उपनिषद् में किया गया है।

८. कमलात्मिक उपनिषद

यह एक लघु आकार का उपनिषद है, जिसमें देवी की स्तुति वर्णित है तथा उससे प्राप्त होने वाले फल का उल्लेख किया गया है। स्तुति में देवी लक्ष्मी (कमला) को ऐसी आद्याशक्ति कहा गया है, जिसे पाकर आदिदेव भगवान तीन रूपों में प्रकट होकर लोकों का सृजन, पालन और संहार करते हैं।

शन्नो दिशतु श्रीर्देवी महा-माया वैष्णवी शक्तिराद्या।
यामासाद्य स्वयमादि-देवो भगवान परावरज्ञास्त्रिधा
-सम्भिन्नो लोकांस्त्रीन् सृजत्य वत्यत्तिच।।

निष्कर्ष

औपनिषदिक साहित्य प्रमुखतया ब्रह्म-ज्ञान एवं अध्यात्म परक है तथा देवी लक्ष्मी का संबंध प्रमुखतया सांसारिक सुख-सुविधाओं से है, अतः औपनिषदिक साहित्य में देवी लक्ष्मी पर पर्याप्त साहित्य नहीं है। ईशावास्य उपनिषद का कथन है कि धन ईश्वर का है, वही उसका स्वामी है, इसलिए धन-प्राप्ति की तृष्णा नहीं रखनी चाहिये।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजिथा मा गृधःकस्य स्विद् धनम्।।

धन के अर्जन का वैदिक साहित्य में निषेध नहीं है, बल्कि धन अर्जन को प्रोत्साहित किया गया है, लेकिन इसके साथ यह भी कहा गया है कि इसे समाज-हित में व्यय करना चाहिये।

शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त सं किर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह।।

- अथर्ववेद, ३/२४/५

•

श्री सूक्त : परिचय, प्रतिपाद्य विषय एवं माहात्म्य

(i) परमात्मा की शक्ति का स्तुतिपरक सूक्त

वेदों में उल्लिखित देव स्तुतियों के एक निश्चित मंत्र समूह को सूक्त कहते हैं। 'सूक्त' का शाब्दिक अर्थ है — 'शोभन उक्ति विशेष'। वेद चार हैं — (१) ऋग्वेद, (२) यजुर्वेद, (३) सामवेद एवं (४) अथर्ववेद। इनमें ऋग्वेद सबसे प्रमुख और मौलिक है, क्योंकि सम्पूर्ण यजुर्वेद एवं सामवेद का पद्यात्मक भाग तथा अथर्ववेद के कतिपय अंश ऋग्वेद से ही लिये गये हैं। ऋग्वेद की वर्तमान युग में उपलब्ध संहिता में १०२८ सूक्त हैं। इन सूक्तों में दो सूक्त — (१) 'पुरुष सूक्त' एवं (२) 'श्रीसूक्त' का विशेष महत्त्व है। 'पुरुष सूक्त' (१०/९०) में परब्रह्म या परमात्मा के विराट स्वरूप का वर्णन करते हुए, उसे 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' कहा है तथा उसे सृष्टि, स्थिति एवं लय का कर्ता बतलाया गया है और ये कार्य वह प्रकृति की सहायता से करता है। इस मूल प्रकृति के कई नाम हैं, जैसे शक्ति, देवी, भगवती, ईश्वरी, लक्ष्मी आदि। 'पुरुष सूक्त' जिस प्रकार परमात्मा का स्तुतिपरक सूक्त है, उसी प्रकार 'श्री सूक्त' परमात्मा की शक्ति का स्तुतिपरक सूक्त है। परमात्मा की इस शक्ति की संज्ञा 'श्री सूक्त' में 'श्री' और 'लक्ष्मी' है तथा इन्हें एक ही देवी के दो पर्यायवाची नाम माने गये हैं।

(ii) श्री और लक्ष्मी का समन्वय

प्रारम्भ में 'श्री' और 'लक्ष्मी' दो अलग-अलग देवियाँ मानी जाती थीं। यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के 'उत्तर नारायण सूक्त' (३१/२२) में श्री और लक्ष्मी को आदि

पुरुष की दो पत्नियाँ कहा गया है। ("श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे।") लेकिन परवर्ती काल में इन दोनों देवियों का समन्वय हो गया और 'श्री' और 'लक्ष्मी' की संज्ञाएँ एक-दूसरी की पर्यायवाची मानी जाने लगी। महाभारत के शांति-पर्व में यह स्पष्टतया उल्लेख है कि 'श्री' और 'लक्ष्मी' एक ही देवी के दो नाम हैं। तीसरा नाम है — 'भूतिः'। (भूतिर्लक्ष्मीति मामाहुः श्री रित्येवं च वासव" — २२५/८)

(iii) श्री सूक्त : एक खिल या परिशिष्ट सूक्त

'श्री' या 'लक्ष्मी' या श्रीलक्ष्मी का प्राचीनतम स्तुतिपरक सूक्त ऋग्वेद के परिशिष्ट में समाविष्ट 'श्री सूक्त' है। 'श्री सूक्त' ऋग्वेद की मूल संहिता में नहीं है तथा यह ऋग्वेद के 'खिलसूक्तों' में से एक है। 'खिलसूक्त' उन सूक्तों को कहा जाता है, जो मूल संहिता में बाद के समय में जोड़े गये। ऐसे 'खिलसूक्तों' को 'परिशिष्ट सूक्त' भी कहा जाता है।

(iv) श्री सूक्त का काल-निर्धारण

'खिलसूक्त' या 'परिशिष्ट सूक्त' परवर्तीकाल में ऋग्वेद संहिता में जोड़े गये, अतः इन सूक्तों के रचनाकाल के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। जहाँ तक 'श्रीसूक्त' का प्रश्न है, इसका उल्लेख शौनक कृत ऋग्वेद से संबंधित ग्रन्थ 'बृहद् देवता' में मिलता है। 'बृहद देवता' ग्रन्थ ईस्वी सन् से चार-पाँच शती पूर्व का माना जाता है। ऋग्वेद संहिता के विद्वान सम्पादक प्रो. सी. जी. काशीकर के मतानुसार "'श्री सूक्त' की रचना यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों के रचना काल में हुई।" (ऋग्वेद संहिता - भाग ४, पृ. ५०१-५०२) इस आधार पर 'श्री सूक्त' को बुद्ध-पूर्व काल का माना जाता है।

(v) श्री सूक्त के मंत्रों की संख्या

'श्री सूक्त' के मंत्रों की संख्या में एकरूपता नहीं है। ऋग्वेद संहिता की उपलब्ध कुछ प्रतियों में मंत्रों की संख्या २७ है तो कुछ में २९। इन २७ या २९ मंत्रों में मुख्य 'श्री सूक्त' में कुल १६ मंत्र हैं — १५ मंत्र स्तुतिपरक एवं सोलहवाँ उपसंहारात्मक है। मंत्र संख्या १७ से २७ या २९ तक के ११ या १३ मंत्र प्रमुख सूक्त में बाद में जोड़े गये हैं। 'पुरुष सूक्त' जैसे १५ मंत्रों का सूक्त है, वैसे ही 'श्री सूक्त' भी १५ मंत्रों का ही सूक्त है। अग्नि पुराण (२६३/१) विष्णुधर्मोत्तर पुराण (२/१२८/३) एवं सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् (१/३) आदि ग्रन्थों में भी 'श्री सूक्त' की मंत्र संख्या १५ ही बतलाई गई है। आचार्य सायण ने भी १५ मंत्रों का ही भाष्य किया है। डॉ. उपेन्द्रनाथ

धल ने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ 'गोडेस लक्ष्मी' में 'श्री सूक्त' के स्तुतिपरक मंत्रों की संख्या १५ ही मानी है (पृ. ५३-५४)। सोलहवें उपसंहारात्मक मंत्र में भी 'सूक्तं पंचदशः' अर्थात १५ मंत्रों का ही उल्लेख है।

(vi) प्रतिपाद्य विषय

'श्री सूक्त' में प्रार्थी अग्निदेव को अपने लिये श्रीलक्ष्मी को आवाहित करने की याचना करता है, क्योंकि देवी-देवताओं को उनके उपासकों द्वारा प्रदत्त हविष्य एवं अर्पणीय वस्तु अग्निदेव के माध्यम से उन्हें पहुँचायी जा सकती है। 'श्री सूक्त' में देवी के दिव्य-भव्य स्वरूप का वर्णन करते हुए, उसे सुवर्ण-सी कान्तिमती (हिरण्यवर्णा), मंद-मंद मुस्करानेवाली (सोस्मिता) कमलासन पर विराजमान (पद्मेस्थिता), चंद्र के समान कान्तिवाली (चंद्रां प्रभासं), सूर्य के समान प्रकाश स्वरूपिणी (आदित्यवर्णे) एवं उदार स्वभाव वाली (आर्द्रा) आदि संज्ञाओं एवं विशेषणों से अलंकृत किया गया है।

'श्री सूक्त' में न केवल देवी श्रीलक्ष्मी का आवाहन किया गया है, वरन देवी श्रीलक्ष्मी की बड़ी बहिन अलक्ष्मी (ज्येष्ठा), जो दरिद्रता की अधिष्ठात्री देवी है, के निष्कासन के लिये भी प्रार्थना की गई है। (क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठां लक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।)

सम्पत्ति एवं सम्पन्नता की अधिष्ठात्री देवी के साथ-साथ श्रीलक्ष्मी को अन्न-धान्य से पूर्ण करनेवाली 'अन्नपूर्णा' एवं भूमि की उर्वरता की वृद्धि करने वाली भी कहा गया है। (गंध द्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।)

श्री सूक्त में देवी लक्ष्मी का आवाहन प्रार्थी कीर्ति एवं समृद्धिदात्री के रूप में करता हुआ, उसे माता के सदृश उदार बतलाया है। प्रार्थी देवी लक्ष्मी से धन, वैभव, खेती-बाड़ी, पशुधन, धान्य-सम्पदा, पुत्र-पौत्र-सुख, सेवक-गण आदि सभी सांसारिक समृद्धि की प्राप्ति और उनके समुचित उपभोग करने की सामर्थ्य एवं आयु-आरोग्य प्राप्ति के लिये प्रार्थना करता है। वह अग्निदेव से कहता है —

हे जातवेदा अग्नि मेरी, प्रार्थना सुन लीजिये,
सुस्थिर रहे मम गेह जो, लक्ष्मी मुझे वह दीजिये।
जिसके शुभागम पर कनक, बहु गाय, घोड़े आ सकें।
हम दास-दासी, बन्धु-बान्धव, आदि सब कुछ पा सकें।।

— (हिन्दी पद्यानुवाद : वैद्य राज श्री कन्हैया लाल भेड़ा)

वस्तुतः यह अग्नि तत्त्व प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ही है। उसे यज्ञ, यम, नियम आदि से अपने भीतर जगाने का प्रयास करना चाहिये। यह अग्नि-तत्व ही आत्मा है और परमात्मा भी। यह जब प्रकाशित हो जाता है, तब समस्त सिद्धियाँ श्रीलक्ष्मी के साथ व्यक्ति के इच्छा करने मात्र से ही उसके पास स्वतः आ जाती हैं।

(vii) श्री लक्ष्मी सूक्त

'श्री सूक्त' के प्रथम १६ मंत्रों के आगे के मंत्र संख्या १७ से २७ या २९ तक के मंत्र संभवतः बाद में जोड़े गये हैं। इन ११ या १३ मंत्रों के समूह को, जो एक प्रकार से मूल श्रीसूक्त के पूरक मंत्र हैं, को 'श्री लक्ष्मी सूक्त' कहते हैं। 'श्री सूक्त' के उपलब्ध पाठों में श्री लक्ष्मी सूक्त के मंत्रों का क्रम एक जैसा नहीं है। मंत्रों की संख्या में भी अन्तर है। किसी पाठ में ११ हैं तो किसी में १३। किसी पाठ में यह सूक्त 'पद्‌मानने पद्‌मउरु . . .' से प्रारम्भ होता है तो किसी में 'सरसिजनिलये सरोज हस्ते . . .' से। इस सूक्त की भाषा काव्यात्मक एवं आलंकारिक है। देवी के मुख, नेत्र, हाथ, जांघ आदि की उपमा कमल पुष्प से देते हुए, उसे कमल से उत्पन्न हुई एवं कमल के उद्यान में बसने वाली एवं कमल-प्रिया कहा गया है। उदाहरणार्थ ये ऋचायें देखिये —

'पद्‌मानने पद्‌मउरु पद्‌माक्षि पद्‌मसंभवे।'

x x x x x

'पद्‌मासने पद्‌मविपद्‌मपत्रे पद्‌मप्रिये पद्‌मदलायताक्षि।'

इस सूक्त में देवी लक्ष्मी को 'विष्णुपत्नी' तथा 'विष्णु के मन के अनुकूल रहनेवाली' कहा गया है। संभवतः यह प्रथम सूक्त है, जिसमें ऐसा कहा गया है। धन या लक्ष्मी की महिमा का बखान करते हुए, इस सूक्त के एक मंत्र में कहा गया है कि देवी लक्ष्मी की कृपा से उपासक ईर्ष्या, लोभ, मोह एवं क्रोध आदि मनोविकारों से मुक्त हो जाता है। (न क्रोधो, न च मात्सर्य, न लोभो, नाशुभा मतिः।)

देवी लक्ष्मी के प्रशस्तिगान के बाद में प्रार्थी देवी से याचना करता है कि उसके ऋण, रोग, पीड़ा, दरिद्रता, पाप, अकाल मृत्यु, भय, शोक एवं संताप आदि का नाश हो और उसे तेजस्विता, यश, आयुष्य, आरोग्य, शारीरिक बल, मानसिक दृढ़ता, धन-धान्य, बहुपुत्र लाभ एवं शतायु प्रदान करें।

गायत्री मंत्र

सुप्रसिद्ध वैदिक गायत्री मंत्र की शैली एवं छंद में देवी लक्ष्मी को समर्पित एक गायत्री मंत्र का भी समावेश इस सूक्त में है। देवी लक्ष्मी संबंधी यह गायत्री मंत्र अर्थात गाने वाले की रक्षा करने वाला मंत्र इस प्रकार है —

ॐ महालक्ष्मीं च विद्‌ महे। विष्णुपत्नीं च धीमहि।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्।"

(**भावार्थ** : ॐ, हम महालक्ष्मी के स्वरूप को पहचानते हैं। हम विष्णुपत्नी का सदैव ध्यान करते हैं। हे देवी लक्ष्मी! हमारी बुद्धि को प्रेरणा देवें यानि हे देवी! हमारा सही मार्ग-दर्शन करें।)

'श्री सूक्त' एवं 'श्री लक्ष्मी सूक्त' में देवी लक्ष्मी के भव्य स्वरूप एवं स्वर्णिम सौंदर्य का स्तुतिपरक वर्णन किया गया है एवं इस वर्णन के आधार पर ही परवर्तीकाल में देवी लक्ष्मी संबंधी ध्यान श्लोकों एवं स्तोत्रों की रचना हुई, जिनके आधार पर चित्रांकन एवं मूर्त स्वरूप कलाकारों ने प्रस्तुत किये हैं।

(viii) यजुर, साम एवं अथर्ववेदों के 'श्री सूक्त'

ऋग्वेद संहिता के परिशिष्ट के 'हिरण्यवर्णा हरिणीं . . .' से प्रारम्भ होने वाले 'श्री सूक्त' के महत्त्व एवं लोकप्रियता को देखकर अन्य वेदों के कतिपय मंत्रों के समूह को भी 'श्री सूक्त' की संज्ञा दी गई है। यजुर्वेद का 'श्री सूक्त' चार ऋचाओं का है, जो 'रथे अक्षेषु . . .' से प्रारम्भ होता है। ऐसा ही चार ऋचाओं का सामवेद का 'श्री सूक्त' है, जो 'श्रावन्त इव . . .' से प्रारम्भ होता है। इनके द्वारा धन-धान्य आदि के प्रदान करने की मात्र प्रार्थना है। अथर्ववेद का भी श्री सूक्त है, जो 'आपस्तब श्रौतसूत्र' में इस प्रकार उल्लिखित है —

श्रियं धातर् मयि धेहि। श्रियो माऽधिपतिं कुरु।
विशमिशानो मघवेन्द्रो मा यशसा नयत्।। - (४/७/४)

सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद

ऋग्वेदीय श्री सूक्त के आधार पर श्रीलक्ष्मी विषयक उक्त उपनिषद की रचना हुई है तथा इस उपनिषद का विधिपूर्वक पाठ करने का फल बतलाते हुए कहा गया है कि

सकल धन-धान्य, पुत्र-कलत्र, हाथी-घोड़े एवं दास-दासी आदि उपासक को प्राप्त होते हैं।

(ix) पुराणों में श्री सूक्त की महिमा

वेदों के 'श्री सूक्तों' की भाँति पौराणिक वाङ्मय में भी कुछ श्रीलक्ष्मी स्तोत्र हैं। पुराणों के समय तक श्री लक्ष्मी सम्पन्नता, अन्न-धान्य आदि की अधिष्ठात्री के रूप में पूज्य हो चुकी थी, अतः पुराणकारों ने श्रीलक्ष्मी के स्तवन-परक कई स्तोत्रों एवं कवचों आदि की रचना की है। लेकिन ऋग्वेद के परिशिष्ट में उल्लिखित 'श्री सूक्त' भी पूर्ववत लोकप्रिय रहा। क्षीर-सागर के मंथन के समय जब श्री लक्ष्मी देवी प्रकट हुई तब महर्षिगण ने 'श्री सूक्त' से सर्व प्रथम उसकी स्तुति की। (तां तुष्टुवुर्मुदा युक्ताः श्री सूक्तेन महर्षयः। — श्रीविष्णु पुराण १/९/१०१) पद्म पुराण में भी ऐसा ही उल्लेख है। (५/४/५९)

'अग्नि पुराण' के 'उत्पात शांति' शीर्षक अध्याय २६३ में श्री सूक्त की महिमा प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि जो मनुष्य श्री सूक्त का भक्ति पूर्वक जप तथा उससे हवन करता है, उसे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। (श्री सूक्तं यो जपेद्भक्त्या हुत्वा श्रीस्तस्य वै भवेत्। २६३/३) देवपूजा वैश्वदेव बलि वर्णन शीर्षक अ. २६४ में भी श्री सूक्त के प्रयोग करने का उल्लेख किया गया है। 'हिरण्यवर्णामिति च पाद्यं च तिसृभिर्द्विज।' (२६४/२)। कलशाधिवासन वर्णन करते हुए कहा गया है कि कलशों को श्री सूक्त से अभिमंत्रित करके गंध-मिश्रित जल से भर दें। (श्रीसूक्तेनाभिमन्त्रयेत — (५७/२०) इसी प्रकार शिलाविन्यास विधान शीर्षक अ. ४१ में शिलान्यास के अवसर पर श्री सूक्त के उच्चारण करने का उल्लेख है। (श्री सूक्तेन च तथा शिलाः संस्थाप्य संघशः। ४१-८)

'श्री सूक्त' के पाठ एवं श्रवण के महत्त्व को प्रतिपादित करने के अतिरिक्त 'अग्नि-पुराण' का भी एक 'श्रीस्तोत्र' है, जो अध्याय २३७ में उल्लिखित है। इस पुराण के अनुसार पूर्वकाल में राज्यलक्ष्मी को स्थिर करने के लिये देवराज इन्द्र ने जिस स्तोत्र से श्री लक्ष्मीजी की स्तुति की, उसे परशुराम के पूछने पर पुष्कर ने बतलाया था, उसे ही अग्नि देवता ने वशिष्ठ के सम्मुख फिर दोहराया। इस स्तोत्र के १७ श्लोक एवं श्री विष्णु पुराण के अध्याय १/९ के १७ श्लोक (श्लोक सं. ११७-१३३) एक जैसे हैं।

विष्णु पुराण के अनुसार १७ श्लोकों के इस स्तोत्र द्वारा देवराज इन्द्र ने श्री लक्ष्मी की स्तुति की थी।

ब्रह्म-वैवर्त पुराण में श्रीलक्ष्मी के स्तुति-परक कई स्तोत्र हैं, जिनमें एक 'सिद्धि स्तोत्र' है। श्री नारायण को जब नारदजी ने पूछा कि देवराज इन्द्र ने भगवती महालक्ष्मी की स्तुति किस स्तोत्र से की, तब श्रीनारायण ने वह स्तोत्र श्री नारद को बतलाया। यह स्तोत्र सिद्धिप्रद है, अतः इसे 'सिद्धि स्तोत्र' कहते हैं।

निष्कर्ष

श्री सूक्त से प्रमुखतया दो बातें प्रकट होती है — (१) कुर्वन्नेवेह कर्माणि और (२) जीवेम शरदः शतम् की भावना। (ईशावास्योपनिषद्-२), जिसका तात्पर्य है कि वैदिक जीवनादर्श के अनुरूप कर्म करते हुए, ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न होकर सौ वर्ष तक जीने की अवधारणा। इस सूक्त के द्वारा अर्थ या धन संबंधी वैदिक तत्त्व-ज्ञान का निरूपण किया गया है तथा इस सूक्त में हमें अर्थ के अर्जन के निःस्वार्थ मार्ग एवं उपभोग की सुसंस्कृत अभिरुचि का सम्यक् दर्शन भी होता है। वस्तुतः 'श्री सूक्त' एक काम्य-सूक्त है तथा इसे एक फलप्रद सूक्त माना जाता है। श्रीलक्ष्मी देवी की आराधना में जप, अभिषेक तथा हवन आदि के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

●

देवी लक्ष्मी के मूर्त-रूप एवं देवत्व का विकास क्रम

(i) ऋग्वेद (मूल संहिता) में 'श्री' और 'लक्ष्मी' दोनों भाव-वाचक संज्ञाएँ

ऋग्वेद की मूल संहिता में 'श्री' और 'लक्ष्मी' — इन दोनों शब्दों का प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है, लेकिन इन्हें भाव-वाचक संज्ञा के रूप में ही प्रसंगानुसार प्रयुक्त किया गया है। ये दोनों ही शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों के बोधक हैं एवं एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं। इन शब्दों का प्रयोग मूल संहिता में व्यक्ति वाचक संज्ञा के रूप में नहीं हुआ है।

ऋग्वेद की मूल संहिता हमारा सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक प्राचीनतम आधारभूत ग्रंथ है; लेकिन इसके काल निर्धारण के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। नक्षत्र विषयक सूचनाओं एवं विभिन्न विद्वानों के मतों के आधार पर ऋग्वेद की मूल संहिता का रचना-काल कम-से-कम ईस्वी सन् से अनुमानतः ४००० (चार हजार) वर्ष पूर्व माना जाना चाहिये। - (विश्व धर्म दर्शन, सांवलिया बिहारी वर्मा, पृ. १५)। भाषा वैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से डॉ. रामविलास शर्मा ने ठोस प्रमाणों से सिद्ध किया है कि ऋग्वेद हड़प्पा सभ्यता से ही नहीं, बल्कि मिश्र औरं सुमेर सभ्यताओं से भी काफी प्राचीन है एवं उनके मतानुसार ऋग्वेद करीब ईस्वी सन् से ५००० (पाँच हजार) वर्ष प्राचीन है। - (पश्चिम एशिया और ऋग्वेद, पृ. १४२)।

(ii) श्री और लक्ष्मी व्यक्ति वाचक संज्ञा के रूप में

प्रारम्भ में 'श्री' और 'लक्ष्मी' दो अलग-अलग देवियाँ मानी जाती थीं। श्री और लक्ष्मी का मूर्त-रूप सर्वप्रथम हमें यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में मिलता है। इस

संहिता के अध्याय ३१वें के मंत्र संख्या २२वीं में 'श्री' और 'लक्ष्मी' को आदित्य (परम पुरुष) की दो पत्नियाँ कहा गया है — (श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्या वहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि पुरुष)। इस मंत्र में 'श्री' और 'लक्ष्मी' का मानवीकरण कर उन्हें दो अलग-अलग देवियाँ बतलाया गया है। इस प्रकार इस मंत्र से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि वाजसनेयी संहिता के रचना-काल के समय 'श्री' और 'लक्ष्मी' के सगुण स्वरूप की अवधारणा एवं परिकल्पना दो भिन्न-भिन्न देवियों के रूप में थी। ऋग्वेद (मूल संहिता) की रचना के करीब १००० (हजार) वर्ष बाद यजुर्वेद एवं ब्राह्मण-ग्रंथ लिखे गये या संकलित किये गये।

(iii) श्री सूक्त में 'श्री' और 'लक्ष्मी' का समन्वय

यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के परवर्ती काल में इन दोनों देवियों का समन्वय हो गया और 'श्री देवी' और 'लक्ष्मी देवी' की संज्ञाएँ एक दूसरी की पर्यायवाची मानी जाने लगी। 'श्री देवी' और 'लक्ष्मी देवी' के समन्वित रूप 'श्री लक्ष्मी देवी' का प्रथमतः दर्शन हमें 'श्री सूक्त' में मिलता है। 'श्री सूक्त' ऋग्वेद का एक परिशिष्ट सूक्त है, जो मूल संहिता के परवर्ती काल में जोड़ा गया है। परिशिष्ट सूक्त मूल संहति के सूक्तों जैसे प्राचीन नहीं हैं, लेकिन इनका महत्त्व मूल संहिता के सूक्तों जैसा ही है।

शौनक कृत ऋग्वेद से संबंधित ग्रंथ 'बृहद् देवता' में 'श्री सूक्त' का उल्लेख मिलता है। बृहद् देवता का रचना काल ईस्वी सन् से चार-पाँच शती पूर्व का माना जाता है। ऋग्वेद संहिता के विद्वान संपादक प्रो. सी. जी. काशीकर के मतानुसार 'श्री सूक्त' की रचना यजुर्वेद एवं ब्राह्मण-ग्रंथों के रचना-काल में हुई। इस आधार पर 'श्री सूक्त' को बुद्ध पूर्व काल का माना जाना चाहिये। - (ऋग्वेद संहिता, भाग ४, पृ. ५०१-५०२)।

(iv) श्री देवी (लक्ष्मी देवी)

श्री सूक्त में वर्णित श्री देवी (लक्ष्मी देवी) के वर्णन, संकेत चिन्हों एवं प्रिय वस्तुओं से यह स्पष्टतया प्रदर्शित होता है कि यह देवी आर्य-मूल की है तथा इसके देवत्व की पृष्ठभूमि वैदिक है, परन्तु कतिपय विद्वान इस देवी को आर्य-काल से पहले की आर्येतर देवी मूलतः मानते हैं। डॉ. सुवीरा जायसवाल ने अपने ग्रंथ 'वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास' (पृष्ठ ७८) में कहा है कि "श्री का मूल आर्य-काल से पहले का था। वे आगे लिखती हैं कि दो नागों (हाथियों) के मध्य चित्रित की गई यह देवी प्राक्-आर्य काल की है तथा नाग मूल की है (पृ. ७९)।"

शतपथ ब्राह्मण में एक कथा है, जो संक्षेप में इस प्रकार है —

इस कथा में 'श्री' का मूर्त-रूप प्रस्तुत किया गया है। श्री का मानवीकरण करके उसे ब्रह्माजी की तपस्या से उत्पन्न एक सुंदर देवी बतलाया है। समस्त ऐश्वर्य से शोभित, जब वह देवी ब्रह्माजी के सामने खड़ी हुई, तो उसके सौंदर्य को देखकर देवगण उस पर मोहित हो गये और उन्होंने उस देवी को मारकर उसके ऐश्वर्य को छीन लेने की इच्छा ब्रह्माजी से कही। ब्रह्माजी ने उन्हें स्त्री-वध करने से रोका, परन्तु उसकी विभूतियों को लेने की आज्ञा दे दी। तदनुसार देवताओं ने उस देवी की विभूतियाँ उससे ले ली। तत्पश्चात् ब्रह्माजी के परामर्श पर से श्री देवी ने 'मित्रविन्द यज्ञ' किया तथा जिसके फलस्वरूप अपनी खोई हुई समस्त विभूतियाँ पुनः प्राप्त कर लीं।

राय गोविंदचंद्र (प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा, पृ. २५) के अनुसार इस प्राचीन कथा से यह संकेत मिलता है कि कदाचित 'श्री' भारत के आदिवासियों की कोई देवी थी, जिनसे आर्य देवताओं को आहुति दिलवाकर 'श्री' को अपने देवताओं के संग में मिला लिया।

'गज' शब्द का पर्यायवाची संस्कृत शब्द 'नाग' को ही लेकर देवी को प्राक्-आर्य काल की मानना भ्रामक है। 'गज-लक्ष्मी' तो देवी लक्ष्मी का एक रूप है। देवी के अन्य रूपों में वे 'पद्म-स्थिता' (कमल पर विराजमान) 'पद्म-ग्रहा' (हाथों में कमल धारण किये), पद्म-वासा (कमलवासिनी) बतलायी गई हैं। देवी का घनिष्ठ संबंध जल, कर्दम (कीचड़), चिक्लित (गीली धरती), करिषणी (गोबर) से है, जो वनस्पतियों आदि की उत्पत्ति के संकेतक हैं तथा देवी को उर्वरता एवं कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में स्थापित करते हैं। उर्वरता की इस देवी को नवयौवन एवं शोभा से सम्पन्न कर जहाँ यह देवी समृद्धि की प्रतीक है, वहाँ सौंदर्य की भी। जल, पद्म आदि निश्चित रूप से आर्यों के ऐसे प्रतीक चिन्ह हैं, जिनमें गूढ़ार्थ निहित है।

ऋग्वेद में यद्यपि समाज की पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था है एवं तदनुरूप इन्द्र, अग्नि, वरुण, सोम आदि पुरुषवाची देवताओं का प्राधान्य है, लेकिन मातृ-सत्ता की प्रतीक के रूप में देव माता अदिति एवं देवी उषा का भी देव-सत्ता में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

ऋग्वैदिक देवी-देवताओं, विशेषतया अग्नि देव, देवराज इन्द्र, देवमाता अदिति एवं देवी उषा, की कतिपय विशिष्टताओं का दर्शन हमें 'श्री सूक्त' में वर्णित श्री देवी (लक्ष्मी देवी) के देवत्व के स्वरूप और सामर्थ्य में होता है। संभवतः इन देवी-देवताओं के स्वरूप और सामर्थ्य की पृष्ठभूमि में कालान्तर में धन-धान्य, सम्पत्ति-समृद्धि एवं

ऐहिक सुख-सुविधाओं की प्रदात्री श्री देवी (लक्ष्मी देवी) या श्री लक्ष्मी देवी की अवधारणा और परिकल्पना हुई है एवं यह देवी मूल रूप में आर्य देव-समाज से ही संबद्ध है एवं इसे प्राक्-आर्य देवी मानना भ्रामक है।

(v) वैदिक वाङ्मय के परवर्ती काल के साहित्य में देवी लक्ष्मी

वैदिक वाङ्मय में वर्णित देवी लक्ष्मी के स्वरूप, महिमा एवं शक्ति-सम्पन्नता का विस्तारपूर्वक वर्णन परवर्ती काल के रामायण, महाभारत एवं पौराणिक साहित्य में किया गया है। पौराणिक युग शक्ति उपासना का यौवन-काल माना जाता है। देवी लक्ष्मी की उपासना भी इस युग में लोकप्रसिद्ध हुई और देवी लक्ष्मी घर-घर की उपास्य बन गई।

पौराणिक साहित्य में देवी लक्ष्मी के प्राकट्य की अनेक कथाएँ हैं, जिनमें विरोधाभास लगता है, परन्तु उन पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो कोई असंगति या विसंगति नहीं प्रतीत होगी। जितनी भी प्राकट्य कथाएँ है, उनमें देवी या तो किसी प्राकृतिक उपादान जैसे जल या किसी देवत्व के अंश के रूप में प्रकट हुई है।

(vi) देवी लक्ष्मी के देवत्व का विकास-क्रम

देवी लक्ष्मी के देवत्व के विकास-क्रम को महाभारत एवं पौराणिक साहित्य में प्रतिपादित किया गया है, जिसके अनुसार इस देवी की परिकल्पना प्रथमतः एक स्वतंत्र देवी के रूप में हुई और तत्पश्चात् इस देवी के देवत्व के विकास के निम्नशः चार चरण हैं —

(१) धनाध्यक्ष कुबेर से सम्बद्धता
(२) असुरों (दैत्यराज बलि) के साथ वास
(३) देवराज इन्द्र से सम्बद्धता
(४) भगवान विष्णु की शक्ति या पत्नी

(क) स्वतंत्र देवी

प्रारम्भ में देवी लक्ष्मी की परिकल्पना एक स्वतंत्र आराध्या के रूप में हुई है। वे किसी पुरुषवाची देवता से सम्बद्ध नहीं प्रतीत होती हैं। महाभारत में देवी लक्ष्मी के देवत्व के विविध चरणों का विवरण मिलता है।

महाभारत के उद्योग पर्व के अ. ८३ में ऐसा उल्लेख मिलता है कि जब श्री कृष्ण पांडवों का संदेश लेकर हस्तिनापुर जा रहे थे, तब मार्ग में उन्हें 'ब्रह्मश्री' से युक्त कुछ ऋषिगण मिले।

अथा पश्यन्महाबाहुर्ऋषीन ध्वनि केशवः।
ब्राह्मया श्रिया दीप्यमानान् स्थितानुभयतः पथि।। - (६०)

नारद-कृष्ण संवाद में जब श्री कृष्ण ने नारद से पूछा कि वे किनके सामने नत-मस्तक होते हैं, तब उत्तर में नारद ने वरुण, वायु, आदित्य, पर्जन्य, अग्नि, रुद्र, कार्तिकेय, लक्ष्मी, विष्णु, ब्रह्मा, बृहस्पति, चन्द्रमा, जल, पृथ्वी और सरस्वती के नाम गिनाये। - (अनुशासन पर्व, ३१/६-७)। इस सूची में लक्ष्मी और विष्णु दोनों के नाम हैं, परन्तु दोनों में किसी भी प्रकार के संबंध का उल्लेख नहीं है।

(ख) देवी लक्ष्मी और धनाध्यक्ष कुबेर

धनाध्यक्ष कुबेर तथा धन की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी का संबंध परस्पर घनिष्ठता का होना स्वाभाविक है और संभवतः यह संबंध कुबेर को देवता के रूप में मान्यता मिलने के पहले से है, क्योंकि देवी लक्ष्मी संबंधी प्राचीनतम सूक्त 'श्री सूक्त' में कुबेर को देवता न कहकर 'देवसखा' कहा गया है। - (मंत्र संख्या ७)। रामायण, महाभारत और पौराणिक साहित्य में अनेक ऐसे संदर्भ और उल्लेख मिलते हैं, जिनसे कुबेर देवता एवं देवी लक्ष्मी के आत्मीय संबंध व्यक्त होते हैं। 'नारद पुराण' में जय-होम की विधि संबंधी मंत्र में कहा गया है कि वाम कर्ण के अग्र-भाग में लक्ष्मी सहित कुबेर का न्यास करना चाहिये। - (८४/१२)। यह निर्देश लक्ष्मी का कुबेर की पत्नी होने का सूचक माना जाता है। मार्कण्डेय पुराण के अविक्षित चरित वर्णन शीर्षक अध्याय के अनुसार अविक्षित की माता वीरा ने लक्ष्मी की पूजा निधिपालगण (कुबेर) के साथ की थी। - (१२२/१०)। दीपावली के अवसर पर कुबेर के साथ लक्ष्मीजी की पूजा करने की भी एक लोक-प्रचलित प्रथा है। - (निर्णय-सिन्धु, २रा खण्ड,पृ. ७१४)। कुबेर और लक्ष्मी के संयुक्त अंकन की प्राचीन मुद्राएँ एवं मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। - (देखें पृ. देवी लक्ष्मी और अन्य देवगण)।

(ग) दैत्यों और असुरों के साथ देवी लक्ष्मी

देवासुर संग्राम में दानवों के राजा बलि ने देवताओं को पराजित कर दिया और तीनों लोकों पर राज्य करने लगे। वामनपुराण के अनुसार दैत्यराज बलि जब धर्मानुकूल राज्य करने लगे, तब बलि के शौर्य एवं सदाचारी स्वभाव से प्रभावित हो, देवी लक्ष्मी हाथ में कमल-पुष्प धारण किये दैत्यराज के समीप स्वयं उपस्थित हुई और कहा कि "हे बलवानों में श्रेष्ठ दैत्यराज बलि! देवराज के पराजित हो जाने पर, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अतः तुम्हारे श्रेष्ठ बल को देखकर मैं स्वयं आई हूँ। - (वामन पुराण, २३/१४-१५)।

दैत्यराज बलि को पराजित करने के लिये भगवान विष्णु ने वामन रूप धारण कर, बलि से तीन पग भूमि दान में माँगी, जिसे दैत्यराज ने देने का वचन दे दिया। वचन देते ही वामन त्रिविक्रम रूप धारण कर विराट बन गये और अपना सर्वदेवमय स्वरूप दिखलाया। विराट रूपधारी भगवान वामन (विष्णु) ने तीन पगों में तीनों लोकों को नाप लिया और दैत्यराज बलि को सुतल नामक पाताल में निवास हेतु भेज दिया। - (वा. पु., अ. ३१/६६)।

दैत्यराज बलि की उदारता से भगवान विष्णु ने प्रसन्न हो, जब उनसे वर माँगने के लिये कहा, तब दैत्यराज ने भगवान विष्णु से वर माँगा कि प्रति वर्ष धरती पर उनका राज्य तीन दिनों तक रहे तथा देवी लक्ष्मी भी उनके साथ हो, जिसे भगवान विष्णु ने स्वीकार किया।

(घ) देवराज और देवी लक्ष्मी

दैत्यों के दुराचरण के कारण देवी लक्ष्मी उन्हें त्याग कर देवराज के पास स्वयं आई। देवराज इन्द्र ने देवी का अभिनंदन एवं स्वागत किया और वे देवर्षि नारद के साथ देवी को स्वर्ग लोक ले गये। देवी के शुभागमन से सभी आनंदित एवं प्रसन्न हो गये। - (महाभारत, शांति पर्व, अ. २८८)।

जब देवी लक्ष्मी देवराज इन्द्र के पास थी, उस समय एक ऐसी घटना घटी कि जिससे महर्षि दुर्वासा ने देवराज को शाप दे डाला कि तुम्हारे अधिकार में स्थित तीनों लोकों की लक्ष्मी शीघ्र ही अदृश्य हो जायेगी। महर्षि के शाप के कारण देवी लक्ष्मी क्षीरसागर में लीन हो गई। - (स्कंद पुराण, २/३/८/३०)।

जब देवताओं और दैत्यों ने एकजुट होकर समुद्र-मंथन किया, उस समय देवी लक्ष्मी पुनः प्रकट हुई और तत्पश्चात् भगवान विष्णु की पत्नी या शक्ति के रूप में उनके साथ ही रहती है।

(ङ) भगवान विष्णु की पत्नी या शक्ति

वैदिक साहित्य की दृष्टि से भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी (श्री देवी) का दाम्पत्य संबंध यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता एवं ऋग्वेद में परिशिष्ट सूक्त 'श्री सूक्त' के समय से है और पौराणिक साहित्य के अनुसार उस समय से जब समुद्र-मंथन की प्रक्रिया में श्री लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ। समुद्र से देवी लक्ष्मी के प्राकट्य के पश्चात् उनकी स्तुति

करते हुए देवराज इन्द्र कहते हैं कि 'हे देवी! तुम सम्पूर्ण लोकों की माता हो और देवदेव भगवान हरि (विष्णु) पिता हैं। हे माता! तुमसे और श्री विष्णु से यह सकल चराचर जगत् व्याप्त है। - (विष्णु पुराण, १/९/१२६)।

समुद्र से प्राकट्य के बाद देवी लक्ष्मी और भगवान विष्णु का दाम्पत्य संबंध सतत और अटूट रहा है।

देवी लक्ष्मी और भगवान विष्णु की युग्म प्रतिमाओं को 'लक्ष्मी-नारायण' की प्रतिमा कहा जाता है। ये युगल प्रतिमाएँ प्रदर्शित करती हैं कि जब भगवान विष्णु स्वयं की पत्नी या शक्ति के साथ होते हैं, तब ही उनका सर्वोच्च रूप प्रदर्शित होता है तथा यह युगल स्वरूप ही उनकी शक्ति और सामर्थ्य को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करता है, जो वैष्णव सम्प्रदाय में सर्वमान्य आराध्य स्वरूप है। - (देखें पृ. १४०, 'भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी')।

(च) इतिहास-पुराणों में देवी लक्ष्मी

वेदों के पश्चात् इतिहास-पुराण भारतीय संस्कृति, धर्म एवं अध्यात्म के आधारभूत ग्रंथ हैं। पुराणों में कथाओं और उपाख्यानों के माध्यम से वेदार्थ को समझाया गया है, अतः इतिहास-पुराणों से वेदों का उपबृंहण करना चाहिये। - (इतिहास-पुराणभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्)। इतिहास-पुराणों को पंचम वेद माना गया है। छान्दोग्योपनिषद एवं श्रीमद् भागवत में कथित है —

इतिहास पुराणं च पंचमं वेदानां वेदम्। - (छान्दो.)

इतिहास पुराणं च पंचमो वेद उच्यते। - (श्रीमद् भागवत, १/४/२०)

'हिन्दू धर्म कोश' के अनुसार अठारह पुराणों का प्रधान उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और शक्ति की उपासना अथवा ब्रह्मा को छोड़कर शेष पाँच देवताओं की उपासना का प्रचार हो और इन पाँच देवताओं में से एक को उपासक प्रधान माने और शेष चार को गौण, किन्तु प्रधान में अन्तर्निहित। पुराणों में प्रतिपादन का समीकरण करने से पता चलता है कि परमात्मा के पाँचों भिन्न-भिन्न सगुण रूप माने गये हैं।" अठारह पुराणों का क्रम निम्नशः है —

(१) ब्रह्म, (२) पद्म, (३) विष्णु, (४) शिव, (५) भागवत, (६) वायु, (७) नारद, (८) अग्नि, (९) ब्रह्मवैवर्त, (१०) वराह, (११) स्कंद, (१२) मार्कण्डेय, (१३) वामन, (१४) कूर्म, (१५) मत्स्य, (१६) गरुड़, (१७) ब्रह्माण्ड एवं (१८) लिंग।

उक्त सभी पुराणों में देवी लक्ष्मी के चरित्रात्मक एवं उपासनात्मक संदर्भ मिलते हैं। किसी में कम तथा किसी में अधिक। उक्त पुराणों में ब्रह्मवैवर्त पुराण में देवी लक्ष्मी-विषयक अनेक संदर्भ हैं।

उक्त अठारह पुराणों के अतिरिक्त अनेक उप-पुराण भी हैं, जिनकी वर्णन सामग्री एवं विषय पुराणों के सदृश्य ही है। इन उप-पुराणों में श्रीमद्देवी भागवत में देवी लक्ष्मी के अनेक चरित्रात्मक एवं उपासनात्मक संदर्भ हैं। देवी भागवत शाक्त-सम्प्रदाय का धार्मिक अनुशासन संबंधी ग्रंथ है। श्रीमद्देवी भागवत के अतिरिक्त 'बृहन्नारदीय पुराण', 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण', 'भविष्य पुराण' आदि में भी देवी लक्ष्मी संबंधी संदर्भ हैं।

वैदिक साहित्य में धन-धान्य, समृद्धि-सौभाग्य एवं उर्वरता-सम्पन्नता की अधिष्ठात्री के रूप में परिकल्पित देवी लक्ष्मी (श्री देवी) के परमोच्च देवत्व का दर्शन हमें इतिहास-पुराणों में होता है, जहाँ विकास के अंतिम चरण में देवी लक्ष्मी जगत् के पालनकर्ता भगवान विष्णु की शक्ति के रूप में उनके वक्षःस्थल पर सदा स्थित हो उनको जगत् के पालन के कार्य में सहयोग देती है। भगवान विष्णु और श्री लक्ष्मीजी की एकरूपता प्रतिपादित करते हुए महर्षि पाराशरजी का कथन है —

नित्यै वैषा जगन्माता, विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्व गतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम।।

XXX

देव तिर्यङ् मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान हरिः।
स्त्री-नाम्नी श्रीश्च विज्ञेया, नानयोर्विद्यते परम्।।
- (विष्णु पुराण, १/८/१७ और ३५)

भावार्थ : (श्री मैत्रेयजी के प्रश्न के उत्तर में) श्री पाराशरजी बोले — हे द्विजोत्तम! भगवान का कभी साथ न छोड़ने वाली जगज्जननी लक्ष्मीजी नित्य है और जिस प्रकार श्री विष्णु भगवान सर्व-व्यापक है, वैसे ही ये भी हैं। -(१७) . . . . अधिक क्या कहा जाए, संक्षेप में यह कहना चाहिये कि देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि में पुरुषवाची तत्त्व श्रीहरि हैं और स्त्रीवाची तत्त्व श्री लक्ष्मीजी। इनके परे और कोई नहीं है। - (३५)

●

देवी लक्ष्मी संबंधी प्राकट्य कथाएँ

वेदोत्तर काल के पौराणिक साहित्य में देवी लक्ष्मी के प्राकट्य के संबंध में कई पुराकथाएँ हैं, जिनमें ऊपरी तौर से एकरूपता नहीं प्रतीत होती है; लेकिन इनमें निहित मर्मबीज या मूल तत्त्व पर आध्यात्मिक एवं प्रतीकात्मक दृष्टि से विचार करने पर इनमें कोई विरोधाभास या विसंगति दिखलाई नहीं देगी। इन कथाओं के विभिन्न देवता परब्रह्म परमात्मा के प्रतीक हैं एवं देवी लक्ष्मी आद्या शक्ति या ईश्वरी की तथा जिनमें कोई भेद नहीं है।

श्रीमद् देवी भागवत में कहा गया है कि ब्रह्म और जगदम्बा एक ही है, जो वह (जगदम्बा) है, वही ब्रह्म है और जो ब्रह्म है, वह 'वह' है एवं भेद की प्रतीति बुद्धि-भ्रम के कारण होती है।

सदैकत्वं न भेदो ऽस्ति सर्व देवममास्य च।
यौ असौ साहमहं या सौ भेदोऽ स्तिमति विभ्रमात्।। - (देवी भागवत ३/६/२)

देवी लक्ष्मी संबंधी प्राकट्य कथाएँ निम्नांकित हैं —

(१) महालक्ष्मी (ईश्वरी) का स्वतः प्राकट्य
(२) देवी लक्ष्मी : ब्रह्माजी की मानस-पुत्री
(३) देवी लक्ष्मी : ब्रह्माजी की कन्या
(४) देवी लक्ष्मी : भगवान विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न
(५) देवी लक्ष्मी : भगवान विष्णु के ललाट से उत्पन्न
(६) देवी लक्ष्मी का परमात्मा श्री कृष्ण के मन से प्राकट्य

(७) देवी लक्ष्मी का देवी राधिका से प्राकट्य

(८) श्री कृष्ण के वाम भाग से देवी लक्ष्मी का प्राकट्य

(९) महालक्ष्मी : परमात्मा की एक चिति-शक्ति

(१०) देवी लक्ष्मी : मूल प्रकृति (उमा) का एक भाग

(११) देवी लक्ष्मी : पंच-विध प्रकृति में से एक

(१२) देवी लक्ष्मी का कमल से प्राकट्य

(१३) देवी लक्ष्मी : देवीसरस्वती के वामार्द्ध से प्राकट्य

(१४) देवी लक्ष्मी : महालक्ष्मी (आद्याशक्ति) के रजोगुण से उत्पन्न

(१५) देवी लक्ष्मी का समुद्र से प्राकट्य

संक्षेप में उक्त कथाएँ इस प्रकार हैं —

महालक्ष्मी (ईश्वरी) का स्वतः प्राकट्य

श्रीमद् देवी भागवत में जिस देवी की सर्वोच्च महत्ता एवं सत्ता प्रतिपादित की गई है, उसका नाम है — ईश्वरी या महालक्ष्मी तथा इसे 'भुवनेश्वरी', 'पराशक्ति', एवं 'आद्य-शक्ति' भी कहा गया है। देवी का माहात्म्य निरूपित करते हुए, कहा गया है कि इस विश्व के समस्त कारणों के कारण एवं ब्रह्मादि सभी देवताओं की माता ईश्वरी (महालक्ष्मी) वट-पत्र पर सोये हुए बाल-स्वरूप विष्णु को अर्द्ध-श्लोक में विश्व-रहस्य समझाते हुए, कहा — 'सर्व खल्विदमेवाह न्यानदस्ति सनातन'। ('यह सब मैं ही हूँ, दूसरा सनातन (चैतन्य) नहीं है।') पहले तो भगवान विष्णु ने भगवती के इस वचन को मन में ही सम्यक प्रकार से समझा। तत्पश्चात् वे सोचने लगे कि किसके मुख से यह सत्य वाणी निकली है? इसका वक्ता कौन है? किस प्रकार मुझे उसका परिचय प्राप्त होगा? यों चिन्ता करते-करते वे वट-पत्र पर सो गये। जब चित्त कुछ शांत हुआ, भगवती योगमाया उनके सामने प्रकट हुई। उनके चार भुजाएँ थीं। उनका दिव्य विग्रह शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि से शोभित था। उन्होंने अद्भुत वस्त्र पहन रखे थे। उन्हीं के सदृश उनकी अंशभूता अनेक सखियाँ भी साथ में थीं। मंद-मंद मुस्कराती हुई वे भगवती महालक्ष्मी भगवान विष्णु के ठीक सामने प्रकट हुई। उस समय सर्वत्र जल ही जल था। मन को मुग्ध कर देनेवाली महालक्ष्मी के अचानक दर्शन पाकर, कमल-लोचन श्री विष्णु आश्चर्य में पड़ गये। उनकी यह दशा देखकर भगवती मुस्कराकर कहने लगी — 'हे विष्णो! तुम क्यों विस्मय-विमुग्ध हो रहे हो? भगवती महाशक्ति के प्रभाव से तुम मुझे पहचान नहीं पाते। पहले भी तो सृष्टि और प्रलय का चक्कर चलता रहा है, उस

समय तुम अनेक बार अवतरित हो चुके हो। वह परा-शक्ति निर्गुण है। तुम सगुण ब्रह्म हो। वैसे ही मैं भी सगुण शक्ति हूँ। मेरे विषय में यों समझना चाहिये कि जो सात्त्विकी शक्ति है, वही मैं हूँ। अभी तुम्हारे नाभि-कमल से प्रजापति ब्रह्मा की सृष्टि होगी। रजोगुण से सम्पन्न होकर वे सम्पूर्ण जगत् की रचना करेंगे। महाभाग! तुम इस विश्व की रक्षा का कार्य सँभालना। कोध्र के आवेश के आने पर तुम्हारी भौंहों के बीच से रुद्र का अवतार होगा और उन्हें तामसी शक्ति प्राप्त होगी एवं कल्प के अंत में वे इस सृष्टि का संहार करेंगे। मुझे तुम सात्त्विकी शक्ति समझो। तुम्हारा हृदय मेरा निवास स्थान है। मैं यहीं रहूँगी।" भगवती महालक्ष्मी के इस वचन को सुनने के बाद भगवान् विष्णु ने उसे महामंत्र मानकर हृदय में सदा के लिये धारण कर लिया। (श्रीमद् देवी भागवत, स्कन्ध १, अ. १५/१६)

(२) देवीलक्ष्मी : ब्रह्माजी की मानस-पुत्री

'वायु पुराण' के 'देवादि सृष्टि कथनम्' शीर्षक अध्याय ९ में वर्णित पुराकथा के अनुसार ब्रह्माजी ने सृष्टि रचना हेतु अपने दस मानस-पुत्रों को उत्पन्न किया, किन्तु ये सभी विरक्त एवं ब्रह्मचर्यनिष्ठ निकले; अतः पुत्रों को सृष्टि रचना के लिये अक्षम जानकर उन्हें क्रोध आ गया। उनके क्रोध करने से सूर्य के समान कान्तिवाली एवं अग्नि के समान जलती हुई एक मूर्ति उत्पन्न हुई, जिसका आधा शरीर पुरुष का और आधा शरीर स्त्री का था। उसके उत्पन्न होते ही चारों ओर सूर्य के समान प्रकाश फैल गया और वह मूर्ति बोल उठी — 'अपने को विभक्त करो।' यह कह कर वह मूर्ति अन्तर्हित हो गई। इस प्रकार कहे जाने पर भगवान ब्रह्मा ने अपने को दो भागों में विभक्त किया — एक स्त्री और दूसरा पुरुष। फिर अपने आधे पुरुष रूप को ग्यारह भागों में विभक्त किया, जो 'रुद्र' कहलाये। दूसरा आधा भाग, जो स्त्री-रूप था, का दाहिना आधा भाग शुक्ल वर्ण एवं बायाँ आधा भाग कृष्ण वर्ण का था। उस स्त्री रूप भाग (देवी) को ब्रह्माजी ने देह विभाजन करने का आदेश दिया एवं इसके फलस्वरूप देवी के शुक्ल वर्ण के आधे भाग से जिन देवियों की रचना हुई, उनमें एक देवी लक्ष्मी थी।

आत्मानं विभजस्वेति सोक्ता देवी स्वयंभुवा
सा तु प्रोक्ता द्विधाभूता शुक्ला कृष्णा चवै द्विजाः।। — वा. पु. ९/८४

तस्या नामानि वक्ष्यामि शुणुध्वं सुसमाहिताः।
स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती।। — वा. पु. ९/८५

इस प्रकार देवी लक्ष्मी ब्रह्माजी की मानस पुत्री भी मानी जाती है।

(३) देवी लक्ष्मी : ब्रह्माजी की कन्या

उक्त कथा जैसी ही एक कथा पद्म पुराण में है, जो इस प्रकार है —

भगवान विष्णु ने अपनी नाभि से एक कमल उत्पन्न किया, जो सूर्य के सदृश तेजोमय था। तदनन्तर भगवान विष्णु ने उस सुवर्णमय कमल से सृष्टि करने वाले चतुर्भुज ब्रह्माजी को उत्पन्न किया तथा अकेले होने के कारण ब्रह्माजी का मन नहीं लगा, अतः उन्होंने अपने शरीर के आधे भागे से शुभ लक्षणा भार्या को उत्पन्न किया। तत्पश्चात् दस प्रजापतियों और पाँच कन्याओं यथा (१) लक्ष्मी, (२) साध्या, (३) शुभ लक्षणा, (४) विश्वेशा देवी और (५) सरस्वती को उत्पन्नन किया। ब्रह्माजी ने वे पाँचों कन्याएँ धर्म को अर्पण कर दी तथा धर्म से लक्ष्मीजी ने सोम देवता को जन्म दिया। - (पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड, अ. ३०/३१)

(४) देवी लक्ष्मी : भगवान विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न

कूर्म पुराण (अ. २) के अनुसार भगवान विष्णु के नाभि कमल से पहले ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव हुआ तथा तदुपरांत क्रोधात्मक तेज से त्रिशूलधारी महेश्वर रुद्रदेव उत्पन्न हुए और तदनन्तर कमल के समान नेत्रों वाली देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई, जो भगवान विष्णु के समीप आकर बैठ गई। (ततः श्रीरभवद् देवी कमलायत लोचना। सुरूपा सौम्यवदना मोहिनी सर्व देहिनाम्।।१/२/७)

(५) देवी लक्ष्मी : भगवान विष्णु के ललाट से उत्पन्न

महाभारत (शांतिपर्व, राजधर्मानुशासन पर्व, अ. ५९) के अनुसार भगवान विष्णु के ललाट से एक सुवर्णमय कमल प्रकट हुआ, जिससे बुद्धिमान धर्म की पत्नी श्रीदेवी का प्रादुर्भाव हुआ। ऐसी भी एक पुराकथा है देवी लक्ष्मी ने जब दक्ष की पुत्री के रूप जन्म लिया, उस समय उसका विवाह धर्म से हुआ।

विष्णोर्ललाट् कमलं सौवर्णमभवत् तदा।
श्रीः सम्भूता यतो देवी पत्नी धर्मस्य धीमतः।। - (५९/१३१)

(६) देवी लक्ष्मी का परमात्मा श्रीकृष्ण के मन से प्राकट्य

ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित एक पुराकथा के अनुसार श्री कृष्ण द्वारा सृष्टि का आरम्भ करते समय जब वे रास मंडल में स्थित थे, उन के मन से एक गौर वर्णा देवी प्रकट हुई, जो रत्नों से जड़ित आभूषणों से अलंकृत थीं। उनके शरीर पर पीताम्बर शोभित हो रहा था और मुख पर मंद हास्य की छटा थी। वे नवयौवना देवी समस्त ऐश्वर्यों की

अधिष्ठात्री देवी और समस्त सम्पत्ति का फल प्रदान करने वाली थीं। वही स्वर्ग में 'स्वर्ग-लक्ष्मी' और राजाओं के यहाँ 'राज-लक्ष्मी' कही जाती है।

आविर्बभूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः।
एकादेवी गौरवर्णा रत्नालंकार भूषिता।।

पीत वस्त्र परीधाना सस्मिता नवयौवना।
सर्वेश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्फलप्रदा।।

स्वर्गे च स्वर्ग लक्ष्मीश्च।
राजलक्ष्मीश्च राजसु।। - (ब्र. वै. पु. ब्रह्म ३/६५-६६)

(७) देवी लक्ष्मी का देवी राधिका से प्राकट्य

बृहन्नारदीय पुराण (अ. ८३) के अनुसार श्री कृष्ण के वाम भाग से नारायण उत्पन्न हुए और राधिका से महालक्ष्मी आविर्भूत हुई तथा श्री कृष्ण ने नारायण को महालक्ष्मी प्रदान कर जगत् का पालन करने के लिये उन्हें वैकुंठ भेज दिया।

राधिकायाश्च वामांगान्महालक्ष्मीर्बभूवह।
ततः कृष्णो महालक्ष्मीं दत्वा नारायणाय च।। - (१३)

(८) श्री कृष्ण के वाम भाग से देवी लक्ष्मी का प्राकट्य

ब्रह्मवैवर्त पुराण और श्रीमद् देवी भागवत के अनुसार सृष्टि के आदि में परब्रह्म परमात्मा भगवान श्रीकृष्ण के वाम भाग से रासमंडल में भगवती राधा प्रकट हुई। भगवान श्री कृष्ण की इच्छा के अनुसार वे देवी दो रूप हो गई। वर्ण, तेज, अवस्था, कान्ति, यश, वस्त्र, आभूषण, गुण, कृत्य, मुस्कान, अवलोकन, प्रेम तथा अनुनय उनके ये सभी दिव्य गुण दोनों रूपों में सम्पन्न ही थे। बायें अंश से लक्ष्मी का प्रादुर्भाव हुआ और दाहिने अंश से श्री राधा ही विद्यमान रहीं। श्री राधा ने प्रथम द्विभुज भगवान श्री कृष्ण को पति रूप से स्वीकार कर लिया। महालक्ष्मी ने भी उन्हीं को पति बनाने की इच्छा प्रकट की। तब भगवान श्रीकृष्ण उन्हें गौरव प्रदान करने के विचार से स्वयं दो रूपों में प्रकट हो गये। अपने दक्षिण अंश से वे दो भुजाधारी श्रीकृष्ण बने रहे और बायें अंश से चतुर्भुज विष्णु के रूप में परिणत हो गये। उन्होंने महालक्ष्मी को श्रीविष्णु की सेवा में समर्पित कर दिया। इस प्रकार द्विभुज भगवान श्रीकृष्ण श्रीराधा के प्राणपति बने और चतुर्भुज भगवान श्री विष्णु लक्ष्मी के। फिर चतुर्भुज भगवान श्री विष्णु भगवती लक्ष्मी सहित वैकुंठधाम को पधार गये।

भगवती श्री महालक्ष्मी योग सिद्धि के कारण नाना रूपों में विराजमान हुई। स्वर्ग में देवी 'स्वर्ग लक्ष्मी' के नाम से प्रसिद्ध हुई, तो पाताल में 'नागलक्ष्मी', तो राजाओं के यहाँ 'राज्य लक्ष्मी' तो गृहस्थों के यहाँ 'गृह-लक्ष्मी' के नाम से पूजित हुई। ये सभी रूप इन महालक्ष्मी के एक अंश के हैं। अपने पूर्ण रूप से तो ये नित्य वैकुंठधाम में ही विराजती हैं।

गृहस्थों के सम्पूर्ण मंगलों को भी मंगल प्रदान करनेवाली देवी सम्पत्ति-स्वरूपा होकर विराजने लगीं। गौओं में 'सुरभि' रूप से तथा यज्ञों में 'दक्षिणा' रूप से ये पधारीं। क्षीर सागर के यहाँ उनकी कन्या बनी। ये कमलिनियों के लिये 'श्रीरूपा' और चन्द्रमा के लिये 'शोभा' रूपा हुई। इन्हीं की कृपा से सूर्य मंडल शोभा पाने लगा। भूषण, रत्न, फल, जल, राजा, रानी, दिव्य नारी, गृह, सम्पूर्ण धान्य, वस्त्र, पवित्र स्थान, देवताओं की प्रतिमा, मंगल-कलश, माणिक्य, मोतियों की सुंदर मालायें, बहुमूल्य हीरे, चन्दन, वृक्षों की सुरम्य शाखा तथा नूतन मेघ — इन सभी वस्तुओं में भगवती श्री लक्ष्मी का अंश विद्यमान है। - (श्रीमद्देवी भागवत, स्कन्ध ९, अ. ३९) तथा (ब्र. वै. पु, प्रकृति खंड, अ. ३५)

(९) महालक्ष्मी : परमात्मा की एक चितिशक्ति

मार्कण्डय पुराण (अ. ७९ एवं ८०) के अनुसार महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती — ये तीनों नाम परमात्मा की चितिशक्ति के हैं। चिति शक्ति के तमः प्रधान रौद्र रूप को महाकाली कहते हैं, जो प्रधानतया दुष्टों का संहार करती है। सत्त्व प्रधान वैष्णव रूप को महालक्ष्मी कहते हैं, जो जगत का पालन करती है। रजः प्रधान ब्राह्मी शक्ति को सरस्वती कहते है, जो प्रधानतया जगत् की उत्पत्ति और उसमें ज्ञान का संचार करती है।

देवताओं के तेज से महालक्ष्मी का प्रादुर्भाव

एक समय देवता और दानवों में सौ वर्ष तक घोर युद्ध हुआ। देवताओं का राजा इन्द्र था और दानवों का महिषासुर। पराक्रमी दानवों द्वारा देवताओं को पराजित कर महिषासुर जब स्वयं इन्द्र बन बैठा, तब सम्पूर्ण देवगण पद्मयोनि ब्रह्माजी को आगे कर भगवान् विष्णु और शंकर के पास गये और उन्हें अपनी सम्पूर्ण विपत्ति-गाथा सुनायी। देवताओं की आर्तवाणी सुनकर भगवान विष्णु तथा शंकर कुपित हो गये, उनकी भृकुटी चढ़ गयी। उस समय समस्त देवताओं के शरीर से पृथक-पृथक महान् तेजःपुञ्ज निकला और वह एकत्रित होकर प्रज्ज्वलित पर्वत की तरह सम्पूर्ण दिशाओं को देदीप्यमान करता हुआ नारी-शरीर बन गया। (ततः समस्त देवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्। — मा. पु. ७९/१८) उस भगवती को देखकर सब देवता

प्रसन्न हुए और उसे अपने-अपने शस्त्र समर्पित किये। तब प्रसन्न होकर देवी ने अट्टहास किया, जिससे समस्त दिशाएँ गूँज उठीं, समुद्र उछलने लगे, पृथिवी काँप उठी और पर्वत भी डगमगाने लगे तथा देवताओं ने जय-ध्वनि की और मुनिगण स्तुति करने लगे। उस भयंकर गर्जना को सुनकर महिषासुर क्रोधित होकर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित दानव-सेना को लेकर वहाँ आया और तेजःपुञ्ज महालक्ष्मी को उसने देखा। तदनन्तर असुरों का देवी के साथ अति भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें सम्पूर्ण दानव मारे गये। महिषासुर भी अनेक प्रकार की माया करके थक गया और अन्त में महालक्ष्मी के द्वारा मारा गया। देवताओं ने भगवती की विविध प्रकार से स्तुति की (त्रैलोक्यस्थैस्तदाभूतैर्महिषे विनिपातिते। जपेत्युक्तं ततः सर्वैःसदेवासुरमानवैः। — ८०/४२)।

(१०) देवी लक्ष्मी : मूल-प्रकृति (उमा) का एक भाग

शिवपुराण के अनुसार भगवान शिव की माया है उमा, जो मूल प्रकृति है तथा जगत् की माता है। (उमाख्या सा महादेवी त्रिदेव जननी परा। शिव पु. २/५/२६) इसी संदर्भ में उमा कहती है कि मैं तीन गुणों के अनुरूप तीन देवियों में विभक्त हो गई हूँ। इन तीन देवियों में एक है देवी लक्ष्मी। इस प्रकार इस पुराकथा के अनुसार देवी लक्ष्मी मूल प्रकृति उमा का एक अंश है।

अहमेव त्रिधा भिन्ना तिष्ठामि त्रिविधैर्गुणैः।
गौरी लक्ष्मी सुरा ज्योती रजस्तत्त्वतमो गुणैः॥ — २/५/३४

(११) देवी लक्ष्मी : पंच-विध प्रकृति में से एक

ब्रह्मवैवर्त पुराणानुसार सृष्टि विधान काल में परब्रह्म परमात्मा स्वयं दो रूपों में प्रकट हुए — (१) प्रकृति और (२) पुरुष। उनका आधा दाहिना अंग 'पुरुष' और आधा बायाँ अंग 'प्रकृति' हुआ। यही 'प्रकृति' ब्रह्म-स्वरूपा, नित्या, सनातनी माया है। जैसे परमात्मा वैसी ही उनकी शक्ति स्वरूपा 'प्रकृति' है, अर्थात परब्रह्म परमात्मा के अनुरूप सभी गुण इस प्रकृति में निहित हैं। मूल प्रकृति एक ही है। वह पूर्ण ब्रह्म स्वरूपिणी है। उसी को सनातनी विष्णु माया कहा गया है। सृष्टि काल में वह पाँच रूपों में प्रकट होती है। (. . . पंचविधा सृष्टि कर्मणि भेदतः। — ब. वै. प्र. १/१३)

पंच-विध प्रकृति के नाम

जो परमात्मा श्री कृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी है तथा समस्त कृतियों में जो उन्हें सब से प्यारी है, उस मुख्या प्रकृति का नाम 'राधा' है। दूसरी प्रकृति नारायण प्रिया

लक्ष्मी है, जो सर्व सम्पत् स्वरूपिणी है। तीसरी प्रकृति वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है, जो सदा सबके द्वारा पूजनीय है। चौथी प्रकृति वेदमाता 'सावित्री' है। वे ब्रह्माजी की प्यारी पत्नी और सब की पूजनीय है। पांचवी प्रकृति का नाम 'दुर्गा' है, जो भगवान शंकर की प्यारी पत्नी है। ये पाँच देवियाँ प्रकृति कहलाती हैं।

नारायण प्रिया देवी लक्ष्मी

पंच-देवी रूपा प्रकृति में से जो नारायण प्रिया लक्ष्मी है, वह परम शुद्ध सत्त्व स्वरूपा है और वे परम प्रभु विष्णु की शक्ति कहलाती हैं। अखिल जगत की सारी सम्पत्तियाँ उनके स्वरूप हैं। उन्हें सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है। वे परम सुन्दरी, अनुपम, संयमरूपा, शांत-स्वरूपा, श्रेष्ठ स्वभाव से सम्पन्न तथा समस्त मंगलों की प्रतिमा है। लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद और अहंकार आदि दुर्गुणों से वे सहज ही रहित हैं। भक्तों पर अनुग्रह करना तथा अपने स्वामी श्री हरि से प्रेम करना उनका स्वभाव है। वे सब की आदिकारण रूपा एवं पतिव्रता हैं। वे सदा प्रिय वचन ही बोलती हैं, कभी अप्रिय बात नहीं कहती। प्राणियों का जीवन स्थिर रहे, एतदर्थ उन्होंने यह रूप धारणा कर रखा है। वे परम साध्वी देवी 'महालक्ष्मी' नाम से विख्यात होकर, वैकुंठ में अपने स्वामी की सेवा में सदा संलग्न रहती हैं।

स्वर्ग में 'स्वर्गलक्ष्मी', राजाओं के यहाँ 'राज-लक्ष्मी' तथा मर्त्य-लोकवासी गृहस्थों के घर 'गृह-लक्ष्मी' के रूप में वे विराजमान हैं। वे सभी प्राणियों और जड़ पदार्थों की शोभा, परम मनोहर, पुण्यात्माओं की प्रीति एवं राजाओं की प्रभा है। वे व्यापारियों में वाणिज्य रूप में तथा पापियों में कलह रूप में विराजती हैं। वे सर्व पूज्या एवं सब की वंद्या हैं। देवीलक्ष्मी मूल प्रकृति का एक रूप या अंश हैं। - (ब्र. वै. पु. प्रकृति १/१-३०) तथा (श्रीमद् देवी भागवत ९/१)

(१२) देवी लक्ष्मी का कमल से प्राकट्य

दैत्यों को त्यागकर जब देवी लक्ष्मी आईं तो उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा कि "मैं समस्त प्राणियों को ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये सूर्य की किरणों के ताप से खिले हुए कमल में प्रकट हुई हूँ। मेरा नाम पद्मा, श्री और पद्ममालिनी है।

हे बलसूदन! मैं ही लक्ष्मी हूँ। मैं ही भूति हूँ और मैं ही श्री हूँ। मैं श्रद्धा, मेधा, संनति, विजिति, स्थिति, धृति, सिद्धि, कान्ति, समृद्धि, स्वाहा, स्वधा, संस्तुति, नियति और स्मृति हूँ।

साहं पंकजे जाता सूर्यरश्मि विबोधिते।
भूत्यर्थं सर्वभूतानां पद्मा श्रीः पद्ममालिनी।।

अहं लक्ष्मीरहे भूतिः श्रीश्चाहं बलसूदन।
अहं श्रद्धा च मेधा च संनतिर्विजितिः स्थितिः।
अहं धृतिरहं सिद्धिरहं त्विड् भूतिरेव च।
अहं स्वाहा स्वधा चैव संस्तुतिर्नियतिः स्मृति।।

- महाभारत, शांति पर्व, अ. २२८/२१-२३

(१३) देवी लक्ष्मी : देवी सरस्वती के वामार्द्ध से प्राकट्य

ब्रह्म-वैवर्त पुराण (प्रकृति खंड, अ. २) के अनुसार श्रीकृष्ण ने स्वेच्छा से स्वयं को दो भागों में विभक्त किया तथा ऐसा करने पर उनके वाम भाग से एक नारी-मूर्ति और दक्षिण भाग से एक पुरुष मूर्ति प्रकट हुई। बांयें भाग से उत्पन्न नारी-मूर्ति (मूल प्रकृति) के जिह्वाग्र से श्वेत वर्णा और हाथों में वीणा और पुस्तक धारण किये मनोहर कन्या सरस्वती प्रकट हुई और उनके वामार्द्ध से लक्ष्मी (कमला) और दक्षिणार्द्ध से राधिका का आविर्भाव हुआ। श्रीकृष्ण ने लक्ष्मी को नारायण (विष्णु) को सौंप दी। इस कथा के अनुसार सरस्वती के वामार्द्ध से लक्ष्मी की उत्पत्ति कथित है। - (२/२/५४-५५)

(१४) देवी लक्ष्मी : महालक्ष्मी (आद्याशक्ति) के रजोगुण से उत्पन्न

ब्रह्माण्ड पुराण के ललितोपाख्यान (४/४०-५१) में देवी लक्ष्मी और देवी दुर्गा के जन्म की कथा वर्णित है। जिसके अनुसार उनका जन्म महालक्ष्मी (आद्याशक्ति) से हुआ और तत्पश्चात् वे विभिन्न देवताों से सम्बद्ध हुई। इस कथा के अनुसार महालक्ष्मी ने तीन अंडों को उत्पन्न किया। एक अंडे से अम्बिका (दुर्गा) और विष्णु, दूसरे से लक्ष्मी और ब्रह्मा एवं तीसरे से सरस्वती (गिरा) और शिव प्रकट हुए। बाद में महालक्ष्मी ने सरस्वती को ब्रह्मा को, अम्बिका (दुर्गा) को शिव को तथा लक्ष्मी को विष्णु को पत्नी रूप में प्रदान किया।

मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य के प्रथम रहस्य (प्राधानिक रहस्य) में त्रि-देवियों (सरस्वती, लक्ष्मी एवं काली (दुर्गा) की उत्पत्ति आदिशक्ति (महालक्ष्मी / मूल प्रकृति) के त्रिगुणों (सत्व, रज एवं तम) से बतलाई गई है।

(१५) देवी लक्ष्मी का समुद्र से प्राकट्य

उक्त कथा को समुद्र-मंथन और देवी लक्ष्मी का प्राकट्य शीर्षक अध्याय में देखें।

उपरोक्त प्राकट्य कथाओं से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि देवी लक्ष्मी का प्राकट्य या तो किसी देवत्व से हुआ है या किसी प्राकृतिक उपादान से, जिनमें वस्तुतः कोई भेद नहीं है।

●

समुद्र-मंथन और देवी लक्ष्मी का प्राकट्य

समुद्र-मंथन का उद्देश्य

देवी लक्ष्मी के प्राकट्य की जितनी भी पुरा-कथायें हैं, उनमें सबसे अधिक लोक प्रसिद्ध पुरा-कथा है — देवी लक्ष्मी का समुद्र से प्रकट होना। समुद्र से उद्‌भव होने के कारण देवी लक्ष्मी के कई पर्यायवाची नाम समुद्र और जल से संबंधित हैं — जैसे क्षीरोदतनया, क्षीरसागर-कन्या, सिन्धु-कन्या, आर्द्रा आदि।

देवी लक्ष्मी के समुद्र से प्रकट होने की पुरा-कथा हमें रामायण, महाभारत एवं अनेक पुराणों में मिलती है। इस कथा के अनुसार अजर-अमर और नीरोग होने के लिये अमृत सम रस प्राप्त करने के उद्देश्य से सत्य युग में दिति के पुत्र दैत्यगण एवं अदिति के पुत्र देवतागण — इन दोनों गणों ने मिलकर समुद्र के मंथन का निश्चय किया।

जल से अमृत रस की प्राप्ति की यह परिकल्पना संभवतः ऋग्वेद संहिता के 'अप्-सूक्तों' (१/२३, ७/४७, ७/४९ एवं १०/९) से ही हुई होगी, जिनमें जल के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। एक 'अप्-सूक्त' (१/२३) में कहा गया है कि जल में अमृत है। जल में औषधियाँ हैं। (अप् स्व ऽन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। १/२३/१९) जल से जैसे अन्न, औषधी एवं जीवनदायक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, वैसे ही विष तथा विनाशक वस्तुएँ भी। (विष सूक्त — ऋ. १/१९१) 'श्री सूक्त' में भी जल-देवता से स्नेहयुक्त पदार्थों को उत्पन्न करने की प्रार्थना की गई है। (अपः सृजन्तु स्निग्धानि . . .।) समुद्र-मंथन की प्रक्रिया में भी मंथन कर्ताओं को अमृत और विष दोनों ही मिले थे।

आध्यात्मिक एवं भौतिक प्रतीकात्मकता के साथ-साथ यह पुरा-कथा जल की महिमा को भी व्यक्त करती है।

इस पुराकथा का प्राचीनतम उल्लेख हमें रामायण व महाभारत में मिलता है, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं —

(१) रामायण

रामायण में उल्लिखित कथा के अनुसार दैत्यों और देवताओं ने वासुकी नाग की नेती (रस्सी) और मन्दर पर्वत की मथानी (रई) बनाकर समुद्र-मंथन आरम्भ किया। (क्षीरोद मंथनं कृत्वा रसं प्राप्स्याम तत्र वै। — वाल्मीकि रामायण, १/४५/१७)

मंथन की इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम हलाहल नामक महाभयंकर विष प्रकट हुआ, जिसे भगवान रुद्र (शिव) ने अपने कंठ में धारण किया। तत्पश्चात् उस मंथन से (१) धन्वन्तरि, (२) अप्सराएँ, (३) वारुणी, (४) उच्चैःश्रवा घोड़ा, (५) मणिरत्न कौस्तुभ एवं (६) परम उत्तम अमृत प्रकट हुए। रामायण में वर्णित समुद्र-मंथन के इस प्रसंग में देवी लक्ष्मी के प्रकट होने का कोई उल्लेख नहीं है।

(२) महाभारत

महाभारत में वर्णित कथा के अनुसार भी अमृत प्राप्ति के लिये समस्त देवताओं और असुरों ने मिलकर सागर-मंथन किया (आदि पर्व, अ. १७)। मंथन के फलस्वरूप समुद्र का सारा जल दूध बन गया और बाद में जब दूध से घृत बनने लगा तब सब मिलकर बल लगाकर मंथन करने लगे, तब उस घृत सम जल से सर्वप्रथम शीतल प्रकाशयुक्त चन्द्रमा प्रकट हुए और बाद में (१) श्वेत वस्त्र-धारिणी श्री (लक्ष्मी देवी), (२) सुरादेवी, (३) श्वेत अश्व, (४) दिव्य कौस्तुभ-मणि, (५) पारिजात वृक्ष, (६) सुरभि गौ एवं (७) दिव्य शरीरधारी धन्वन्तरि देव हाथ में अमृत से भरा श्वेत कलश धारण किये प्रकट हुए। श्री (लक्ष्मी देवी), सुरा, चन्द्रमा एवं श्वेत अश्व — ये सब देव-लोक चले गये (श्रीः सुरा चैव सोमश्च तरगश्च मनोजवः। यतो दिवास्ततो . . .। — १/१८/३७)।

महाभारत में वर्णित उक्त कथा के अनुसार समुद्र-मंथन से श्री (लक्ष्मी देवी) का आर्विभाव तो हुआ, लेकिन उनके प्राकट्य को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है।

(३) पुराणों में समुद्र-मंथन की कथा

रामायण और महाभारत के अतिरिक्त समुद्र-मंथन की पुरा-कथा का उल्लेख कुछ पुराणों में विस्तार के साथ है, तो कुछ में संक्षेप में। अधिकांश पुरा-कथाओं में समुद्र-

मंथन करने का उद्देश्य अमृत को प्राप्त करना था, लेकिन कुछ में उद्देश्य लक्ष्मी जी को प्राप्त करना भी कथित है। जिन प्रमुख पुराणों में समुद्र-मंथन के प्रसंग का उल्लेख या संदर्भ मिलता है, वे हैं — वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, मत्स्य पुराण, कूर्म पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्म वैवर्त पुराण, श्रीमद् भागवत, स्कंद पुराण, विष्णु पुराण, लिंग पुराण, श्रीमद्देवी भागवत एवं विष्णु धर्मोत्तर पुराण आदि।

(i) वायु पुराण

यह एक प्राचीनतम पुराण है। इस पुराण के 'नीलकंठ स्तुति' शीर्षक (अ. ५४) अध्याय में कहा गया है कि जब देवता और दानव मिलकर सागर-मंथन कर रहे थे, अमृत निकलने के पहले काल और अग्नि के समान प्रभाव वाला महाभयंकर विष निकला, जिससे लाल और गोरे रंग वाले विष्णु भी काले हो गये (निर्दग्धो रक्त गौरांगः कृतः कृष्णो जनार्दनः। — ५४/५७)। देवताओं के अनुरोध पर भगवान शिव ने उस घोर विष को पी लिया, जिससे उनका कंठ नील-वर्ण हो गया तथा वे नीलकंठ कहलाये (धृतकंठे विषं घोरं नील कंठस्ततो ह्यहम्। — ५४/९४)। इस कथा में किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति या प्राकट्य का कोई उल्लेख नहीं है। यह पुराण शैवमत परिपोषक पुराण है, अतः समुद्र-मंथन के संदर्भ में भगवान शिव की सामर्थ्य ही प्रदर्शित की गई है।

(ii) बह्माण्ड पुराण

इस पुराण में भी हलाहल विष-पान का ही उल्लेख है। - (१/२५)।

(iii) कूर्म पुराण (१/१/२७-३०)

इस पुराण के अनुसार अमृत की प्राप्ति के लिये जब देवताओं और दैत्यों ने क्षीरसागर का मन्दर नामक पर्वत को मथानी बनाकर मंथन किया, उस समय भगवान विष्णु ने कूर्म (कच्छप/कछुवा) का रूप धारण कर उस मंदराचल को ऊपर उठाये रखा (मथ्यमाने तदा तस्मिन् कूर्म रूपी जनार्दनः। — १/१/२८)। उसी समय भगवान विष्णु की प्रिया श्रीलक्ष्मी का आविर्भाव हुआ तथा उन्हें भगवान विष्णु ने ग्रहण किया (तदन्तरेऽभवद् देवी श्रीर्नारायणवल्लभा। जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः। — १/१/३०)। देवी श्रीलक्ष्मी का परिचय कराते हुए, भगवान विष्णु ने उन्हें अपनी स्वरूपभूता ब्रह्मरूपिणी परम शक्ति बतलाते हुए कहा कि यही माया है और यही अनन्ता है (इयं सा परमा शक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी। —१/१/३४) तथा यही वह सत्त्व, रज तथा तम — तीनों गुणों से युक्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति है और यही सारे संसार को उत्पन्न करने वाली है (सैषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका। — १/१/३८)।

(iv) पद्म पुराण

इस पुराण की पुराकथा के अनुसार मंथन की प्रक्रिया में सर्वप्रथम (१) सुरभि (कामधेनु) तथा तत्पश्चात् (२) वारुणी, (३) पारिजात (कल्प वृक्ष), (४) अप्सराएँ, (५) चंद्रमा, (६) कालकूट विष, (७) हाथ में अमृत से भरा हुआ कमण्डलु लिये धन्वन्तरि, (८) उच्चैश्रवाः घोड़ा और (९) ऐरावत हाथी प्रकट हुए। इन सबके बाद क्षीर-सागर से लक्ष्मी देवी का प्रादुर्भाव हुआ, जो खिले हुए कमल पर विराजमान थीं और हाथ में कमल लिये थीं। उनकी प्रभा चारों ओर छिटक गई और उस समय महर्षियों ने 'श्री सूक्त' का पाठ करते हुए उनका स्तवन किया। ब्रह्माजी के निर्देशानुसार लक्ष्मीजी श्री हरि के वक्षःस्थल में चली गई (सृष्टि खंड, अ. ५वाँ)।

(v) महर्षि दुर्वासा के शाप की कथा

समुद्र से देवी लक्ष्मी के प्राकट्य की पुराकथा के समान ही उनकी समुद्र में अन्तर्धान होने की कथा लोक-प्रसिद्ध है। इस कथा को महर्षि दुर्वासा के शाप की कथा से जोड़ा गया है। महर्षि दुर्वासा द्वारा देवराज इन्द्र को दिये गये शाप के कारण देवी लक्ष्मी क्षीर सागर में लीन हो गई थी। स्कंद पुराण में कहा गया है कि —

पुरा दुर्वासासः शापाद् गतैश्वर्य पुरन्दरे।
ममस्थु क्षीर जलधिं ब्रह्माद्याः ससुरासुराः।

— २/३/८/३०

जो समुद्र-मंथन के समय प्रकट हुई।

महर्षि दुर्वासा द्वारा देवराज इन्द्र को दिये गये शाप की कथा संक्षेप में इस प्रकार है —

एक बार भगवान शंकर के अंशभूत महर्षि दुर्वासा भूतल पर विचर रहे थे। घूमते-घूमते वे एक मनोहर वन में गये। वहाँ एक विद्याधर-सुन्दरी हाथ में पारिजात-पुष्पों की माला लिये खड़ी थी, वह माला दिव्य-पुष्पों की बनी थी। उसकी दिव्य-गंध से समस्त वन-प्रान्त सुवासित हो रहा था। दुर्वासा ने विद्याधरी से वह मनोहर माला माँगी। विद्याधरी ने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम करके वह माला दे दी। माला लेकर उन्मत्त वेषधारी मुनि ने उसे अपने मस्तक पर डाल ली और पुनः पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे।

इसी समय मुनि को देवराज इन्द्र दिखायी दिये, जो मतवाले ऐरावत पर चढ़कर आ रहे थे। उनके साथ बहुत-से देवता भी थे। मुनि ने अपने मस्तक पर पड़ी माला

उतारकर हाथ में ले ली। उसके ऊपर भौरे गुंजार कर रहे थे। जब देवराज समीप आये तो दुर्वासा ने पागलों की तरह वह माला उनके ऊपर फेंक दी। देवराज ने उसे लेकर ऐरावत के मस्तक पर डाल दिया। ऐरावत ने उसकी तीव्र गन्ध से आकर्षित हो सूँड़ से माला उतार ली और सूँघकर पृथ्वी पर फेंक दी। यह देख दुर्वासा क्रोध से जल उठे और देवराज इन्द्र से इस प्रकार बोले — "अरे इन्द्र! ऐश्वर्य के घमंड से तुम्हारा हृदय दूषित हो गया है। तुम पर जडता छा रही है; तभी तो मेरी दी हुई माला का तुमने आदर नहीं किया है। वह माला नहीं, लक्ष्मी का धाम थी। माला लेकर तुमने प्रणाम तक नहीं किया। इसलिये तुम्हारे अधिकार में स्थित तीनों लोकों की लक्ष्मी शीघ्र ही अदृश्य हो जायगी।"

कुछ पुराणों में 'माला' के स्थान पर 'पारिजात-पुष्प' का उल्लेख है। मुनि दुर्वासा के शाप के कारण तीनों लोकों की लक्ष्मी नष्ट हो गई।

(vi) ब्रह्म-वैवर्त पुराण

इस पुराण के अनुसार देवराज इन्द्र ने अपने पूर्व ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये देवताओं के गुरु बृहस्पति के परामर्श से उनके साथ ब्रह्माजी से मिले और उन्हें दुर्वासा के शाप एवं लक्ष्मी जी के चले जाने की बात कही। तब ब्रह्माजी ने सारे देवताओं को साथ लेकर भगवान श्री हरि से मिलने वैकुण्ठ-लोक गये और उन्होंने देवताओं के श्री (लक्ष्मी) हीन होने की व्यथा कही; तब श्री हरि ने श्रीलक्ष्मी से कहा — "देवि! तुम अपनी कला से क्षीर समुद्र के यहाँ जाकर जन्म धारण करना स्वीकार कर लो।" इस प्रकार लक्ष्मीजी से कहने के पश्चात् उन जगत्प्रभु ने ब्रह्माजी से कहा — "पद्मज! तुम समुद्र का मंथन करो, उससे लक्ष्मी प्रकट होगी। तब उन्हें देवताओं को सौंप देना (मथित्वा सागरं लक्ष्मीं देवेभ्यो देहि पद्मज। — ब्र. वै. पुराण, प्रकृति खण्ड, २/३८/५६)।" मंथन के फलस्वरूप (१) धन्वन्तरि वैद्य, (२) अमृत, (३) उच्चैःश्रवा घोड़ा, (४) विविध रत्न, (५) ऐरावत हाथी, (६) देवी लक्ष्मी — प्राप्त हुए (धन्वन्तरिं च पियूषमुच्चैः श्रवसमीप्सितम्। नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रा पुर्लक्ष्मीं पुरातनीम्। — २/३८/५९)। श्री लक्ष्मीजी ने सर्वेश्वर श्रीहरि के गले में वनमाला पहना दी। फिर देवताओं ने श्रीलक्ष्मी जी का पूजन-स्तवन किया तथा महालक्ष्मी की कृपा प्राप्त की (देवैः स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शंकरेण च। ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्म शाप विमोचिकाम्। — २/३८/६१)।

(vii) श्रीमद् देवी भागवत

श्रीमद् देवी भागवत के नवम् स्कंद के अध्याय ४१वें में भी ऐसा ही विवरण है।

(viii) लिंग पुराण (उत्तरार्द्ध, छठा अध्याय)

इस पुराण के अनुसार समुद्र-मंथन की प्रक्रिया में पहले अलक्ष्मी और बाद में लक्ष्मी प्रकट हुई, इसीलिये अलक्ष्मी को ज्येष्ठा कहा जाता है।

(ix) मत्स्य पुराण

इस पुराण के अनुसार घृत सम जल से श्वेत वस्त्र-धारिणी देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई तथा भगवान विष्णु ने देवी लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि को अपनाया (जग्राह कमलां विष्णुः कौस्तुभं च महामणिम्। — २५१/३)।

(x) विष्णु पुराण

देवी लक्ष्मी का समुद्र से प्रकट होने का जो दृश्य विष्णु पुराण में प्रस्तुत किया गया है, वह इस प्रकार है —

विकसित कमल पर विराजमान स्फुट कान्तिमयी श्रीलक्ष्मी देवी हाथों में कमल-पुष्प धारण किए क्षीर-समुद्र से प्रकट हुई। उस समय महर्षिगण अति प्रसन्नतापूर्वक 'श्री सूक्त' द्वारा उनकी स्तुति करने लगे और विश्वावसु आदि गंधर्वगण उनके सम्मुख गान और घृताची आदि अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। उन्हें अपने जल से स्नान कराने के लिये गंगा आदि नदियाँ स्वयं उपस्थित हुईं और दिग्गजों ने सुवर्ण-कलशों में भरे हुए उनके निर्मल जल से सर्वलोक महेश्वरी श्री लक्ष्मी देवी को स्नान कराया (दिग्गजा हेमपात्रस्थमादाय विमलं जलं। — १/९/१०३)। क्षीर-सागर ने मूर्तिमान होकर उन्हें विकसित कमलों की माला दी। विश्वकर्मा ने उनके अंग-प्रत्यंग में विविध आभूषण पहनाये। इस प्रकार दिव्य वस्त्र धारण कर, दिव्य जल से स्नान कर, दिव्य आभूषणों से विभूषित हो श्री लक्ष्मीजी सारे देवताओं के देखते-देखते श्री विष्णु भगवान के वक्षःस्थल में विराजमान हुई।

(xi) श्रीमद् भागवत

श्रीमद् भागवत के अध्याय ८/८ में भी विष्णु पुराण जैसा ही वर्णन है। इस पुराण के अनुसार देवी लक्ष्मी भगवान विष्णु की नित्य शक्ति है। उनके प्रकट होते ही सारी

दिशायें प्रकाशित हो उठी। उन्हें बैठने के लिये इन्द्र ने एक अद्भुत आसन प्रदान किया। दिग्गजों ने कलशों में भरे जल से स्नान कराया तथा समुद्र ने लक्ष्मी को पीला रेशमी वस्त्र, वरुण ने सुगंधित वैजयन्ती माला, सरस्वती ने मोतियों का हार, ब्रह्मा ने कमल और नागों ने दो कुंडल दिये। देवी लक्ष्मी ने विष्णु के गले में नवीन कमलों की माला पहना दी एवं भगवान विष्णु ने देवी लक्ष्मी को अपने वक्षःस्थल पर ही सदा निवास करने के लिये स्थान प्रदान किया (भागवत पुराण, ८/८८)।

विष्णु पुराण और भागवत पुराण दोनों में दिग्गज देवी को कलशों में भरे जल से अभिषिक्त करते हैं, जो देवी लक्ष्मी के 'गज-लक्ष्मी' रूप का दर्शन करवाता है।

(xii) विष्णु धर्मोत्तर पुराण

इस पुराण में समुद्र के मंथन की प्रक्रिया में देवी लक्ष्मी के अंग-प्रत्यंगों का काव्यात्मक वर्णन करते हुए देवी को रूप की मंगलमयी प्रतिमा कहा गया है (देवी लक्ष्मी स्ततो जाता रूपेण प्रतिमा शुभा। — १/४१/३२)। देवी लक्ष्मी के प्रकटीकरण का इतिवर्त प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि स्वायंभुव मन्वन्तर में भृगु-दुहिता के रूप में ख्याति के गर्भ से, स्वारोचिष मन्वन्तर में अग्नि से, उत्तम मन्वन्तर में जल से, तामस मन्वन्तर में पृथ्वी से, रैवत मन्वन्तर में बिल्व से, चाक्षुष मन्वन्तर में उत्फुल्ल कमल से एवं सम्प्रति वैवस्तव मन्वन्तर में समुद्र-मंथन से देवी लक्ष्मी प्रकट हुई।

स्कंद पुराण

इस पुराण के अनुसार समुद्र-मंथन की प्रक्रिया में जब देवी लक्ष्मी प्रकट हुई, वे गजारूढ़ थीं तथा उनका स्तवन करते हुए कहा गया है कि इन्हें ही ब्रह्मवेत्ता पुरुष 'आन्वीक्षिकी' (वेदान्त-विद्या) कहते हैं। इन्हीं को दूसरे लोग 'मूल विद्या' कहकर पुकारते हैं। कुछ समार्थ्यशाली महात्मा इन्हीं को 'वाणी' और 'ब्रह्म-विद्या' भी कहते हैं। कोई-कोई इन्हीं को 'ऋद्धि', 'सिद्धि', 'आज्ञा' और 'आशा' नाम देते हैं। कोई योगी पुरुष इन्हीं को 'वैष्णवी' कहते हैं। सदा उद्यम में लगे रहने वाले माया के अनुयायी इन्हीं को 'माया' के रूप में जानते हैं। जो अनेक प्रकार के सिद्धांतों को जानने वाले तथा ज्ञान शक्ति से सम्पन्न हैं, वे इन्हीं को भगवान की 'योगमाया' कहते हैं।

निर्मथ्यमाना दुदधेस्त दासीत्,
सा दिव्य लक्ष्मी र्भुवनैक नाया।

आन्वीक्षिकीं ब्रह्मविदो वदन्ति,
तथा चान्ये मूलविद्यां गृणन्ति।।
ब्रह्मविद्यां केचिदाहुः समर्थाः,
केचित् सिद्धिमृद्धि माज्ञा मथा शाम्।
यां वैष्णवीं योगिनः केचिदाहुः,
तथा च मायां मायिनी नित्य युक्ता।।

— स्कंद पुराण, माहेश्वर खंड (केदार खंड)

समुद्र-मंथन का प्रतीकात्मक महत्त्व एवं बोधपाठ

समुद्र के मंथन द्वारा अमृत, देवी लक्ष्मी एवं अन्य रत्नों की परि-प्राप्ति की कथा की संरचना न तो किसी ऐतिहासिकता के आधार पर की गई है और न ही मात्र मनोरंजन के लिये अपितु यह अद्‌भुत कथा प्रतीकात्मक है तथा इसमें निहित है गूढ़ आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञानपरक बोधपाठ। समुद्र-मंथन की कथा का बाह्य स्थूल दृष्टि से तथा आंतरिक सूक्ष्म दृष्टि से — दोनों प्रकार से विचार किया जा सकता है।

समुद्र शब्द का एक अर्थ है — 'वह जिसमें सभी प्राणी मोदपूर्वक रहें' (समोदन्ते अस्मिन भूतानि) अर्थात् जगत। मानव अपनी प्रगति एवं सुख-सुविधा की प्राप्ति के लिये जगत रूपी समुद्र के प्राकृतिक तत्त्वों और उपादानों के रहस्यों को खोजने का प्रयास सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक करता आया है, करता रहेगा। मंथन की यह प्रक्रिया सतत क्रियाशील है। मंथन की इस प्रक्रिया में उसने रत्नों रूपी अनेक वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कारों एवं अनुसंधानों में सफलता प्राप्त की है, जिनसे मानव समुदाय लाभान्वित हुआ है तथा लक्ष्मी का आलोक उसे मिला है।

समुद्र-मंथन करने का प्रथमतः उद्देश्य था — अमृत प्राप्त करना। 'अमृत' शब्द का प्रयोग अमरता प्रदान करने वाले रस के अतिरिक्त वैदिक वाङ्‌मय में सत्य, ज्ञान, मोक्ष एवं ब्रह्म आदि शब्दों के पर्यायवाची शब्द के रूप में भी किया गया है। अतः सत्य, ज्ञान, मोक्ष एवं ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये भी मंथन की प्रक्रिया आवश्यक है। शुभ-अशुभ, सद्-असद्, कल्याणकारी-अकल्याणकारी एवं अच्छाई-बुराई का द्वन्द्व हमारे अन्तरंग में सतत चलता रहता है। समस्त शक्तियों को एकत्रित एवं केन्द्रित कर मंथन करने पर ही अभीष्ट-ध्येय की प्राप्ति संभव होती है। आत्म-मंथन ही समुद्र-मंथन है, जिससे आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है।

मंथन की प्रक्रिया में विश्लेषण होता है — सार एवं सारहीन, छाछ और नवनीत पृथक-पृथक हो जाते हैं। आदि काल से तमस (अंधकार) को चीरकर प्रकाश की ओर अग्रसर होने का मानव का संघर्ष चला आ रहा है। घोर तम के मंथन के पश्चात् ही लक्ष्मी रूपी प्रकाश प्रकट होता है। यह तमस अज्ञान का हो सकता है, या अलक्ष्मी (दरिद्रता) या अंध-विश्वास या अधर्म या अन्याय या अनीति या आतंक का । समुद्र-मंथन की पुराकथा अंधेरे और उजाले को पृथक-पृथक करने की प्रतीकात्मक कथा है।

देवताओं और दानवों के संघर्ष की तो अनेक पुरा-कथाएँ हैं, लेकिन दोनों का एकजुट होकर प्रयास करने और सफलता प्राप्त करने की यह एकमेव कथा है, जो एकता की महत्ता एवं शक्तिमत्ता को भी प्रतिपादित करती है।

आधुनिक भारत के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में समुद्र-मंथन की प्रतीकात्मक व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है —

भारत में व्याप्त धर्मगत, भाषागत एवं जातिगत भेद-भाव के सागर को सत्ता पक्ष एवं विपक्ष को मिलकर राष्ट्रीय एकता की भावना की नेती से सर्व-जन-समभाव की पीठ पर सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के मन्दराचल रूपी मथानी से मंथन करना चाहिये, जिससे जन-कल्याण के रत्न एवं विकास की लक्ष्मी का प्राकट्य भारत गणतंत्र में हो सके।

●

देवी लक्ष्मी के विविध अवतार

समृद्धि-सौभाग्य की अधिष्ठात्री देवी के रूप में देवी लक्ष्मी की परिकल्पना प्रारम्भ में एक स्वतंत्र देवता के रूप हुई, अतः देवी लक्ष्मी के कई स्वतंत्र अवतार माने गये हैं। कालान्तर में वैष्णव सम्प्रदाय के विकास कला में देवी लक्ष्मी को वैष्णव देव-गण में सम्मिलित कर लिया गया और उन्हें भगवान विष्णु की शक्ति या पत्नी मानकर उन्हें भगवान विष्णु के साथ संपृक्त कर दिया गया। अतः जब-जब भगवान विष्णु ने विभिन्न अवतारों के रूप में धरती पर लीला की, तब-तब देवी लक्ष्मी ने उनकी सहचरी के रूप में प्रकट होकर या अवतार लेकर भगवान विष्णु को सहयोग दिया। विष्णु पुराण में कहा गया है —

एवं यदा जगतस्वामी देव देवो जनार्दनः।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी।। - १/९.१४२

देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपा वै करोत्ये षात्मनस्तनुम्।। - १/९/१४५

भगवान विष्णु एक वैदिक देवता हैं और हिन्दू धर्मावलम्बियों के त्रिदेव — ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की परिकल्पना में भगवान विष्णु की अवधारणा संसार का पालन एवं संरक्षण करने वाले देवता के रूप में की गई है, जिसका देवत्व सर्वव्यापी एवं महामहिम है। जैसा भगवान विष्णु का देवत्व सर्वव्यापी है, वैसा ही देवी लक्ष्मी का देवत्व भी सर्वव्यापी है। अग्नि पुराण (२ ३७/१०) में कहा गया है —

त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम्।

देवी लक्ष्मी के विभिन्न अवतारों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। पहले वर्ग में हम उन अवतारों या अंशावतारों को सम्मिलित करेंगे, जिनमें देवी ने स्वतंत्र रूप से अकेले ही अवतार लिये हैं। दूसरे वर्ग में हम उन अवतारों या अंशावतारों को सम्मिलित करेंगे, जिनमें देवी ने भगवान विष्णु के साथ में युगल-रूप में अवतार लिये हैं। तीसरे वर्ग में हम उन अवतारों या अंशावतारों को लेंगे, जिनमें देवी ने मानवीतर रूप में अवतार लिये हैं।

(१) देवी लक्ष्मी के एकल अवतार इस प्रकार हैं —

(क) भार्गवी (भृगु की पुत्री) ख्याति के गर्भ से
(ख) दक्ष प्रजापति की कन्या (धर्म की पत्नी)
(ग) महर्षि कुशध्वज एवं मालावती की वेदवती नामक कन्या और
(घ) द्रुपद-सुता द्रौपदी (पांडवों की पत्नी)

(२) देवी लक्ष्मी एवं भगवान विष्णु के युगल अवतार इस प्रकार से हैं —

(क) आदित्यावतार
(ख) नृसिंह अवतार
(ग) रामावतार
(घ) परशुराम अवतार
(ङ) श्री कृष्ण अवतार
(च) भगवान दत्तात्रेय अवतार

(३) देवी लक्ष्मी के मानवीतर अवतार इस प्रकार से हैं —

(१) अश्वी रूप में अवतार
(२) नदी रूप में भूतल पर अवतीर्ण
(३) वृक्ष रूप में भूतल पर अवतीर्ण

देवी के उपरोक्त अवतारों की पुराकथाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं —

१ (क) देवी लक्ष्मी : महर्षि भृगु पुत्री 'भार्गवी'

दक्ष प्रजापति और प्रसूति की २४ कन्याओं में से तेरह को तो धर्म ने पत्नी रूप में ग्रहण कर लिया तथा बाकी ग्यारह में से एक ख्याति को महर्षि भृगु ने पत्नी रूप में

ग्रहण किया। ख्याति ने भृगु से धाता और विधाता नामक दो पुत्र एवं श्री (लक्ष्मी) नामक एक कन्या को जन्म दिया, जो नारायण (विष्णु) की पत्नी बनी।

दैवौ धातृ विधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत।
श्रियं च देव देवस्य पत्नी नारायणस्य या।। - विष्णु पुराण, १/८/१५

मार्कण्डेय पुराण (४९/१४-१५), भगवत पुराण (४/२/४२), कूर्म पुराण (१/२१/१), ब्रह्माण्ड पुराण (२९/१-३) एवं पद्म पुराण (२/५/३/२०१) में भी ऐसा ही उल्लेख है।

महर्षि भृगु की पुत्री होने के कारण देवी लक्ष्मी भार्गवी भी कहलाती हैं। भार्गवी ने भगवान नारायण (विष्णु) को पति-रूप में प्राप्त करने की घोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न हो, भगवान ने उसे दर्शन दिया तथा भार्गवी की इच्छानुसार उसे पत्नी रूप में ग्रहण किया। वायु पुराण (२८/२) के अनुसार भगवान नारायण को भृगु पुत्री भार्गवी के गर्भ से 'बल' और 'उत्साह' नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए (नारायणात्मजौ साध्वी बलोत्साहौ व्यजायत)। ब्रह्माण्ड पुराण (१/१२/३-५) में भी ऐसा ही उल्लेख है तथा इसमें पुत्रों के नाम बल और उन्माद हैं। बल और उत्साह/उन्माद को लक्ष्मी के पुत्र कहा गया है, जो प्रतीकात्मक है। समृद्धि की प्राप्ति बल और उत्साह/उन्माद प्रदान करती है।

१ (ख) देवी लक्ष्मी : दक्ष प्रजापति की कन्या एवं धर्म की पत्नी

देवी लक्ष्मी को कई पुराणों में दक्ष प्रजापति और प्रसूति की कन्या माना गया है। वायु पुराण (१०/२३-२६), कूर्म पुराण (१/८/१४-१६), विष्णु पुराण (१/७/२२-२४), मार्कण्डेय पुराण (४७/१९-२१) एवं पद्म पुराण (गीता प्रेस, अ. ४, पृ. ११) के अनुसार स्वायंभुव मनु और शतरूपा की कन्या 'प्रसूति' का विवाह दक्ष प्रजापति से हुआ तथा प्रसूति ने चौबीस कन्याओं को जन्म दिया, जिनमें से तेरह (१) श्रद्धा, (२) लक्ष्मी, (३) धृति, (४) तुष्टि, (५) मेधा, (६) पुष्टि, (७) क्रिया, (८) बुद्धि, (९) लज्जा, (१०) वपु, (११) शांति, (१२) सिद्धि एवं (१३) कीर्ति को धर्म ने पत्नी-रूप में ग्रहण किया। ये सभी कन्याएँ अत्यन्त भाग्यशाली, कमल के समान नेत्रों वाली, योगपत्नी, योगमाया एवं ब्रह्मवादिनी थीं (सर्वास्ताश्च महाभागाः सर्वा कमललोचनाः। योग पत्न्यश्च ताः सर्वाः सर्वास्ता योग मातरः। सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वा विश्वस्य मातरः।। — वायु पुराण, १०/२३-२४)। महाभारत (आदि पर्व, अ. ६६/१४-१५) के अनुसार दक्ष प्रजापति की कन्याओं की संख्या दस है, जिनसे धर्म का विवाह हुआ। इन कन्याओं में से एक लक्ष्मी थी।

उपरोक्त पुराणों के अनुसार धर्म से लक्ष्मी को एक दर्प नामक पुत्र हुआ (दर्पो लक्ष्मी सुतः। — कूर्म पुराण, ८/२०)।

धर्म की उक्त पत्नियों को धर्म के द्वार कहा गया है। अर्थात् इनके माध्यम से धर्म में प्रवेश होता है। इसका तात्पर्य यही है कि जहाँ धर्म और नीतिमत्ता होती है, वहीं लक्ष्मी का वास होता है यानि वहीं समृद्धि-सम्पन्नता होती है।

देवी लक्ष्मी के पुत्र का नाम 'दर्प' है। सम्पन्नता आते ही मनुष्य में दर्प यानि अहंकार आ ही जाता है।

धर्म और देवी लक्ष्मी की उक्त पुराकथा प्रतीकात्मक है, जो हमें यह संदेश देती है कि नीतिमत्ता के माध्यम से ही समृद्धि प्राप्त करनी चाहिये एवं विनम्रता से उसका संरक्षण करना चाहिये।

१ (ग) वेदवती

ब्रह्म-वैवर्त पुराण (प्रकृति खंड, अ. १४) तथा श्रीमद्देवी भागवत (अ. ९/१६) में वर्णित वेदवती की कथा के अनुसार सत्य युग में ब्रह्मर्षि कुशध्वज और उनकी पत्नी मालावती की उपासना से प्रसन्न हो देवी महालक्ष्मी ने उन्हें कलांश में उनकी पुत्री के रूप में जन्म लेने का वर दिया था। तदनुसार मालावती ने एक कन्या को जन्म दिया, जो अंश रूप में महालक्ष्मी थीं। जन्म लेते ही वह कन्या वेद मंत्रों को गाने लगी, अतः उसका नाम वेदवती पड़ गया। श्रीहरि को पति के रूप में पाने के लिये जब वह तपस्या कर रही थी, तब रावण ने उसका अपमान किया, अतः उसने रावण को शाप दिया कि वह उसका सपरिवार नाश करेगी। तदन्तर योगबल से वह शरीर त्याग देती है और बाद में सीता के रूप में पुनर्जन्म लेती है (सा च कालान्तरे साध्वी बभूव जनकात्मजा। सीता देवीति विख्याता यदर्थे रावणो हतः। - ब्र. वै. पु., प्र. खं., १४/२१)।

रामायण में वर्णित वेदवती की कथा उक्त कथा से थोड़ी भिन्न है। रामायण (उत्तरकांड, सर्ग १७) में वर्णित कथा के अनुसार वेदवती रावण द्वारा तिरस्कृत होने पर उसे शाप देती हुई कहती है कि तुम्हारे वध के लिये मैं अयोनिजा कन्या के रूप में पुनः प्रकट होऊँगी तथा ऐसा कह वह अग्नि में समा जाती है। तदन्तर दूसरे जन्म में वह कमल से कन्या रूप में प्रकट होती है। उस कमल से उत्पन्न कन्या को भी रावण प्राप्त कर लेता है तथा जब उसे यह विदित होता है कि वह कन्या उसके वध का कारण होगी तो रावण उसे समुद्र में फेंक देता है। तत्पश्चात् वह कन्या भूमि को प्राप्त होकर राजा

जनक के यज्ञ मंडप के मध्यवर्ती भू-भाग में आ पहुँचती है और वहाँ राजा के हल के मुख भाग से उस भू-भाग के जोते जाने पर पुनः कन्या रूप में प्रादुर्भूत होती है और सीता के नाम से सुप्रसिद्ध होती है।

रामायण की कथा में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख नहीं है कि वेदवती देवी लक्ष्मी का अवतार थी, परन्तु उसे कमल से उत्पन्न बतलाया है, जो उसे देवी लक्ष्मी से सम्पृक्त करता है।

१ (घ) द्रौपदी

द्वापर युग में देवी लक्ष्मी अंश रूप में राजा द्रुपद की कन्या द्रौपदी के रूप में प्रकट हुई। द्रौपदी के पूर्व जन्म की कथा राजा द्रुपद को सुनाते हुए, व्यासजी ने कहा कि ये पाँच पांडव पहले इन्द्र (पंचेन्द्र) रह चुके हैं और यह दिव्य रूपा द्रौपदी स्वर्गलोक की लक्ष्मी है (लक्ष्मीश्चैषां पूर्वमेवोपदिष्टा, भार्या यैषा द्रौपदी दिव्यरूपा। – महाभारत, आदि पर्व, अ. १९६/३५)।

ब्रह्म वैवर्त पुराण (प्रकृति खंड, अ. १४) के अनुसार अग्नि-परीक्षा के बाद वास्तविक सीता भगवान श्रीराम के पास विराजमान हो गई। तब छाया-सीता श्रीराम और अग्निदेव के आदेशानुसार भगवान शंकर की उपासना में तत्पर हो गई। पति-प्राप्ति की अभिलाषा से वह बार-बार यही प्रार्थना कर रही थी कि "हे भगवान त्रिलोचन! मुझे पति प्रदान कीजिये।" ये शब्द उसके मुँह से पाँच बार निकले। छाया-सीता की ऐसी प्रार्थना सुनकर वे मुस्करारते हुए, बोले — " तुम्हें पाँच पति मिलेंगे।" यही छाया-सीता राजा द्रुपद के यहाँ यज्ञ की वेदी से प्रकट हुई और उसका नाम द्रौपदी पड़ा और पाँच पांडव उसके पति हुए।

२ (क) आदित्य-रूप

जब भगवान विष्णु आदित्य रूप हुए, देवी लक्ष्मी पद्म से उत्पन्न हुई और पद्मा कहलाई।

पुनश्च पद्मादुत्पन्न आदित्योऽभूद्यदाहारेः। - विष्णु पुराण १/९/१४३

२ (ख) नृहिंह अवतार

भगवान विष्णु का नृसिंह अवतार हिरण्यकशिपु के वध एवं धर्म के उद्धार के लिये हुआ था। इस अवतार में भगवान विष्णु ने नृसिंह अवतार का रूप धारण कर दैत्यराज के हृदय को अपने नखों से विदीर्ण कर मार डाला था तथा अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा

की। हरिण्यकशिपु के वध के बाद में भी जब भगवान नृसिंह का क्रोध शांत नहीं हुआ, तब देवी लक्ष्मी प्रकट हुई और उन्होंने उनको शांत किया (भागवत पुराण, ७/९/२ एवं पद्म पुराण, ६/२६५, १२५), नृसिंह पूर्वतापनीय उपनिषद (४/१५/७) इस प्रकार नृसिंहावतार के समय भी देवी लक्ष्मी भगवान विष्णु के साथ में रही।

२ (ग) रामावतार

त्रेता युग में जब भगवान विष्णु श्रीराम रूप में अवतीर्ण हुए, तब देवी लक्ष्मी सीताजी के रूप में अवतीर्ण हुई। रामायण में सीताजी की अग्नि परीक्षा के बाद ब्रह्माजी ने श्रीराम का स्तवन करते हुए कहा है कि सीता साक्षात् लक्ष्मी है और आप (श्रीराम) भगवान विष्णु (सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुः। - रामायण, ६/११७/७)। वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों पर सीताजी के रूप आदि का वर्णन करते हुए, उनकी उपमा देवी लक्ष्मी से दी गई है। उदाहरणार्थ सीता जी के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि '. . . सीता श्रीरिव रूपिणी' (१/७७/२८)। सीता हरण के उद्देश्य से जब रावण साधु वेष में सीताजी को उनका परिचय पूछता है तो वह कहता है कि शुभानने! क्या आप श्री, ह्री, कीर्ति, शुभस्वरूपा लक्ष्मी या कोई अप्सरा हो? इस प्रकार सीताजी की तुलना लक्ष्मीजी से की गई है।

सीतोपनिषद् में सीताजी को 'सर्वदेवमयी, सर्ववेदमयी, सर्व कीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सर्वाधार कार्यकारणमयी, महालक्ष्मी . . . . . .' कहा गया है।

निम्नांकित पुराणों में सीताजी को देवी लक्ष्मी का अवतार कथित है —

स्कंद पुराण

इस पुराण के 'महेश्वर खंड' के अ. ८ में कहा गया है कि मिथिलापति जनक की कन्या सीता साक्षात् ब्रह्मविद्या थी तथा पूर्व जन्म में इनका नाम वेदवती था (संक्षिप्त स्कंद पुराण, गीता प्रेस, पृ. १९)।

इसी पुराण के 'सेतु माहात्म्य' के लक्ष्मी तीर्थ और अग्नि तीर्थ माहात्म्य शीर्षक अध्याय में श्रीराम को अग्निदेव ने कहा कि सीताजी साक्षात् जगन्माता लक्ष्मीजी हैं, जिन्होंने लीला के लिये मानव शरीर धारण किया है। जब आप देव शरीर में स्थित होते हैं, तब ये भी दिव्य देह से आपकी सेवा करती हैं। आपने मानव शरीर धारण किया है, इसलिये ये भी मानव-कन्या के रूप में प्रकट हुई हैं -.(संक्षिप्त स्कंद पुराण, गीता प्रेस, पृ. ४१८)।

ब्रह्म पुराण

इस पुराण के 'रामतीर्थ का वर्णन' शीर्षक अध्याय-१२३ में कहा गया है कि श्रीराम के धनुर्विद्या के प्रदर्शन से प्रसन्न होकर राजा जनक ने अपनी कन्या लक्ष्मी अयोनिजा सीता को श्रीराम को प्रदत्त किया (. . . तत्प्रीतो जनकः प्रादात्सीतां लक्ष्मीमयोनिजाम्। – १२३/१०३)।

इसी पुराण में आगे के 'वाराह अवतार का वर्णन' शीर्षक अध्याय-२१३ में श्रीराम के अवतार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनकी स्त्री लोक में सीता नाम से प्रख्यात तथा सुंदर थी। लक्ष्मी की तरह वह अपने स्वामी का अनुगमन करती थी (रूपिणी तस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जने। पूर्वोदिता तु या लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छिति।। – २१३/१२९)।

हरिवंश पुराण के अध्याय १/१४१ में भी ब्रह्म पुराण के अ. २१३ जैसा ही उल्लेख है।

श्रीमद् भागवत पुराण

इस पुराण में भी सीताजी को देवी लक्ष्मी के अनुरूप ही कहा गया है (जित्वानुरूप गुणशीलवयो अंग रूपां। सिताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम्।। – ९/१०/१७)।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण

इस पुराण के अध्याय १/२३९ में स्पष्टतया कथित है कि श्रीराम भगवान विष्णु एवं सीताजी साक्षात् देवी लक्ष्मी हैं (रामो जनार्दनः साक्षात् सीता लक्ष्मीस्तथैव च। – ४१)।

बृहद्धर्म पुराण

इस पुराण के अनुसार स्वयं महामाया ने भगवान विष्णु से कहा कि आपके मानव रूप में अवतार लेने पर मेरी विभूति रूपा श्रीदेवी (लक्ष्मी देवी) को दुरात्मा अपहरण करेंगे और उसका असम्मान करने के कारण नष्ट हो जायेंगे (मम प्रतिनिधिभूतां यदा लक्ष्मीं तव प्रियाम्। अवमंस्येति दुरात्मा तदा स नाशमेष्यति।। – पूर्व खंड, १८/३४)।

२ (घ) परशुराम अवतार

जब भगवान विष्णु ने परशुराम रूप में अवतार लिया, देवी लक्ष्मी पृथिवी हुई।

यदा तु भार्गवो रामस्तदा भूद्धरिणी त्वियम्। – विष्णु पुराण, १/९/१४३

२ (ङ) श्री कृष्णावतार

जब भगवान विष्णु ने श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया, तब देवी लक्ष्मी ने श्री रुक्मिणी के रूप में अवतार लेकर उनको सहयोग दिया। महाभारत एवं कई पुराणों में श्रीरुक्मिणी को देवी लक्ष्मी का अवतार कहा गया है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण (श्रीकृष्ण जन्म खंड) के अध्याय १०५ में श्रीरुक्मिणी के विवाह का वर्णन करते हुए, श्रीरुक्मिणी को महालक्ष्मी कहा गया है (तस्या कन्या महालक्ष्मी रुक्मिणी योषितां वरा। – १०५/३)। इसी प्रकार आगे अ. १०९ में विवाहोत्सव के वर्णन के अन्तर्गत कहा गया है कि रुक्मिणी साक्षात् लक्ष्मी है, सम्पत्तियों की अधिदेवता है (रुक्मिणी कमला साक्षात् संपदामधिदेवता। – १०९/२०)। इसी अध्याय में आगे बिदाई की बेला में श्रीरुक्मिणी की माता कहती है कि माया से कन्या रूप बनी हुई तुम महालक्ष्मी हो तथा कृष्ण की पत्नी बनकर मेरे घर से वासुदेव के घर जा रही हो (महालक्ष्मीर्मम गृहात् कन्या रूपा च मायका। वासुदेवालयं यासि वासुदेव प्रिया सतीः।। – १०९/३६)।

विष्णु पुराण में कथित है कि श्रीकृष्ण अवतार में देवी लक्ष्मी श्रीरुक्मिणी हुईं (. . . . . . रुक्मिणी कृष्ण जन्मनि। – १/९/१४४)। स्कंद पुराण (ब्रह्म खंड) के 'सेतु माहात्म्य' शीर्षक अध्याय में भी ऐसा ही कथन है (. . . भवित्री रुक्मिणी ततः। – २२/१९)

हरिवंश पुराण (२/५१) के अनुसार श्रीरुक्मिणी के पिता राजा भिष्मक से श्रीकृष्ण ने कहा कि रुक्मिणी दिव्य मूर्ति है तथा उसकी ऐसी दिव्यता के कारण ही वह मुझसे संबंधित है (रुक्मिण्या दिव्यमूर्तित्वं संबंधे कारणं मम्)।

२ (च) दत्तात्रेय अवतार

दत्तात्रेय भगवान विष्णु के अवतार माने जाते हैं। ऐसी पुराकथा है कि भगवान विष्णु महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया की भक्ति से प्रसन्न होकर उसके पुत्र के रूप में जन्म लिया। अनसूया अपने पुत्र को 'दत्त' नाम से पुकारती थी, क्योंकि भगवान ने उसे पुत्र प्रदान किया था। साथ ही वे अत्रि मुनि के पुत्र थे, इसलिये संसार में 'दत्त + आत्रेय' के नाम से प्रसिद्ध हुए। मार्कण्डेय पुराण के दत्तात्रेय संबंधी माहात्म्य में कहा गया है, ". . . दत्तात्रेय इति ख्यातः सोऽनसूया स्तन पपौ। विष्णुरेवावतीर्णाऽसौ द्वितियोऽत्रेः सुतोऽभवत।" (१६/९८-९९) दत्तात्रेय अवतार के समय देवी लक्ष्मी भी उनके साथ थी। देवताओं के अनुरोध पर दत्तात्रेय जब दैत्यों का नाश करने के लिये,

युद्ध कर रहे थे, दैत्यों ने देवी लक्ष्मी को हर लिया और उसे सिर पर रखकर भाग खड़े हुए। देवी के प्रभाव से वे शक्तिहीन हो गये और देवताओं ने उन्हें हरा दिया तथा देवी लक्ष्मी पुनः दत्तात्रेय के पास आ गई (. . . शिरः सु लक्ष्म्याप्याक्रान्ता विनेशुरिति नः श्रुतम्। लक्ष्मीश्चोत्पत्य सम्प्राप्ता दतात्रेयं महामुनि्। - १६/१७८-१७९)। देवी लक्ष्मी के हरण संबंधी प्रसंग में कहा गया है कि देवी लक्ष्मी जब किसी के मस्तक पर स्थित होती है तो वह उसको छोड़कर अन्य का आश्रय ग्रहण करती है (१६/१७५), जो स्पष्टतया प्रतीकात्मक है। लक्ष्मी का सिर पर चढ़ना यानि धन-वैभव के गर्व एवं अहंकार में डूबकर मनुष्य असद् कार्य करता है, जिससे लक्ष्मी उसके पास से चली जाती है।

३ (क) लक्ष्मी का अश्वीरूपी अवतार

भगवान विष्णु वैकुंठ में वास करते थे तथा लक्ष्मी भी उनके साथ थीं। उस समय एक बार सूर्यपुत्र रैवत मुनि अपने दैवी अश्व उच्चैश्रवा पर बैठ वहाँ पहुँचे। अश्व की सुंदरता देख लक्ष्मी स्तब्ध हो गई तथा मंत्रमुग्ध हो उसे देखती ही रही। भगवान विष्णु ने उसका हाथ पकड़कर झकझौरा परन्तु वह सचेत नहीं हुई। अतः विष्णु ने उसे क्रोधित हो शाप दिया कि तू अब से 'रमा' कहलायेगी तथा अश्वी-रूप में विश्व में फिरती रहेगी।

'रमा' यानि जो सर्वत्र रमण करे वह। लक्ष्मी सदा रमण करती रहती है, इसलिये ही चंचला के रूप में भी विख्यात है।

विष्णु के शाप से लक्ष्मी को आघात लगा तथा उसे अपनी भूल को समझा एवं विष्णु भगवान से क्षमा याचना की, उससे द्रवीभूत विष्णु ने कहा कि अश्वी-रूप में पुत्र के जन्म के बाद पुनः वैकुंठ में लौट आवोगी।

शापित लक्ष्मी यमुना तट पर आकर भगवान शिव की आराधना करने लगी। शिव प्रसन्न हुए तथा शिव की विनति के कारण विष्णु अश्व-रूप धारण कर पृथ्वी पर उतरे। अश्वी रूपी लक्ष्मी से मिले तथा लक्ष्मी ने एक पुत्र को जन्म दिया तथा पुनः वैकुंठ में अपने पूर्व रूप में लौटी। यह पुत्र आगे चलकर राजा एकवीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो हेहय नामक राजवंश का संस्थापक माना जाता है। – देवी भागवत, ६/९।

३ (ख) देवी लक्ष्मी का नदी रूप में भूतल पर अवतरण

पूर्व काल में भगवान नारायण के तीन पत्नियाँ थीं — लक्ष्मी, गंगा और सरस्वती। तीनों ही बड़े प्रेम से रहती और अनन्य भाव से भगवान का पूजन किया करती थीं। एक

दिन भगवान की ही इच्छा से ऐसी घटना हो गई, जिससे लक्ष्मी, गंगा और सरस्वती को भगवान के चरणों से कुछ काल के लिये दूर हट जाना पड़ा। भगवान जब अन्तःपुर में पधारे उस समय तीनों देवियाँ एक ही स्थान पर बैठी हुई, परस्पर वार्तालाप कर रही थीं। भगवान को आया देख तीनों उनके स्वागतार्थ खड़ी हो गईं। उस समय गंगा ने विशेष अनुराग पूर्ण दृष्टि से भगवान की ओर देखा। भगवान ने भी उनकी दृष्टि का उत्तर वैसी ही अनुरागपूर्ण दृष्टि से मुस्कराते हुए दिया। फिर वे किसी आवश्यकतावश अन्तःपुर से बाहर चले गये। तब देवी सरस्वती ने गंगा के उस बर्ताव को अनुचित बताकर उनके प्रति आक्षेप किया। गंगा ने भी कठोर शब्दों में सरस्वती का प्रतिवाद किया। उनका विवाद बढ़ता देख, लक्ष्मीजी ने दोनों को शान्त करने की चेष्टा की। सरस्वती ने लक्ष्मी के इस बर्ताव को गंगा के प्रति पक्षपात माना और उन्हें शाप दे दिया, "तुम वृक्ष और नदी के रूप में परिणत हो जाओगी।" यह देख गंगा ने भी सरस्वती को शाप दे दिया, "तुम भी नदी हो जाओगी।" ऐसा ही शाप सरस्वती की ओर से गंगा को भी मिला। इतने में भगवान पुनः अन्तःपुर में लौट आये। अब देवियाँ प्रकृतिस्थ हो चुकी थीं। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई तथा भगवान के चरणों से विलग होने के भय से दुःखी हो रोने लगी।

जब भगवान को उक्त परस्पर शाप की बात का पता चला, वे खिन्न हुए और दया से द्रवीभूत हो, उन्होंने कहा, "तुम सब एक अंश में ही नदी होओगी, अन्य अंशों से तुम्हारा निवास मेरे पास ही रहेगा तथा उन्होंने लक्ष्मी से कहा कि तुम अपनी कला के अंशांश से भारतवर्ष में जाओ और वहाँ तुम 'पद्मावती नदी' तथा 'तुलसी वृक्ष' के रूप में विराजमान होवोगी; लेकिन इसके पहले तुम पृथ्वी पर जाकर राजा धर्मध्वज के घर एक अंश से कन्या होकर प्रकट होवो। वहाँ मेरे अंश से उत्पन्न होने वाले शंखचूड़ की पत्नी बनकर, दैववश वहाँ वृक्ष रूप धारण करोगी तथा यहाँ आकर मेरी पत्नी हो जावोगी और भारत में तुम्हारा नाम त्रैलोक्य-पावन तुलसी पड़ेगा। - (श्रीमद्‌देवी भागवत, ९/६-७ तथा ब्रह्म वै. पु., २/६)

३ (ग) देवी लक्ष्मी का वृक्ष-रूप में भूतल पर अवतरण

इस प्रकार देवी लक्ष्मी कलांश में 'पद्मावती नदी' तथा कलांश में राजा धर्मध्वज की कन्या तुलसी के रूप में अवतरित हुई। राजा धर्मध्वज की कन्या तुलसी वृक्ष रूप में कैसे परिवर्तित हुई, वह पुरा-कथा इस प्रकार है —

राजा धर्मध्वज की पत्नी माधवी ने कार्तिक मास की पूर्णिमा को देवी लक्ष्मी के अंश से प्रादुर्भूत पद्मिनी स्वरूप कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम तुलसी रखा गया। (. . . राजराजेश्वरीं लक्ष्मी सर्वावयव सुंदरीम् (ब्र. वै. पु., प्रकृति खण्ड, १५/९) एवं तेन नाम्ना च तुलसी तां वदति पुराविदः। (ब्र. वै. पु., प्रकृति खण्ड, १५/१४)। भगवान विष्णु को पति रूप में पाने के लिये वह तपस्या करने लगी, परन्तु ब्रह्माजी ने उससे कहा कि राधाजी के शाप से गोप सुदामा ने श्रीकृष्ण के आंशिक प्रसाद के साथ असुर शंखचूड़ के रूप में जन्म लिया है, अतः इस जन्म में तुम शंखचूड़ के साथ विवाह कर पवित्र होवो। बाद में तुम्हें नारायण पति रूप में मिलेंगे। ब्रह्माजी के परामर्श से तुलसी ने शंखचूड़ से विवाह कर लिया। शंखचूड़ बड़ा पराक्रमी असुर था। उसने युद्ध में देवताओं को हरा दिया। अतः देवताओं ने उसे हराने के लिये भगवान विष्णु से निवेदन किया। भगवान विष्णु ने शंखचूड़ को हराने के लिये तुलसी के पातिव्रत को खंडित करने की युक्ति सोची एवं तदनुसार शंखचूड़ का छद्मवेश धारण करके वे तुलसी के पास एकान्त में पहुँचे तथा तुलसी उन्हें अपना पति समझ बैठी और उसका पातिव्रत खंडित हो गया और उधर रणभूमि में शंखचूड़ का वध हो गया। तुलसी को जब सच्चाई मालूम हुई, तब उसने भगवान विष्णु को शाप दे डाला कि तुम पाषाण हृदय हो, अतः तुम पाषाण हो जाओ (. . . पाषाण रूपस्त्वं भुवि देव भवा धुना - ब्र. वै. पु., २१/२४)। भगवान विष्णु ने तुलसी को समझाते हुए कहा कि तुमने मुझे प्राप्त करने के लिये तपस्या की थी, अतः अब इस शरीर को त्याग, तुम लक्ष्मी की तरह मेरे साथ रहो। तुम्हारा मृत शरीर गंडकी नदी तथा केश-समूह तुलसी नामक वृक्ष होंगे।

इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यां देहे विधाय च।
रासे मे रमया सार्धं त्वं रमा सदृशी भव।।
इयं तनुर्नदी रूपा गंडकीति च विश्रुता।
पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्या भवतु भारते।।
तव केश समूहश्च पुण्य वृक्षा भवन्त्विति।।
तुलसी केश संभूता तुलसीति च विश्रुता।।

— ब्र. वै. पु., प्रकृति खण्ड, २१/३१-३३

इस प्रकार धर्मध्वज की कन्या एवं शंखचूड़ की पतिव्रता पत्नी तुलसी गंडकी नदी एवं तुलसी वृक्ष में रूपान्तरित हो गई।

तुलसी के शाप से भगवान विष्णु पाषाण हो गये, जिसे शालग्राम कहा जाता है एवं भगवान विष्णु के प्रतीक के रूप में पूजे जाते हैं। (श्रीदेवी भागवत, ९/१५-२२ तथा ब्र. वै. पु., प्रकृति खण्ड, अ. १५-२२)

ब्र. वै. पुराण के २/६ अध्याय एवं श्रीदेवी भागवत के अ. ९/६ में देवी लक्ष्मी के नदी रूप का नाम 'पद्मावती नदी' है, जबकि इन्हीं पुराणों के अन्य अध्यायों (ब्र. वै. पु., अ. २१ व देवी भागवत, ९/२१) में देवी लक्ष्मी के नदी रूप का नाम 'गंडकी' है।

शिव पुराण

तुलसी-शंखचूड़ विषयक पुराकथा का उल्लेख शिव पुराण में भी मिलता है। इस पुराण की पुराकथा के अनुसार शंखचूड़ का वध भगवान शिव करते हैं और वे ही भगवान विष्णु की उपस्थिति में मानवी तुलसी को वर देते हैं कि मानवी देह के समाप्त होने पर वह गंडकी नदी एवं तुलसी-वृक्ष बनेगी।

तवेयं तनुरुत्सृष्टा नदीरूपा भेवदिह।
भारते पुण्यरूपा सा गंडकीति विश्रुता।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले तिष्ठ त्वं हरिसान्निधौ।
भव त्वं तुलसी वृक्षो वरा पुष्पेषु सुंदरी।
— शि. पु., २/५/४१/४४-४६

शिव पुराण की उक्त पुराकथा में तुलसी को देवी लक्ष्मी के अंश का अवतार तो नहीं कहा गया है, लेकिन ऐसा कहा गया है कि जब वह मानवी देह त्यागकर, दिव्य देह धारण करेगी तब भगवान विष्णु के साथ देवी लक्ष्मी के सदृश रमण करोगी।

इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्य देह विधाय च।
रमस्व हरिणा नित्यं रमया सदृशी भव।।
— शि. पु., २/५/४१/४३

तुलसी शब्द का अर्थ

ब्रह्म वैवर्त पुराण के अनुसार देवी का नाम तुलसी इसलिये पड़ा कि समस्त विश्व में, जिसके तुल्य अन्य नहीं (यस्या देव्या स्तुलानास्ति विश्वेषु निखिलेषु च। तुलसी तेन विख्याता। —प्रकृति खंड, २२/२४), लेकिन बृहद्धर्म पुराण ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'त' का अर्थ है मरण और 'उकार' का अर्थ है योग। इस प्रकार 'तु'

का अर्थ हुआ 'मृता' और 'लसी' (लस् धातु) का अर्थ है 'कान्तिं', अतः तुलसी का अर्थ हुआ — 'मृता होने पर भी, जो कान्तिमती बनी रहे।'

त कारो मरणं प्रोक्तं तद् योगः स्यादु कारतः।
मृता लसति चेत्येवं तुलसीत्येव गीयते।।
— ७/६१

तुलसी के नाम

तुलसी के कई नाम हैं। श्रीमद्देवी भागवत के नामाष्टक के अनुसार तुलसी के आठ नाम हैं — (१) वृन्दा, (२) वृन्दावनी, (३) विश्वपूजिता, (४) विश्वपावनी, (५) पुष्पसारा, (६) नन्दिनी, (७) तुलसी एवं (८) कृष्णजीवनी। (९/२५/३२)

तुलसी के वृन्दा नाम के साथ भी कई कथाएँ सम्पृक्त हैं।

वृक्ष रूपा तुलसी की उत्पत्ति विषयक अन्य पुराकथाएँ

उपरोक्त वृक्ष रूपा तुलसी की उत्पत्ति की तुलसी-शंखचूड़ कथा के अतिरिक्त भी कई पुराकथाएँ हैं, जिनमें से कुछ कथाएँ इस प्रकार हैं —

(१ शिव पुराण

तुलसी-शंखचूड़ की कथा के अतिरिक्त इस पुराण में वृक्ष रूपा तुलसी की उत्पत्ति की कथा में मानवी तुलसी (वृन्दा) का पति जलन्धर है तथा तुलसी के देह त्याग के बाद भगवान विष्णु उसके अति सौंदर्य से वशीभूत हो, उसकी चिता-भस्म को धारण कर, चिता-स्थल पर ही बैठ जाते हैं। उनके मोह को दूर करने के लिये देवताओं ने मूल प्रकृति से अनुरोध किया, जिसके फलस्वरूप मूल प्रकृति ने उन्हें कुछ बीज दिये, जो त्रिगुणात्मक शक्तियों के रूप थे और कहा कि इन्हें जहाँ विष्णु बैठे हैं, वहाँ बो देवें। तदनुसार देवताओं ने उन बीजों को चिता-स्थल के समीप बो दिये और बाद में उन बीजों से तीन पौधे उगे। ये तीन पौधे थे — धात्री (आँवला), तुलसी और मालती। ब्रह्मा की शक्ति ब्राह्मी के बीज से धात्री, लक्ष्मी के बीज से तुलसी और गौरी के बीज से मालती की उत्पत्ति हुई। उन स्त्री रूपी वनस्पतियों को जब विष्णु ने देखा तो उनके प्रति अपने स्नेह के कारण, उनका मोह भंग हुआ और वे वहाँ से उठकर चले गये।

निक्षप्तेभ्यश्च बीजेभ्यो वनस्पत्यस्त्रोऽभवत्।
धात्री च तुलसी चैव मालती मुनीश्वर।

धात्र्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा तुलसी स्मृता।
गौरी भवा च मालती तमः सत्त्व रजोगुणैः।।
— २/५/२६/४६-४७

बृहद्धर्म पुराण

इस पुराण के अनुसार तुलसी वृक्ष की उत्पत्ति धर्मदेव नामक ब्राह्मण की पतिव्रता पत्नी वृन्दा के मृत शरीर से हुई। वृंदा भगवान विष्णु की भक्त थी, अतः भगवान शिव ने वृन्दा को वर दिया कि तुम तुलसी के वृक्ष रूप में उत्पन्न होओगी और स्वयं श्रीहरि तुम्हारे पत्तों से पूजित होंगे।

न वृथा भवितुं योग्या विष्णु प्रीतिकरी त्वियम्।
विष्णुप्रीतिं करोत्येषा तरूर्भूत्वा महीतले।।
शरीर मज्ज्यतामस्याः श्रीविष्णुप्रीतये गणाः।
अस्या पत्रेण वृन्दायाः पूजितः स्यात् स्वयं हरिः।।
— ७/५८-५९

पद्म पुराण

इस पुराण में ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि समुद्र-मंथन के समय श्री (लक्ष्मी) के प्रकट होने के बाद में लक्ष्मी भ्राता चंद्रमा एवं हरिजाया तुलसी प्रकट हुए।

लक्ष्मीभ्राता शीतरश्मिर्जातिश्च सुधया ततः।
उत्पन्ना सा हरेर्जाया तुलसी लोकपावनी।।
— स्वर्ग खंड, ४१/४७

इस प्रकार उक्त श्लोक के अनुसार तुलसी की उत्पत्ति भी लक्ष्मी की भाँति समुद्र से हुई।

स्कंद पुराण

इस पुराण के कार्तिक मास माहात्म्य (विष्णु खंड, अ. ८) के अन्तर्गत ऐसा उल्लेख है कि समुद्र-मंथन से उत्पन्न अमृत-घट को ग्रहण करते समय भगवान विष्णु के आनंदाश्रु की कुछ बूंदें गिरीं, जिनसे तुलसी की उत्पत्ति हुई।

तस्मिन् पीयूषकलश आनंदास्रोदबिन्दवः।
व्यापतं तुलसी सद्यः समज्जायत मंडला।।
— २/३/८/३४

तुलसी की महिमा

वृक्ष रूपा तुलसी को हिन्दू धर्मावलम्बी एक पावन एवं पूजनीय वनस्पति मानते हैं, जिसे लक्ष्मीत्व प्राप्त है एवं भगवान विष्णु की प्रिया है (तुलसी च जगत्पूज्या पूता नारायण प्रिया। - ब्र. वै. पु., प्रकृति खं., २२/१)। तुलसी का जन्म कार्तिक पूर्णिमा को हुआ था एवं श्रीहरि ने उसी दिन उसकी पूजा की थी (२२/३४)।

तुलसी की महिमा का बखान करते हुए, स्कंद पुराण में कथित है —

यस्या रूपे बसेत्लक्ष्मीः स्कंधे सागरसम्भवा।
पत्रेषु सततं श्रीश्च शाखासु कमला स्वयम्।।
इन्दिरा पुष्पगा नित्यं फले क्षीराब्धिसम्भवा।
तुलसीशुष्ककाष्ठेसु या रूपा विश्वव्यापिनी।।
मज्जयां पद्मवासा च त्वचासु च हरिप्रिया।
— ६/१४९/३-५

भावार्थ : तुलसी के तने में सागर-कन्या, उसके पत्तों में श्री, उसकी शाखा में कमला, उसके पुष्प में इन्दिरा, उसके फल में समुद्रोद्‌भवा, उसके सूखे काठ में विश्व-व्यापिनी, उसकी मज्जा में पद्मा और उसकी छाल में हरिप्रिया के रूप में देवी लक्ष्मी वास करती है, अर्थात् तुलसी-वृक्ष में देवी लक्ष्मी का वास है।

तुलसी के उपरोक्त महिमा-वर्णन से यह स्पष्ट है कि तुलसी वृक्ष के पत्ते, फूल, फल, मूल, शाखा, छाल, तना सभी पावन हैं, न केवल ये पावन है वरन् आयुर्वेद के अनुसार औषधीय गुणों से भी भरपूर हैं। तुलसी कभी बासी नहीं होती है। पूजा में बासी वस्तुओं का उपयोग वर्जित है, लेकिन बासी तुलसीदल एवं बासी गंगा जल वर्जित नहीं है (न वर्ज्यं तुलसी पत्रं न वर्ज्यं जाह्नवी जलम्। - स्कंद पुराण, वै. भा., मा. ८/९)।

पुराणों में तुलसी के माहात्म्य पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि जहाँ तुलसी के पौधे होते हैं या तुलसी-वन (वृन्दावन) होता है, वह स्थान या उद्यान महान् तीर्थ हो जाता है।

•

देवी लक्ष्मी के विविध सगुण स्वरूप एवं उनकी विशिष्टताएँ

श्री और लक्ष्मी अनेकार्थी शब्द

सौभाग्य एवं समृद्धि की प्रदात्री देवी लक्ष्मी तो एक ही देवी है, परन्तु देवी के सगुण स्वरूप के रूप अनेक हैं। 'श्री' और 'लक्ष्मी' ये दोनों ही शब्द भाववाचक संज्ञा एवं व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में व्यवहार किये जाते हैं; अतः ये दोनों ही शब्द अनेकार्थी हैं। कई संज्ञाओं से इन्हें सम्पृक्त कर उन संज्ञाओं की गुणवत्तात्मकता की वृद्धि या विशिष्टता अभिव्यक्त की जाती है। उदाहरणार्थ 'श्री' और 'लक्ष्मी' को 'जय' के साथ जोड़कर 'जय-श्री' और 'जय-लक्ष्मी' जैसे शब्द-युग्म 'जय' की गुणवत्तात्मकता या विशिष्टता को अभिव्यक्त करते हैं। लेकिन 'जयश्री' या 'जय-लक्ष्मी' देवी लक्ष्मी के सगुण स्वरूप के कोई रूप या प्रकार नहीं हैं।

अष्ट-लक्ष्मी

'लक्ष्मी' शब्द को 'धन' या 'सम्पत्ति' का पर्याय मानकर, देवी के आठ रूपों की परिकल्पना की गई है, जिन्हें 'अष्ट लक्ष्मी' कहते हैं। ये आठ रूप हैं — (१) धन-लक्ष्मी, (२) गृह-लक्ष्मी, (३) आरोग्य-लक्ष्मी, (४) यश-लक्ष्मी, (५) संस्कार-लक्ष्मी, (६) ज्ञान-लक्ष्मी, (७) आध्यात्मक-लक्ष्मी एवं (८) मोक्ष-लक्ष्मी। कहीं-कहीं इन आठ नामों में कतिपय नामों में भिन्नता है और अष्ट-लक्ष्मी के आठ नाम हैं (१) आदि-लक्ष्मी, (२) धन-लक्ष्मी, (३) विद्या-लक्ष्मी, (४) धान्य-लक्ष्मी, (५) धैर्य-लक्ष्मी, (६) संतान-लक्ष्मी, (७) विजय-लक्ष्मी एवं (८) भाग्य-लक्ष्मी। ये नाम वैभव या सम्पन्नता के

विविध पक्षों को सूचित करते हैं, परन्तु ये देवी लक्ष्मी के सगुण स्वरूप या श्री विग्रह के विविध रूप नहीं है।

देवी लक्ष्मी के सगुण स्वरूप या श्री विग्रह का शब्दचित्र हमें पुराणों एवं प्रतिमा-लक्षण संबंधी ग्रंथों में उल्लिखित ध्यान-श्लोकों में मिलता है। इन ध्यान-श्लोकों में वर्णित देवी के स्वरूपों में वैविध्य है। इन विविध ध्यान-श्लोकों को वर्गीकृत कर देवी लक्ष्मी के प्रमुख आठ स्वरूप माने गये हैं, जिन्हें भी 'अष्ट-लक्ष्मी' शब्द-युग्म से संबोधित किया जाता है। देवी लक्ष्मी के ये आठ स्वरूप हैं — (१) द्विभुजा (सामान्या), (२) गज-लक्ष्मी, (३) महा-लक्ष्मी, (४) श्रीदेवी, (५) वीर लक्ष्मी, (६) द्विभुजा वीर लक्ष्मी, (७) अष्टभुजा वीर लक्ष्मी एवं (८) प्रसन्न लक्ष्मी। इन आठ स्वरूपों में से तीन स्वरूप यथा (१) द्विभुजा लक्ष्मी, (२) गज-लक्ष्मी एवं (३) महालक्ष्मी अन्य स्वरूपों की अपेक्षा अधिक लोक-प्रसिद्ध हैं।

इन आठ स्वरूपों का विवरण विभिन्न ध्यान-श्लोकों के आधार पर निम्नवत है —

(१) द्विभुजा लक्ष्मी

(i) विष्णुधर्मोत्तर पुराण

इस पुराण के अनुसार इस स्वरूप के अंकन में देवी की दो भुजाएँ दिखलाई जानी चाहिये तथा देवी के दोनों हाथों में कमल-पुष्प धारण किये बतलाया जाना चाहिये। देवी को समस्त आभूषण से भूषित दिव्य स्वरूप में दिखलाना चाहिये। भगवान विष्णु के साथ देवी के युगल अंकन में देवी लक्ष्मी की दो भुजाएँ ही बतलानी चाहिये -

हरेः समीपे कर्तव्या लक्ष्मीस्तु द्विभुजा नृप।
दिव्य रूपाम्बुजकरा सर्वाभरण भूषिता।।

- (विष्णुधर्मोत्तर पुराण, हेमाद्रिव्रत खंड)

(ii) मानसर

प्रतिमा-लक्षण-संबंधी ग्रंथ 'मानसर' में द्विभुजा लक्ष्मी को 'सामान्या लक्ष्मी' कहा गया है, जिसके दो नेत्र एवं हाथों में लाल कमल-पुष्प धारण किये बतलाना चाहिये।

सामान्यां लक्ष्मीं कुर्याद् द्विभुजां च द्विनेत्रकाम्।
रक्तपद्मोद्धृतौ हस्तौ सर्वाभरणभूषिणीम्।।

(iii) मत्स्य पुराण

भगवान विष्णु के साथ देवी लक्ष्मी को वाम पार्श्व में कमल-पुष्प हाथ में लिये दिखलाना चाहिये।

वामतस्तु भवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना।। - (अ. २५८/१२)

(iv) अंशुमदभेदागम

प्रतिमा लक्षण संबंधी सुप्रसिद्ध ग्रंथ अंशुमदभेदागम के अनुसार देवी लक्ष्मी के दो हाथ बतलाने चाहिये तथा उन्हें पद्मासन पर विराजमान दिखलाना चाहिये। देवी की प्रभा स्वर्णिम, कानों में मकराकृति वाले रत्न जड़ित स्वर्ण कुंडल धारण किए बतलाना चाहिये। उन्हें नवयौवना एवं सौंदर्यशाली अंकित करना चाहिये। उनकी भौहें कुंचित, नेत्र लालिमा युक्त, कपोल विशाल, स्तन कंचुकी से ढके हुए, सिर शंख-चक्र से शोभित तथा बालों की मांग में कमल-पुष्प बतलाना चाहिये। उनके दाहिने हाथ में कमल-पुष्प एवं बायें में श्रीफल धारण किये तथा सुंदर वस्त्र एवं विविध आभूषणों से सज्जित, विशाल नितम्बों को सुंदर वस्त्रों से आवेष्टित एवं कमर में करधनी धारण किये दिखलाना चाहिये।

लक्ष्मीः पद्मासनासीना द्विभुजा काञ्चनप्रभा।
हेमरत्नोज्वलैर्नक्रकुण्डिलैः कर्णमण्डिता।।
सुयौवना सुरम्याङ्गी कुञ्चितभ्रूसमन्विता।
रक्ताक्षी पीनगण्डा च कञ्चुकाच्छादितस्तनी।।
शिरसो मण्डनं शङ्खचक्रसीमान्तपङ्कजम्।
अम्बुजं दक्षिणे हस्ते वामे श्रीफलमिष्यते।।
सुमध्या विपुलश्रोणी शोभनाम्बरवेष्टिता।
मेखला कटिसूत्रं च सर्वाभरणभूषिता।।

- (एकोनपञ्चाशपटले)

प्रतिमा लक्षण संबंधी एक अन्य ग्रंथ पूर्वकारणागम के द्वादश पटल में भी द्विभुजा लक्ष्मी का ऐसा ही विवरण है।

(२) गज-लक्ष्मी

देवी लक्ष्मी का यह स्वरूप सबसे अधिक लोक-प्रसिद्ध एवं सुदर्शनीय है। गज-लक्ष्मी के अंकन में देवी लक्ष्मी को दो हाथियों के बीच में खिले हुए कमल-पुष्प पर

आसीन या खड़े दिखलाया जाता है तथा दोनों हाथी अपनी सूंड में कलश पकड़े उन्हें उलटकर देवी का जलाभिषेक करते हुए दिखलाये जाते हैं। दो हाथियों के स्थान पर चार हाथी भी कहीं-कहीं दिखलाये जाते हैं। हाथियों द्वारा देवी का जलाभिषेक उनके राजसी वैभव एवं शक्तिमत्ता को प्रदर्शित करता है। हाथी को देवी लक्ष्मी का वाहन भी माना जाता है। स्कंद पुराण में ऐसा कथित है कि समुद्र-मंथन के समय जब देवी लक्ष्मी समुद्र-तल से ऊपर आईं, वे हाथी पर सवार थीं। - (पांडुर गजारूढ़ा, १/१/११/६७) विष्णु पुराण के अनुसार अपने जल से स्नान कराने के लिये गंगा आदि नदियाँ स्वयं उपस्थित हुईं और दिग्गजों ने सुवर्ण-कलशों में भरे हुए उनके जल से सर्वलोक महेश्वरी श्री लक्ष्मी देवी को स्नान करवाया।

गंगाद्याः सरितस्तोयैः स्नानार्थमुपत स्थिरे।
दिग्गजा हेमपात्रस्थमादाय विमलं जलम्।।
स्नापयांचक्रिरे देवीं सर्वलोक महेश्वरीम्। - (१/९/१०३)

देवी लक्ष्मी के गज-लक्ष्मी स्वरूप के कई ध्यान-श्लोक पुराणों एवं प्रतिमा लक्षण संबंधी ग्रंथों में मिलते हैं, जिनमें कतिपय श्लोक निम्नशः हैं —

(i) विष्णुधर्मोत्तर पुराण

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उल्लिखित गज-लक्ष्मी का ध्यान-श्लोक :

लक्ष्मीः शुक्लाम्बरा देवी रूपेण प्रतिमा भुवि।
पृथक् चतुर्भुजा कार्या देवी सिंहासने शुभा।।
सिंहासनेऽस्याः कर्तव्यं कमलं चारुकर्णिकम्।
अष्टपत्रं महाभागा कर्णिकायां सुसंस्थिता।।
विनायकवदासीना देवी कार्या चतुर्भुजा।
बृहन्नालं करे कार्ये तस्याश्च कमलं शुभम्।।
दक्षिणे यादव श्रेष्ठ केयूरप्रांत संस्थितम्।
वामे अमृत घटः कार्यस्तथा राजन् मनोहरः।।
तस्या अन्यौ करौ कार्यौ बिल्वशंखधरौ द्विज।
आवर्जित करं कार्यं तत् पृष्ठे कुंजर द्वयम्।।
देव्याश्च मस्तके कार्यं पद्म चापि मनोहरम्।

उक्त ध्यान-श्लोक के आधार पर देवी लक्ष्मी का रूपांकन करते समय उन्हें श्वेत वस्त्र धारी, अनुपम सौंदर्यशाली एवं चार भुजाओं वाली दिखलाना चाहिये। उनका सिंहासन

अष्ट-दल कमल पुष्प की आकृति का बनाना चाहिये तथा ऐसे सिंहासन पर उन्हें आसीन बतलाना चाहिये। उनके दाहिने हाथ में केयूर पर्यन्त स्थित विशाल नालवाला सुन्दर कमल-पुष्प धारण किये तथा बायें हाथ में मनोहर कलश दिखलाना चाहिये। उनके अन्य दो हाथों में बिल्व-फल तथा शंख धारण किये दिखलाना चाहिये। देवी के पृष्ठभाग में दो गजराजों को सूंड में पकड़े कलशों को उलटकर देवी का अभिषेक करते दिखाना चाहिये। देवी के मस्तक पर मनोहर कमल-पुष्प बनाना चाहिये।

प्रतिमा लक्षण के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'मानसर' के अनुसार भी दो ऐरावतों के द्वारा देवी का अभिषेक करते हुए दिखलाना चाहिये — 'ऐरावत द्वयं चैव कुर्यादाराधयेत्सुधीः'।

(ii) मत्स्य पुराण

इस पुराण के प्रतिमा लक्षण संबंधी अध्याय (२६१) में देवी लक्ष्मी की प्रतिमा की विशिष्टताओं का भी वर्णन किया गया है, जो सामान्यतः विष्णुधर्मोत्तर पुराण के उक्त ध्यान में वर्णित वर्णन जैसा ही है, लेकिन इस पुराण के ध्यान-श्लोक के अनुसार देवी का अभिषेक दो हाथियों के स्थान पर चार हाथी स्वर्ण घटों से करते तथा देवी के पार्श्व में चामरधारी स्त्रियों की प्रतिमाएँ भी निर्मित करनी चाहिये।

पार्श्वे तस्याः स्त्रियः कार्याश्चमर व्यग्र पाणयः।
पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासन स्थिता।।
करिभ्यां स्नाप्यमानाऽसौ भृंगाराभ्यामनेकशः।
प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृंगाराभयां तथाऽपरौ।। - (२६१/४५-४६)

(iii) अग्नि पुराण

अग्नि पुराण (अ. ३०८) के ध्यान-श्लोक में देवी को चतुर्भुजा कहा गया है तथा चार हाथी देवी का अभिषेक करते बतलाये गये हैं। इस ध्यान श्लोक में अभिषेक करने वाले चार हाथियों के नाम हैं — गुग्गुलु, कुरंटक, दमक और सलिल।

आग्नेयादिषु पत्रेषु गुग्गुलुश्च कुरंटकः।
दमकः सलिलं चेति हस्तिनो रजतप्रभा।।
हेमकुम्भधराश्चैते कर्णिकायां श्रियं स्मरेत।
चतुर्भुजां सुवर्णाभां सपद्मोर्ध्वभुजद्वयाम्।। - (३०८/१२-१३)

(iv) सीतोपनिषद

इस उपनिषद में भी देवी लक्ष्मी को चतुर्भुजा कहा गया है। दो हाथ अभय और वरद मुद्राओं में हैं तथा बाकी दो हाथों में कमल-पुष्प धारण किये हैं। सभी देवताओं से घिरी हुई, कल्प वृक्ष के मूल में चार श्वेत हाथियों द्वारा रत्न जड़ित कलशों के अमृत-जल से अभिषिक्त होती हुई, वे आसीन हैं - '. . . चतुर्भुजाऽभय वरद पद्मधरा किरीटाभरणयुता सर्व देवैः परिवृता कल्पतरु मूले चतुर्भिर्गजै रत्नघटैरमृत जलैरभिषिच्यमाना . . .।' - (८)

(v) सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद

इस उपनिषद के ध्यान-श्लोक में देवी के स्वरूप का जो चित्रण किया गया है, उससे यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि यह ध्यान गज-लक्ष्मी का ही है। इस ध्यान-श्लोक के अनुसार देवी की चार भुजाये हैं। दो हाथों में पद्म और शेष दो वरद और अभय मुद्रा धारण किए। तप्त कांचन के सदृश उनके शरीर की कान्ति है तथा शुभ्र मेघ की-सी आभा से युक्त दो हाथियों की सूंडों में धारण किए कलशों से उनका अभिषेक हो रहा है।

भूयाद्भूयो द्विपद्माभयवरदकरा तप्तकार्तस्वराभा।
शुभ्राभ्राभेभ युग्मद्वयकरधृत कुम्भाद्भिरासिच्यमाना।।

(vi) तंत्रसार

इस ग्रंथ में गज-लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन करते हुए देवी का अभिषेक चार हाथियों द्वारा बतलाया गया है — 'माणिका प्रतिमप्रभां हिमनिभैजस्तुंगैश्चतुर्भि गजैः'। — (पृ. १२०)

(vii) रामायण

रामायण में ऐसा उल्लेख मिलता है कि पुष्पक विमान पर गज-लक्ष्मी का अंकन था —

नियुज्यमानाश्च गजाः सुहस्ताः सकेसराश्चोत्पलपत्र हस्ता।
बभूव देवी च कृता सुहस्ता लक्ष्मीस्तथा पद्मिनी पद्महस्ता।। - (५/७/१४)

(३) महालक्ष्मी

'महालक्ष्मी' शब्द आद्या-शक्ति (मूल प्रकृति / प्रधाना / ईश्वरी) के लिये प्रयुक्त किया जाता है, लेकिन देवी लक्ष्मी के आठ स्वरूपों में से यह भी एक लोक-प्रसिद्ध स्वरूप है,

जिसका विवरण ध्यान-श्लोकों के आधार पर निम्नवत है —

(i) विश्वकर्म शास्त्र

उक्त प्रतिमा लक्षण संबंधी ग्रंथ के अनुसार कोल्हापुर को छोड़कर, जब देवी महालक्ष्मी के स्वरूप का अंकन किया जाय, तब उन्हें समस्त आभूषणों से भूषित दिखाना चाहिये। देवी के चार हाथों में से दाहिने भाग के निचले हाथ में पात्र और उसके ऊपर वाले हाथ में कौमोदकी गदा तथा बायें भाग के निचले हाथ में श्रीफल (बिल्वफल) और उसके ऊपर वाले हाथ में ढाल धारण किये दिखलाना चाहिये। उनके ललाट पर लिंग का चिह्न बनाना चाहिये।

कोल्लांपुरं विनान्यत्र महालक्ष्मीर्यदोच्यते।
लक्ष्मीवत्सातदा कार्या रूपाभरणभूषिता।।
दक्षिणाधः करे पात्रमूर्ध्वे कौमोदकीं ततः।
वामोर्ध्वे खेटकं धत्ते श्रीफलं तदधः करे।।
बिभ्रती मस्तके लिंगं पूजनीया विभूतये।

कोल्हापुर (महाराष्ट्र) स्थित श्रीमहालक्ष्मी के पुराण प्रसिद्ध मंदिर में देवी महालक्ष्मी का श्रीविग्रह उपरोक्त विवरण के जैसा ही है। इस श्रीविग्रह का विवरण आगे 'श्री महालक्ष्मी का मंदिर, कोल्हापुर' में देखें।

(ii) श्रीमद्‌देवी भागवत

श्रीमद्‌देवी भागवत में महालक्ष्मी का वर्णन करते हुए, उसे स्वतेज से प्रज्ज्वलित, सुदर्शनीय, तप्त स्वर्ण के वर्ण वाली, मूर्तिमती सती, रत्न-जड़ित आभूषणों से सज्जित, पीतवासा, सुहास्य युक्त मुख वाली, नवयौवना एवं सभी सम्पत्ति देने वाली कही गई है।

स्वतेजसा प्रज्ज्वलन्तीं सुखदृश्या मनोहराम्।
प्रतप्तकांचननिभशोभां मूर्तिमतीं सतीम्।।
रत्नभूषण भूषाढयां शोभितां पीतवाससा।
ईषद्धास्यां प्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिर यौवनाम्।
सर्व सम्पत्प्रदात्री च महालक्ष्मीं भजेशुभाम्।। - (९/४२/९-१०)

(iii) कूर्म पुराण

इस पुराण में पुराणकार ने देवी महालक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्हें योगपारायणा, त्रिशूल धारिणी एवं सर्वशक्ति सम्पन्ना कहा है।

महालक्ष्मीर्महादेवी त्रिशूलवरधारिणी।
त्रिनेत्रा सर्वशक्तिभिः संवृता सहसन्मया।।
पश्यन्ति तत्र नुनयः सिद्धाये ब्रह्म-वादिनः।।

(iv) बृहद् नारदीय पुराण

इस पुराण के अनुसार महिषासुर के अत्याचारों से सुरक्षा प्राप्ति के लिये सभी देवों के तेज से महालक्ष्मी 'श्री' के रूप में प्रकट हुई एवं महिषासुर का वध कर अरविंद वन में चली गई। वे भक्तों की मनोकामना को पूरी करती हैं। - (८४/५२-५५)

इसी पुराण में अ. ८६ में महालक्ष्मी के निम्नांकित तीन अवतारों का उल्लेख है - (१) बालात्रिपुरा, (२) अन्नपूर्णेशी एवं (३) बगलामुखी बृहती।

(१) **बालात्रिपुरा** : बालात्रिपुरा के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह लाल कमल में स्थित हैं, वे लाल वस्त्र पहने हैं, उनके तीन आँखें हैं, उनकी कांति उगते हुए सूर्य सम है, वे माला एवं अस्त्र धारण किये हैं।

धायेद्रक्त सरोजस्थां रक्तवस्त्राम् त्रिलोचनाम्।
उद्यदर्क निभां विद्यां मालाभयवरोद्वहाम्।। - (८६/१६-१७)

(२) **अन्नपूर्णेशी** : अन्नपूर्णेशी के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे त्रिनेत्रा हैं, स्वर्ण के आभूषण एवं वस्त्र धारण किये है तथा भू (पृथ्वी) तथा रमा (लक्ष्मी) के साथ रहने वाली हैं।

स्वर्णाभांगां त्रिनयनां वस्त्रालंकार शोभिताम्।
भूरमासं युतां देवीं स्वर्णमन्नकराम्बुजाम्।। - (८६/६८-६९)

(३) **बगलामुखी** : बगलामुखी के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे पीताम्बर धारण करने वाली हैं, स्वर्ण के आसन पर विराजमान हैं, स्वर्णिम कांति युक्त हैं, वे स्तम्भन करने वाली हैं, वे चन्द्रशेखरा है तथा हाथों में मुद्गर, पाश, वज्र एवं रसना धारण करने वाली हैं।

अंगानि कल्पयित्वा च ध्यायेत्पीताम्बरां ततः।
स्वर्णासनस्थां हेमाभां स्तंभिनीमिन्दु शेखराम्।।
दधतीं मुद्गरं पाशं वज्रं च रसनां करैः।। - (८६/८७-८८)

चंडी-कल्प

देवी दुर्गा की स्तुति जिस प्रकार महिषासुरमर्दिनी कहकर की जाती है, वैसे ही चंडी-कल्प में महालक्ष्मी को सैरिभ-मर्दिनी कहा गया है। चंडी-कल्प के निम्नांकित ध्यान-श्लोक के अनुसार देवी के हाथों की संख्या १८ होनी चाहिये। देवी को हाथों में परशु, कुलिश, दंड, शक्ति, असि, चर्म, घंटा, शूल, पाश आदि अस्त्रों के साथ सुरापात्र धारण किये दिखलाना चाहिये।

अक्षस्रक्परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां।
दंडं शक्तिमासिं च चर्म जलजं घंटा सुराभाजनम्।।
शूलं पाश सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रवालप्रभाम्।
सेवे सैरिभमर्दिनी मिह महालक्ष्मीं सरोजा स्थिताम्।।

उपरोक्त ध्यान-श्लोकों में देवी लक्ष्मी के महालक्ष्मी स्वरूप में एकरूपता नहीं है। कहीं चार हाथों का निर्देश है तो अधिक। देवी लक्ष्मी के 'महालक्ष्मी' स्वरूप में वैष्णव सम्प्रदाय के तत्त्वों और प्रतीकों के साथ-साथ शैव सम्प्रदाय के तत्त्वों एवं प्रतीकों का समन्वयन प्रतीत होता है।

(४) श्री देवी

देवी लक्ष्मी के श्री देवी स्वरूप का अंकन करते हुए, प्रतिमा-लक्षण संबंधी ग्रंथ 'समरांगण सूत्रधार' के अनुसार देवी का मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान, होठ लाल वर्ण के, मंद-मंद मुस्कराते, श्वेत वस्त्र धारण किये, दिव्य अलंकारों से भूषित, हाथ में कमल-पुष्प एवं नवयौवना दिखलाना चाहिये।

पूर्ण चंद्रमुखा शुभ्रा बिम्बोष्ठी चारुहासिनी।
श्वेतवस्त्रधरा कान्ता दिव्यालंकार भूषिता।।
कटि देशनिविष्टेन वामहस्तेन शोभना।
सपद्मेन वान्तेन दक्षिणेन शुचिस्मता।।
कर्तव्या श्रीः प्रसन्नास्या प्रथमे यौवने स्थिता।। - (७७)

उक्त श्लोक के अनुसार देवी के दो हाथ बतलाने का उल्लेख है, लेकिन कई ऐसे भी ध्यान-श्लोक हैं, जिनमें हाथों की संख्या दो से अधिक है। निम्नलिखित ध्यान-श्लोक में देवी के चार हाथों का उल्लेख है, जिनमें उन्हें पाश, अंकुश, अक्षमाला एवं कमल-पुष्प धारण किये पद्मासन पर विराजमान बतलाया गया है।

पाशाक्षमलिकाम्भोज सृणिभिर्वाम सौम्ययोः।
पद्मासनस्थां ध्यायेत श्रियं त्रैलोक्य मातरम्।।
- कल्याण (१९८७), शक्ति उपासना अंक, पृ. ३२

समुद्र मंथन के समय, जो देवी खिले हुए कमल-पुष्प पर विराजमान समुद्र से प्रकट हुई, उसका नाम विष्णु पुराण के अनुसार श्री देवी है।

ततः स्फुरत्कान्तिमती विकास कमले स्थिता।
श्रीर्देवी पयसस्तस्मादुद्भूता धृत पंकजा।। - (१/९/१००)

स्कंद पुराण के ब्रह्मखंड के अंतर्गत धर्मारण्य-माहात्म्य का वर्णन करते हुए, एक देवी का वर्णन है, जिसे श्रीमाता कहा गया है। श्रीमाता का जो वर्णन दिया है, वह देवी लक्ष्मी के रूप श्रीदेवी के श्रीविग्रह के वर्णन से बिल्कुल भिन्न है। (१७/११-३९) अतः ऐसा प्रतीत होता है कि 'श्री माता' श्री देवी से भिन्न कोई देवी है।

(५) वीर-लक्ष्मी

वीर-लक्ष्मी के ध्यान श्लोक के अनुसार उनके स्वरूप का अंकन करते समय उन्हें कमल के आसन पर स्थित तथा चार भुजाओं वाली बतलाना चाहिये। ऊपर के दो हाथों में कमल-पुष्प धारण किये तथा निचले दो में से एक अभय और दूसरा वरद मुद्रा में दिखलाना चाहिये।

वीरलक्ष्मीरिति ख्याता वरदाभय हस्तिनी।
ऊर्ध्व पद्मद्वयौ हस्तौ तथा पद्मासने स्थिता।।
- कल्याण, १९८७, शक्ति उपासना अंक, पृ. ३२)

(६) द्विभुजा वीर-लक्ष्मी

द्विभुजा वीर-लक्ष्मी के स्वरूप का अंकन करते समय उनके दो हाथ ही बताने चाहिये। एक हाथ अभय और दूसरा वरद मुद्रा में। इस स्वरूप में देवी की जाँघें कमल-दल के आकार जैसी बनानी चाहिये।

दक्षिणे त्वभयं बिद्धि ह्यत्तरे वरदं तथा।
उरू पद्मदलाकारौ वीरश्री मूर्ति लक्षणम्।।
- कल्याण-१९८७, शक्ति उपासना अंक, पृ. ३३

(७) अष्ट भुजा वीर-लक्ष्मी

अष्ट भुजा वीर-लक्ष्मी के स्वरूप का अंकन करते समय देवी के आठ हाथ दिखलाने चाहिये तथा उन्हें छह हाथों में (१) पाश, (२) अंकुश, (३) अक्ष-सूत्र, (४) गदा, (५) कमल-पुष्प तथा (६) पात्र धारण किये तथा बाकी दो हाथ (७) अभय और (८) वरद मुद्रा में।

पाशांकुशाक्षसूत्र वराभय गदापद्म पात्र हस्ता कार्या।

- कल्याण-१९८७, शक्ति उपासना अंक, पृ. ३३

(८) प्रसन्न-लक्ष्मी

प्रसन्न-लक्ष्मी के ध्यान श्लोक के आधार पर उनके स्वरूप का अंकन करते समय उन्हें सुनहले वस्त्र धारण किये, भगवान विष्णु के वामांक पर विराजमान बतलाना चाहिये तथा उनके चार हाथों में उन्हें बीजापुर, कनक-कलश एवं स्वर्ण-कमल धारण किये बताना चाहिये।

वन्दे लक्ष्मी परशिवमयीं शुद्धजाम्बूनदाभां।
तेजोरूपां कनकवसनां सर्वभूषोज्ज्वलांगीम्।।
बीजापुरं कनक-कलशं हेम पद्मं दधाना -
माद्यां शक्ति सकलजननीं विष्णुवामांक संस्थाम्।।

- कल्याण-१९८७, शक्ति उपासना अंक, पृ. ३३

(९) अन्य स्वरूप

अष्ट-लक्ष्मी के आठ सगुण स्वरूपों के अतिरिक्त भी देवी लक्ष्मी के कई अन्य स्वरूप भी हैं, जिनमें दो स्वरूप — (१) दीप-लक्ष्मी एवं (२) सिद्ध-लक्ष्मी प्रमुख हैं। इन दो स्वरूपों का विवरण निम्नवत है —

(क) दीप-लक्ष्मी

दीप-लक्ष्मी स्वरूप की प्रतिमाओं में देवी के दो हाथ बतलाये जाते हैं और प्रकाश का प्रतीक दीपक हाथों में पकड़े दिखलाया जाता है।

मोहें-जो-दड़ों से प्राप्त कई मिट्टी की मूर्तियों में मस्तक के आभूषण के साथ कनपटी के समीप एक दीपक बना मिलता है। ऐसे अंकनों को देवी के प्रारम्भिक काल

का अंकन भी माना जा सकता है। - (ऑर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, एन्यूल रिपोर्ट-१९१५-१६, फलक ५)

(ख) सिद्ध-लक्ष्मी

तांत्रिक-ग्रंथों में देवी लक्ष्मी के एक भयानक रूप की परिकल्पना की गई है, जिसे 'सिद्ध-लक्ष्मी' कहा गया है। 'तंत्रराज' में इसे एक सौ मुखों वाली, दो सौ भुजाओं वाली एवं प्रत्येक मुख पर तीन नेत्रों वाली बतलाया गया है।

शतशीर्षा त्रिनयनां प्रतिवक्त्रं भयानकाम्।
हस्तद्विशत संयुक्तां स्वसमाकार शक्तिभिः ॥ - (३४/७९)

संभवतः युद्ध में विजय दिलवाने के उद्देश्य से देवी के ऐसे शक्ति सम्पन्न एवं भयंकर स्वरूप की कल्पना की गई है।

(१०) विविध श्रीविग्रहों में अंतर एवं उनकी प्रतीकता

देवी लक्ष्मी के श्रीविग्रह के उक्त विविध स्वरूपों में जो प्रमुख अंतर है, वे इस प्रकार हैं — (१) हाथों की संख्या, (२) नेत्रों की संख्या, (३) देवी के वर्ण की विभिन्नता।

(क) भुजाएँ

किसी भी देवी/देवता की भुजाएँ उसकी व्याप्ति को प्रदर्शित करती हैं। उपरोक्त स्वरूपों में देवी की दो भुजाएँ (द्विभुजा लक्ष्मी एवं द्विभुजा वीरलक्ष्मी), चार भुजाएँ (गजलक्ष्मी, महालक्ष्मी, श्रीदेवी, वीरलक्ष्मी एवं प्रसन्नलक्ष्मी), आठ भुजाएँ (अष्ट-भुजा वीरलक्ष्मी बतलायी गयी) हैं। भुजाओं की संख्या दिशाओं की प्रतीक हैं। अतः देवी की सर्व व्यापकता को प्रतिपादित करने के उद्देश्य से हाथों की संख्या निर्धारित की जाती है। सामान्यतः जब देवी लक्ष्मी को भगवान विष्णु के साथ युगल रूप में बतलाया जाताहै, तब देवी की दो भुजाएँ ही होनी चाहिये, लेकिन देवी की स्वतंत्र प्रतिमा में अनेक भुजाएँ विशेषतया चार दिखलाई जा सकती हैं। दो, चार, आठ के अलावा भी देवी के कई ऐसे स्वरूप परिकल्पित हैं, जैसे सिद्ध-लक्ष्मी, जिसमें देवी की दो सौ भुजाओं का विधान है। उड़ीसा राज्य के महावीर चक (जाजपुर) के मंदिर में देवी की अष्टादश (अठारह) भुजा की प्रतिमा है, लेकिन आठ भुजाओं से अधिक संख्या की भुजाओं की देवी प्रतिमाएँ बहुत कम एवं अपवाद स्वरूप ही हैं।

(ख) नेत्र

देवी लक्ष्मी के महालक्ष्मी स्वरूप एवं कतिपय तांत्रिक स्वरूपों के अतिरिक्त देवी के दो नेत्र ही बतलाये जाते हैं। वैसे भगवान शिव को त्रिनेत्र बतलाया जाता है एवं कतिपय तांत्रिक एवं आभिचारिक कार्यों के लिये किसी आराध्य को तीन नेत्रों वाला कहा जाता है। तीन की संख्या हिन्दू धार्मिक मान्यताओं में विशेष महत्त्व की संख्या है; यथा त्रिशक्ति (ज्ञान, क्रिया, इच्छा), त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम), त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) एवं त्रिलोक (भूः, भुवः, स्वः)। देवी के त्रिनेत्र देवी की त्रिशक्ति एवं त्रि-गुण आदि के प्रतीक हैं।

(ग) वर्ण

देवी-देवताओं के वर्ण उनके निहित गुणों, विशिष्ट कार्यों और उच्च आदर्शों को अभिव्यक्त करते हैं। किसी देवी-देवता का रंग एक न होकर कई रंग होते हैं। देवी लक्ष्मी के भी कई वर्ण विभिन्न ध्यान-श्लोकों में प्रतिपादित किये गये हैं, लेकिन अधिकांश ध्यान-श्लोकों में स्वर्णिम (सुनहला ललाई लिये तप्त कांचन वर्ण) माना गया है। इसके अतिरिक्त पीत, श्वेत एवं श्याम वर्ण के भी उल्लेख मिलते हैं।

(i) स्वर्णिम (सुनहला) वर्ण

देवी लक्ष्मी विषयक प्राचीनतम सूक्त 'श्रीसूक्त' के प्रारम्भ में ही देवी लक्ष्मी को 'हरिण्य वर्णा' (सोने के जैसे रंगवाली) कहा गया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण (प्रकृति खंड, ३९/११) के देवी के एक ध्यान श्लोक में देवी के वर्ण के संदर्भ में 'प्रतप्त कांचन निभां शोभां' अर्थात् उनके अंग की कान्ति तपाये हुए स्वर्ण के समान है। ऐसा ही वर्ण देवी भागवत (९/४२/९) के ध्यान श्लोक में है। अग्नि पुराण (३०८/१३) में देवी का वर्णन करते हुए उन्हें 'चतुभुजां सुवर्णाभां' कहा गया है। मत्स्य पुराण के अ. २६१ में देवी की प्रतिमा संबंधी विवरण में कहा गया है कि मेखला धारण किये 'तप्तकांचन सम प्रभा' (२६१/४४)। इसी प्रकार सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद (१/३८), तंत्रसार (२२०) एवं अंशुभद्भेदागम (४९वाँ पटल) में देवी का वर्ण सुनहला कथित है।

(ii) पिंगल वर्ण

'श्रीसूक्त' के मंत्र संख्या १३ में देवी लक्ष्मी का वर्ण 'पिंगलां' अर्थात् हल्दी के रंग जैसा पीला रंग। यह वसंती रंग है, जो मन को प्रफुल्लित करता है एवं यह रंग ज्ञान,

विद्या एवं विवेक का प्रतीक है। धान/गेहूँ की पकी हुई बालियों का रंग भी पिंगल है, अतः पिंगल वर्ण देवी के धान्य लक्ष्मी स्वरूप का द्योतक है। किंचित लालिमा युक्त पीला रंग भी सुनहले जैसा ही प्रतीत होता है।

सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद के एक ध्यान श्लोक में देवी के वर्ण को 'रजः पुंज वर्णा' अर्थात् कमल पराग की राशि के समान पीत वर्ण वाली कहा गया है।

(iii) श्वेत

ब्रह्म वैवर्त पुराण (गणपति खंड, २२/२१) में देवी के वर्ण का उल्लेख करते हुए उन्हें 'श्वेत चम्पक वर्णाभां' अर्थात् जिनके शरीर की आभा श्वेत चम्पा के पुष्प सदृश्य है, कहा गया है। इसी प्रकार काली विलास तंत्र (२०/२३) में उल्लिखित ध्यान श्लोक में देवी को शुक्लाम्बर परीधानां सिन्दूर तिलकोज्ज्वलाम्' कहा गया है।

वैसे तो सभी वर्ण सूर्य की किरणों के प्रभाव से बनते हैं, परन्तु श्वेत रंग तो वस्तुतः सात रंगों का मिश्रण है। सूर्य किरण का विश्लेषण करने पर ये सात रंग स्पष्टतया दिखलाई देते हैं। श्वेत रंग पावनता, शुचिता एवं शांति का द्योतक है तथा यह रंग मानसिक, बौद्धिक एवं नैतिक स्वच्छता का बोधक है। त्रिगुणात्मक प्रकृति का एक गुण 'सत्व' है, जो श्वेत वर्ण का माना जाता है एवं जो सात्विकता का प्रतीक है एवं देवी के ज्योतिर्मय परब्रह्म स्वरूप का सूचक है।

(iv) श्याम

त्रिगुणात्मक प्रकृति के सत्त्व को श्वेत, रज को लाल एवं तम को काला माना जाता है। ये तीनों गुण जब सम प्रमाण में मिलते हैं, तब उनका रंग काला रहता है। दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री को प्रकृति के पाँच रूप यानि पंचविध प्रकृति माना गया है। देवी लक्ष्मी प्रकृति के पाँच रूपों में से ही एक है, अतः कहीं-कहीं उनका वर्ण श्याम (काला) माना गया है और उन्हें 'श्यामा' कहा गया है। 'श्यामा' शब्द तारुण्य का द्योतक है और देवी लक्ष्मी के नवयौवन एवं सौंदर्य को सूचित करता है।

देवी लक्ष्मी के उपरोक्त वर्णों में से सर्वाधिक लोकप्रसिद्ध वर्ण 'तप्त कांचन' (लालिमा युक्त तपाये गये सोने जैसा) है, जिसमें रक्तिम या लाल वर्ण का भी समावेश किया जा सकता है। हिन्दू धर्म में लाल रंग का सर्वाधिक महत्त्व है। अधिकांश मंगल-कार्यों में इसका उपयोग किया जाता है। लाल रंग धन, सम्पत्ति, समृद्धि एवं शुभ-लाभ

को व्यक्त करता है। देवी लक्ष्मी का स्वर्णिम रक्ताभ वर्ण समृद्धि एवं सौभाग्य आदि का सूचक है।

(v) वामन पुराण में वर्णित चार वर्ण की लक्ष्मियाँ

दैत्यराज बलि के धर्माचरण एवं राज्य की सुव्यवस्था से प्रभावित होकर जब त्रैलोक्य लक्ष्मी उनके सम्मुख उपस्थित हुई, तब इन्द्र की लक्ष्मी को उपस्थित देखकर उन्होंने उनके आने का कारण पूछा। कमल की माला से अलंकृत लक्ष्मी ने कहा कि अमित शक्तिशाली चक्र और गदा को धारण करने वाले देव विष्णु ने इन्द्र को छोड़ दिया है, अतः मैं यहाँ आपके पास आई हूँ। त्रैलोक्य लक्ष्मी ने आगे कहा कि भगवान विष्णु ने रूप से सम्पन्न चार वर्ण की चार युवतियों की सृष्टि की है एवं उन चारों का परिचय राजा बलि से करवाया। वामन पुराण के अ. ७५ में राजा बलि और त्रैलोक्य लक्ष्मी का संवाद एवं चार वर्ण की चार लक्ष्मियों का विवरण वर्णित है। इन लक्ष्मियों का विवरण संक्षेप में इस प्रकार है

(१) श्वेताम्बरी

श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्प, श्वेत हाथी पर विराजमान श्वेताम्बरी सात्त्विक शक्ति सरस्वती के नाम से जानी जाती है और ब्रह्मा के पास रहती है।

श्वेताम्बरधरा चैव श्वेतस्रगनुलेपना।
श्वेत वृन्दारकारूढा सत्त्वाढ्या श्वेत विग्रहा।।

(२) रक्ताम्बरी

लाल वस्त्र, लाल पुष्प, लाल अश्व पर विराजमान रक्ताम्बरी राजसी शक्ति 'जयश्री' के नाम से जानी जाती है। वह इन्द्र और पृथ्वी के राजाओं के पास रहती है।

रक्ताम्बरधरा चान्या रक्तस्रगनुलेपना।
रक्तवाजिसमारूढा रक्तांगी राजसी हि सा।।

(३) पीताम्बरी

स्वर्ण के रथ में विराजमान पीताम्बरी तामसी शक्ति लक्ष्मी नाम से अभिहित की जाती है और यह प्रजापति, शुक्र एवं वैश्यों के पास रहती है।

पीताम्बरा पीतवर्ण पीतमाल्यानुलेपना।
सौवर्ण स्यन्दन चरा तामसं गुणमाश्रिता।।

(४) नीलाम्बरी

नील वृषभ पर विराजमान नीलाम्बरी त्रिगुणात्मक देवी श्री देवी के नाम से प्रसिद्ध है और यह दैत्यों एवं शूद्रों के पास रहती है।

नीलाम्बरा नीलमाल्या नीलगंधानुलेपना।
नील वृष समारूढा त्रिगुणा सा प्रकीर्तिता।। - (अ. ७५/१७-२६)

(११) देवी लक्ष्मी के हाथों की मुद्राएँ

देवी लक्ष्मी के हाथों की मुद्राएँ प्रायः दो प्रकार की बतलाई जाती है। एक है वरद और दूसरी अभय।

(अ) वरद

वरद मुद्रा में बायें हाथ की हथेली सामने दिखलाई देती है तथा अंगुलियाँ नीचे की ओर झुकी रहती हैं।

(आ) अभय

अभय मुद्रा का अर्थ है सुरक्षा प्रदान करना। इस मुद्रा में दाहिनी हथेली खुली रहती है और अंगलियाँ थोड़ी ऊपर की ओर उठी रहती है। कुछ अंकनों में दाहिने हाथ से मुद्राएँ बरसती भी दिखलायी जाती हैं।

●

देवी लक्ष्मी की प्रिय वस्तुएँ एवं चिन्हक आदि

देवी लक्ष्मी के सगुण स्वरूपों, उनके श्रीविग्रहों एवं उनके विविध प्रकार के अंकनों में देवी के हाथों की अभय और वरद मुद्राओं के अतिरिक्त जिन वस्तुओं को उनके हाथों में धारण की हुई बतलायी जाती है, वे सभी संकेत-चिन्ह प्रतीकात्मक हैं एवं उनमें गूढ़ रहस्य निहित हैं। वराहमिहिर के मतानुसार जिस देवी को जिस देवता के साथ सम्बद्ध किया जाय, उसे उस देवता के अनुरूप विशिष्टताओं से समन्वित किया जाना चाहिये। — (इंडिया एज सीन इन बृहत संहिता ऑफ वराहमिहिर, अजय मित्रशास्त्री)। देवी लक्ष्मी की सम्बद्धता भगवान विष्णु से है, अतः भगवान विष्णु के चिन्हक यथा शंख, चक्र, गदा एवं पद्म देवी लक्ष्मी के भी चिन्हक हैं। इनके अतिरिक्त देवी लक्ष्मी के अन्य चिन्हक भी हैं।

देवी लक्ष्मी की प्रिय वस्तुएँ और चिन्हक इस प्रकार हैं —

(i) देवी का प्रिय पुष्प — कमल

(ii) देवी के प्रिय फल — (१) बिल्व-फल और (२) मातुलिंग (बिजौरा / नींबू / अनार)।

(iii) देवी के प्रिय आयुध (अस्त्र-शस्त्र) — (१) पाश, (२) अंकुश, (३) गदा, (४) चक्र, (५) ढाल, (६) असि, (७) खट्वांग और (८) त्रिशूल।

(iv) देवी के प्रिय वाद्य-यंत्र — (१) शंख, (२) डमरू और (३) वीणा

(v) देवी की अन्य प्रिय वस्तुएँ — (१) अक्षमाला (जपमाला), (२) अमृत-घट (अमृत-भाण्ड), (३) पुस्तक एवं (४) धन-भाण्ड या थैली।

उपरोक्त देवी द्वारा धारणीय प्रिय वस्तुओं का परिचय एवं उनकी प्रतीकता संक्षेप में निम्नशः है —

(i) देवी का प्रिय पुष्प — कमल

कमल-पुष्प और देवी लक्ष्मी का संबंध न केवल आत्मीय और घनिष्ठ है, अपितु व्यापक और सार्थक भी है। खिला हुआ कमल-पुष्प देवी का आसन है तथा हाथ में धारण किया हुआ कमल-पुष्प उनका लीला-पुष्प है। कमल से देवी की अति घनिष्ठता एवं आत्मीयता के कारण ही देवी की एक संज्ञा हो गई है — 'कमला' तथा कमल के पर्यायवाची शब्द 'पद्म' से 'पद्मा' और 'पद्मिनी'। देवी संबंधी वैदिक सूक्त 'श्रीसूक्त' में कथित देवी के अनेक नाम एवं विशेषण कमल (पद्म) पर आधारित हैं, जैसे 'पद्मानना' (कमल जैसे मुख वाली), 'पद्माक्षी' (कमल जैसे नेत्रों वाली) एवं 'पद्म वर्णा' (कमल जैसे रंग वाली)। पूर्वकारणागम एवं अंशुमद्भेदागम जैसे प्रतिमा-विधान संबंधी शास्त्रीय ग्रंथों में देवी के ध्यान का वर्णन करते हुए, उन्हें 'पद्मपत्रासनासीना' एवं 'पद्महस्तिनी' कहा गया है।

निम्नशः ध्यान श्लोक में तो देवी लक्ष्मी को पूर्णतया पद्ममय ही कर दिया है —

सहस्रदलपद्मस्थां पद्मनाभप्रियां सतीम्।
पद्मालयां पद्मवक्त्रां पद्मपत्राभलोचनाम्।
पद्मपुष्पप्रियां पद्मपुष्पतल्पविशायिनीम्।
पद्मिनीं पद्महस्तां च पद्ममालाविभूषिताम्।।
पद्मभूषणभूषढ्यां पद्मशोभाविवर्धिनीम्।
पद्मकाननं पश्यन्तीं सस्मितां तां भजे मुदा।।

- श्री ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, गणपति खंड, अ. ३८/४५-४९

भावार्थ : सहस्रदल-कमल जिनका आसन है, जो भगवान पद्मनाभ की सती-साध्वी प्रियतमा हैं, कमल जिनका घर है, जिनका मुख कमल के सदृश और नेत्र कमल-पत्र की-सी आभा वाले हैं, कमल का फूल जिन्हें अधिक प्रिय है, जो कमल-पुष्प की शय्या पर शयन करती हैं, जिनके हाथ में कमल शोभा पाता है, जो कमल-पुष्पों की

माला से विभूषित है, कमलों के आभूषण जिनकी शोभा बढ़ाते हैं, जो स्वयं कमलों की शोभा की वृद्धि करने वाली हैं और मुस्कराती हुई जो कमल-वन की ओर निहार रही हैं, उन पद्मिनी देवी का मैं आनंदपूर्वक भजन करता हूँ।

'समुद्र-मंथन' की पुरा-कथा के अनुसार सागर के मंथन से जो वस्तुएँ प्राप्त हुईं, उनमें एक देवी लक्ष्मी भी है। कमल की उत्पत्ति भी जल से ही होती है; अतः देवी लक्ष्मी एवं कमल-पुष्प दोनों की जन्म-स्थली एक ही है। दूसरे देवी लक्ष्मी भगवान विष्णु की पत्नी हैं और भगवान विष्णु का निवास क्षीरसागर में है, जो कमल की भी जन्मस्थली है। तीसरे ब्रह्माजी ने इस धरती की सृष्टि कमल-पुष्प पर बैठकर की है और यह धरती भी लक्ष्मी का ही रूप मानी जाती हैं, और इसीलिये देवी लक्ष्मी को 'भू-लक्ष्मी' भी कहा जाता है। इस रूप में भी देवी लक्ष्मी की उत्पत्ति परोक्षतः कमल-पुष्प से ही हुई मानी जाती है।

कमल कीचड़ में पैदा होता है। जल में रहकर भी इसके पत्तों पर जल नहीं टिकता। जल के भीतर कीचड़ से उत्पन्न होने पर भी इसका पुष्प जल के ऊपर बना रहता है। कमल-पुष्प का खिलना और मुँदना सूर्योदय और सूर्यास्त के साथ संबंधित है। कमल-पुष्प की सुरभि एवं सुंदरता अनुपमेय है। ऐसे ही गुण-धर्म के कारण हमारा राष्टीय पुष्प कमल प्रतीकमयी भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में एक सार्थक एवं भव्य प्रतीक है। यह एक ऐसा प्रतीक है, जो जीवन के चारों पुरुषार्थों यथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रतीकत्व वहन कर सकता है। देवी श्रीलक्ष्मी के सदृश कमल-पुष्प भी सुख, सौभाग्य, सौंदर्य एवं संकर्षण का प्रतीक है। इस रूप में दोनों में स्पष्टतः सादृश्यता है।

देवी लक्ष्मी के हाथ में कमल-पुष्प धन, धान्य, वैभव एवं सम्पत्ति का प्रतीक है। देवी लक्ष्मी का आसन है खिला हुआ कमल-पुष्प। विष्णु पुराण के अनुसार जब देवी लक्ष्मी सागर से प्रकट हुई, वे खिले हुए कमल-पुष्प पर बैठी थी — 'ततः स्फुरत् कान्तिमती विकासिकमले स्थिता। श्रीर्देवी पयसस्तस्मादुद्भूता धृत-पंकजा।। - (१/९-१००)

देवी लक्ष्मी का कमल-पुष्प के आसन या पीठिका पर स्थापित करना उनकी अलौकिकता, दिव्यता, पवित्रता एवं संसार से ऊपर उठे रहने का प्रतीक है। कमल-पुष्प निर्मलता के साथ-साथ अलिप्तता का भी प्रतीक है। अनेक धार्मिक ग्रन्थों में कमल-पुष्प को मानव-जीवन का आदर्श माना गया है। संसार में रहते हुए, सांसारिक विषय-

वासनाओं से व्यक्ति को उसी प्रकार अलिप्त कहना चाहिये, जिस प्रकार जल में रहते हुए भी जल से कमल-पुष्प अलिप्त रहता है। श्रीमद् भगवत गीता में यही भावन प्रतिपादित करते हुए कहा गया है — 'लिप्यत न सापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा'। - (५/१०)

देवी लक्ष्मी को कमल-पुष्प के साथ जोड़ने के पीछे हमारे ऋषि-मुनियों की प्रमुख भावना यही है कि वैभव और सम्पन्नता प्राप्त होने पर हम उनमें आसक्त न रहें, अपितु कमल-पुष्प जैसे अलिप्त रहें।

(ii) देवी के प्रिय फल

(क) **बिल्व-फल** : बिल्व-फल (बेल) देवी लक्ष्मी का प्रिय फल है तथा इसे श्री फल भी कहते हैं। आयुर्वेद की दृष्टि से बिल्व-वृक्ष के पत्ते और फल स्वास्थ्य प्रद होते हैं तथा मानसिक और शारीरिक रोगों को दूर करने की क्षमता रखते हैं।

श्री सूक्त के मंत्र संख्या ६ में देवी लक्ष्मी की स्तुति करते हुए कहा गया है कि आप की कृपा से वृक्षों में श्रेष्ठ मंगलमय बिल्व वृक्ष उत्पन्न हुआ तथा देवी से अनुरोध किया गया है, उसके फल हमारी बाहरी और भीतरी दरिद्रता (अलक्ष्मी) को दूर करे। (तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः)।

बिल्व वृक्ष न केवल देवी लक्ष्मी का प्रिय वृक्ष है अपितु बिल्ब-पत्र भगवान शिव की पूजा-अर्चना के लिये एक आवश्यक उपादान है। स्कंद पुराण में वर्णित कथा के अनुसार जब भगवान विष्णु शिव-लिंग के रूप में महादेवजी की पूजा कर रहे थे तब अचानक पूजार्थ बिल्ब-पत्र कम पड़ गये, अतः विष्णु पत्नी लक्ष्मी ने अपने तप के बल से बिल्ब-वृक्ष उत्पन्न किया, जिसके पत्तों से भगवान विष्णु ने महादेवजी की पूजा पूरी की।

वामन पुराण के अनुसार बिल्ब-वृक्ष की उत्पत्ति देवी लक्ष्मी के हाथ से हुई। (बिल्बो लक्ष्मयाः करेऽभवत - १७/८) दूसरी एक पुराकथा ऐसी भी है कि समुद्र-मंथन के समय देवों और दैत्यों को आपस में अमृत के लिये लड़ते देखकर, देवी लक्ष्मी ने समीपस्थ एक बिल्ब वृक्ष पर विश्रान्ति ली थी। अतः बिल्ब-वृक्ष को श्री वृक्ष और बिल्ब-फल को श्री फल कहते हैं।

वराह पुराण (अ.७९) में श्री-वन या लक्ष्मी-वन का वर्णन करते हुए कहा गया है बिल्ब-वृक्ष के नीचे लक्ष्मीजी सदा विराजती हैं। ऐसा ही उल्लेख वायु पुराण के अध्याय ३७ में भी है।

बृहद्धर्म पुराण में बिल्व विषयक विवरण विस्तारपूर्वक दिया गया है। इस पुराण में वर्णित एक पुराकथा इस प्रकार है —

देवी लक्ष्मी भगवान शिव की पूजा-अर्चना में उन्हें कमल-पुष्प अर्पण करती थीं। संयोग से एक दिन दो पुष्पों के कम होने पर देवी ने अपने वाम-स्तन को काट कर कमल-पुष्प के स्थान पर शिव-लिंग पर अर्पित कर दिया और जैसे ही वे दक्षिण-स्तन को भी काटने के लिये उद्यत हुई, भगवान शिव ने प्रकट होकर देवी को ऐसा करने से रोका और वाम-स्तन को पुनः पैदा कर दिया तथा शिव-लिंग पर चढ़ाये गये वाम-स्तन से पृथ्वी पर लक्ष्मी-स्वरूप श्री फल नामक वृक्ष के उत्पन्न होने का वर दिया। (सो अस्तु वृक्षः क्षितौ पुण्या नाम्ना श्रीफल इत्युत - १०/६५)

उक्त कथा के अनुसार बिल्व-वृक्ष देवी लक्ष्मी का ही वृक्ष-रूप है।

बिल्वोपनिषद् नामक एक बिल्व-पत्र का स्तुतिपरक उपनिषद भी है, जिसमें कहा गया है कि बिल्व-पत्र के बिना पूजा व्यर्थ हो जाती है। (बिल्व-पत्र बिना पूजा व्यर्था भवति सर्वदा) पीपल वृक्ष की भाँति बिल्व-वृक्ष की पूजा होती है। भविष्योत्तर पुराण में वर्णित श्री वृक्ष-नवमी-व्रत-कथा के अनुसार भाद्रपद शुक्ल ९ (नवमी) के दिन बिल्व-वृक्ष की पूजा करनी चाहिये।

देवी लक्ष्मी के हाथ में बिल्व फल इस बात का द्योतक है कि देवी लक्ष्मी की कृपा से ही मनुष्य को अपने परिश्रम का सुफल मिलता है।

(ख) मातुलिंग (बिजौरा, निंबू, अनार) : मातुलिंग एक ऐसा फल है, जिसमें असंख्य बीज होते हैं, जैसे बिजौरा, निंबू या अनार। आध्यात्मिक दृष्टि से देवी द्वारा एक हाथ में मातुलिंग को धारण करना, इस बात का सूचक है कि देवी असंख्य ब्रह्माण्डों को धारण करने की परम शक्ति से सम्पन्न है।

(III) देवी के प्रिय आयुध (अस्त्र-शस्त्र)

वैसे तो देवी के सभी आयुध स्थूल रूप से असुरों के संहारार्थ देवी धारण करती है, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से ये सभी मनुष्य के विभिन्न मनोविकारों के चिन्हक या प्रतीक हैं जिनको नियंत्रण में रखकर ही मनुष्य भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। इन आयुधों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

(क) पाश : पाश का शाब्दिक अर्थ है बंधन या फंदा। रस्सी या तार आदि का ऐसा फंदा जिसके बीच में पड़ने से प्राणी बँध जाता है और बंधन कसने से प्रायः मर भी जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से पाश को राग या ईर्ष्या या मोह माना गया है। (रागः पाश-भावनोपनिषद २३)

(ख) अंकुश : अस्त्र के रूप में अंकुश छोटा दो मुँहा भाला होता है, जिससे हाथी को चलाया और वश में रखा जाता है। इस शब्द का एक अर्थ यह भी है कि ऐसी वस्तु या कार्य जो किसी को रोकने या दबाव में रखने के लिये किया जाय। आध्यात्मिक दृष्टि से अंकुश द्वेष माना गया है। द्वेषो अंकुशः - भावनोपनिषद २४)

वामकेश्वर तंत्र में पाश और अंकुश को पराशक्ति रूपिणी देवी लक्ष्मी की इच्छा-शक्ति का प्रतीक कहा गया है। (इच्छा शक्ति मयं पाश कुंश ज्ञान स्वरूपिणीम्)

(ग) गदा : गदा एक प्राचीन अस्त्र है, जिसमें एक डंडे में बड़ा लट्टू लगा रहता था। इसका प्रयोग नजदीक से शत्रु पर प्रहार करने के लिये किया जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से गदा को अहंकार का प्रतीक माना जाता है। गदा पकड़े देवी का हाथ प्रतीक है कि देवी अहंकार को अपनी मुट्ठी में रखती है।

(घ) चक्र : चक्र एक वैष्णव अस्त्र है। प्रतिमाओं में इसे दो प्रकार से बतलाया जाता है। प्रथम प्रकार में इसे गाड़ी के पहिये जैसा आरा एवं नाभि सहित और जिसे किनारे से पकड़ा जाता है एवं दूसरे प्रकार में चक्र को अलंकृत किया जाता है और आरों को कमल-दल जैसा बनाया जाता है, जिससे इसका भीतरी भाग खिले हुए कमल-पुष्प सदृश दिखलाई दे। इस पर पट्टी बांधकर, पट्टी को हाथ में पकड़ा जाता है या पहली दो अंगुलियों से पकड़ा जाता है। शत्रु पर वार करने के लिये इसको शत्रु पर फेंका जाता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से चक्र को ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। और यह द्योतक है कि ज्ञान के द्वारा ही अज्ञान का नाश संभव है।

(ङ) ढाल (खेटक) : तलवार आदि का अथवा और किसी प्रकार का वार रोकने का एक प्रसिद्ध उपकरण ढाल है। ढाल को खेटक भी कहते हैं। यह चमड़े या लकड़ी से बनाई जाती है।

आध्यात्मिक दृष्टि से ढाल सुरक्षा की प्रतीक है। देवी के हाथ में ढाल प्रतीक है कि देवी अपने भक्तों की सुरक्षा में सदैव सन्नद्ध रहती है।

(च) असि (तलवार) : धातु निर्मित वार करने का अस्त्र है असि। असि आध्यात्मिक दृष्टि से शौर्य का प्रतीक है तथा देवी असि पकड़े निर्भय रहने का उपदेश देती है।

(छ) खट्वांग : खट्वांग एक विचित्र प्रकार का डंडे जैसा प्राचीन अस्त्र है। बाँह या पैर की हड्डी से इसे बनाया जाता है और ऊपर की ओर मानव कपाल लगाया जाता था।

आध्यात्मिक दृष्टि से यह मानवीय मनोविकार का ही प्रतीक है, जिसे देवी पकड़े है यानि नियंत्रण में रखे हैं।

(ज) त्रिशूल : त्रिशूल एक ऐसा अस्त्र है, जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। यह भगवान शिव का प्रिय अस्त्र है, लेकिन देवी लक्ष्मी के भी कतिपय अंकनों में उन्हें त्रिशूल धारण किये बतलाया गया है। अध्यात्मिक दृष्टि से त्रिशूल ज्ञान-इच्छा-क्रिया - इन तीन शक्तियिों का सूचक है, जो इन शक्तियों की क्रियाशीलता को व्यक्त करता है। अतः इसे समरस की स्थिति का सूचक माना जाता है।

(iv) देवी के प्रिय वाद्य-यंत्र

(क) शंख : शंख एक प्रकार का बड़ा घोंघा है, जिसका कोष बहुत पवित्र माना जाता है तथा जिसे देवताओं के समक्ष बजाया जाता है।

यह भगवान विष्णु का भी एक आयुध है, जिसका नाम पांचजन्य है और युद्ध में इसकी ध्वनि से शत्रु को भयभीत करने के लिये वे इसे प्रयुक्त करते थे।

(ख) डमरू : चमड़ा मढ़ा हुआ एक छोटा बाजा, जो बीच में पतला और दोनों सिरों पर मोटा होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से इस वाद्य यंत्र को नाद-ब्रह्म का प्रतीक माना जाता है। यह देवी का बह्म से तादाम्य सूचित करता है एवं आराधक को सिद्धि और निर्वाण की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देता है।

(ग) वीणा : वीणा एक तारों का वाद्य है तथा यह देवी सरस्वती का प्रिय वाद्य यंत्र है, परन्तु देवी लक्ष्मी के अंकनों के वर्णन में देवी के हाथों में वीणा दिखलाई जाती है। आध्यात्मिक दृष्टि से वीणा भी नाद-ब्रह्म का ही प्रतीक है, जो देवी की ब्रह्म से एकरूपता व्यक्त करती हैं एवं आराधक को सिद्धि एवं निर्वाण की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती है।

(v) देवी की अन्य प्रिय वस्तुएँ

(क) अक्षमाला (जपमाला) : देवी लक्ष्मी के कतिपय ध्यान श्लोकों में उन्हें अक्ष-सूत्र या अक्षमाला धारण करने वाली बतलाया गया है - (शारदातिलक - ६/५३)। आध्यात्मिक दृष्टि से माला मन की एकाग्रता की सूचक है, क्योंकि किसी भी प्रकार की सिद्धि या ज्ञान की प्राप्ति मन की एकाग्रता के बिना प्राप्त नहीं हो सकती।

(ख) अमृत-घट (पूर्ण कलश) : जल से पूर्ण कलश या घट सम्पन्नता एवं समृद्धि प्रदान करने का सूचक है। जल को अमृत भी कहते हैं तथा जल को आध्यात्मिक दृष्टि से धर्म का तरल रूप माना गया है। अतः जल से भरा घट या कलश धर्माचरण करने का संकेत देता है और सद्कार्यों की ओर प्रवृत्त होने लिये प्रेरणा-प्रद है।

(ग) पुस्तक (पोथी) : पुस्तक देवी सरस्वती की प्रिय वस्तु है, लेकिन कतिपय ध्यान-श्लोकों में देवी लक्ष्मी को पुस्तक धारिणी कहा गया है। (शारदा तिलक ६/५३) आध्यात्मिक दृष्टि से पुस्तक वेद या ज्ञान का प्रतीक है। देवी लक्ष्मी के हाथ में पुस्तक ज्ञान को प्राप्त करने की प्रेरणा की सूचक है।

(घ) धन भाण्ड या थैली : धन भाण्ड या थैली ऐसी वस्तुएँ है, जिनमें मुद्राएँ रखी जाती है। देवी लक्ष्मी के हाथ में धन भाण्ड या थैली तथा उनसे गिरती हुई मुद्राएँ कई अंकनों में बतलायी गई हैं। (जे. एलेन-कैट लाग आफ दि कोइन्स-फलक १४) कतिपय अंकनों में यक्ष को धन भाण्ड से मुद्रा गिराते या थैली पकड़े बतलाया गया है।

ऐसे अंकन देवी के सम्पत्ति प्रदात्री रूप के द्योतक हैं।

(vi) देवी लक्ष्मी के वाहन

प्रत्येक देवी-देवता के स्वयं के वाहन हैं, जिन पर आरूढ़ हो, वे विचरण करते रहते हैं। ये वाहन वस्तुतः संबंधित देवी-देवता के स्वभाव एवं गुण की विशेषता के सूचक हैं। भगवान विष्णु का प्रमुख वाहन गरुड़ है, तो श्री गणेश का मूषक एवं भगवती सरस्वती का हंस। वैसे तो किसी भी देवी-देवता का वाहन उनका स्वयं का देवत्व या तेज ही होता है। देवी या देवता को उनके स्वयं के देवत्व या तेज के अतिरिक्त कौन वहन कर सकता? अतः देवी-देवताओं के ये वाहन प्रतीकात्मक ही हैं।

सामान्यतः देवी लक्ष्मी का वाहन उल्लू माना जाता है, लेकिन देवी के उल्लू के अतिरिक्त अन्य वाहन हैं—(१) गज, (२) सिंह, (३) गरुड़ एवं (४) हिरण तथा प्रिय पशु-पक्षी हैं— (१) हंस, (२) मकर, (३) कच्छप।

(i) उल्लू : 'उल्लू' का संस्कृत पर्यायवाची शब्द 'उलूक' है। यह पक्षी दिन में सोता है और रात को जागता है। श्रीमद्‌भगवत गीता के अनुसार इसकी तुलना 'स्थितपज्ञ' के साथ की जा सकती है — (या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। - २/६९)। इसके शरीर का तापमान वातावरण के अनुसार घटता-बढ़ता नहीं है। उल्लू गहन अंधकार में भी मनुष्य की आँखों की तुलना में सौ गुणा अधिक आसानी से देख सकता है। यह पक्षी अपना सिर चक्र की भाँति गोल-गोल घुमा सकता है। इस पक्षी का रंग मटमैला है और चेहरा भयावह। इसकी आवाज कर्कश एवं डरावनी होती है। ऐसे भद्दे, कुरूप एवं कर्कश ध्वनि वाले पक्षी को नवयौवन एवं सौंदर्य की देवी लक्ष्मी ने अपना वाहन स्वीकार किया है। यह बात सरसरीतौर पर कुछ अजीब-सी लगती है; परन्तु इसमें गूढ़ार्थ निहित है।

उल्लू (उलूक) को कुछ लोग शुभ मानते हैं, तो कुछ अशुभ। इस पक्षी को शकुन और अपशकुन दोनों का सूचक माना जाता है।

प्राचीन युनानी कथाओं में उल्लू को एक बुद्धिमान प्राणी माना गया है। प्राचीन लोककथाओं में से एक कथा में कथित है कि युनान का एक सम्राट एक बार अपने पालतू उल्लू को लेकर शिकार पर निकला और मार्ग में विश्राम करने के उद्देश्य से एक वृक्ष के नीचे रुक गया। उसका पालतू उल्लू समीपस्थ एक पाषाण खंड पर बैठ गया और बार-बार उस पत्थर पर चोंच मार-मार कर सम्राट का ध्यान उधर खींचने लगा। उल्लू के संकेत को समझकर सम्राट ने अपने सेवकों को पत्थर के नीचे खुदाई करने को कहा। जब वहाँ खुदाई की गई, वहाँ से भारी मात्रा में सोने की मोहरें मिलीं।

प्राचीन ग्रीक देवी पल्लस एथेने (Pallas Athene), जो कृषि संरक्षिका एवं हल की शोध करने वाली मानी जाती है, उसका वाहन भी उलूक है। इस प्रकार उलूक धन-सम्पत्ति से जुड़ा हुआ पक्षी है।

हमारे समाज में भी उल्लू के प्रति कई धारणाएँ एवं अंध-विश्वास प्रचलित हैं। इनमें से कुछ निम्नवत हैं —

(i) दीपावली के दिन उल्लू का दर्शन होना भाग्योदय का प्रतीक माना जाता है।

(ii) अगर उल्लू उड़ते समय किसी गर्भवती महिला को छूते हुए गुजर जाय, तो इसे उस महिला को पुत्री होने का संकेत माना जाता है।

(iii) अगर उड़ते समय उल्लू अपने आप ही किसी गंभीर रोगी को छूले, तो ऐसा माना जाता है कि वह रोगी बहुत जल्द ठीक हो जायेगा।

(iv) रात्रि में उल्लू के दर्शन होने पर धन की हानि होती है।

(v) प्रातःकाल में उल्लू की आवाज सुनना मंगलकारी माना जाता है।

उपरोक्त धारणाओं और अंध-विश्वास के कारण कुछ लोग इस लक्ष्मी वाहन को शुभ मानते हैं। पंचतंत्र में उल्लू को नीति निपुण एवं चतुर कहा गया है। तांत्रिक दृष्टि से धन प्राप्ति की मंत्र साधना में इस पक्षी का सहयोग साधक लेते हैं एवं इसकी कृपा प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। संभवतः अपने इन्हीं गुणों के कारण देवी लक्ष्मी ने इसे स्वयं का वाहन स्वीकार किया।

तैत्तिरीय आरण्यक (४/७०) में उल्लू को 'हिरण्याक्ष' (सुनहली) आँखों वाला और 'अयोमुख' (लोहे के रंग का मुँह वाला) एवं दानवों का दूत कहा गया है। मार्कण्डेय पुराण में उल्लू को निर्ऋति (अलक्ष्मी) का वाहन कहा गया है। (४८/६९)। अथर्ववेद के 'पाप-लक्षण-नाशन सूक्त' (७य११५) में लक्ष्मी के दो रूप बतलाये हैं - एक 'पुण्या लक्ष्मी' एवं दूसरा 'पापिष्ठा लक्ष्मी'। पापिष्ठा लक्ष्मी को 'निर्ऋति' कहा गया है, जो विनाश और मृत्यु की देवी मानी गई है। दुर्भाग्य एवं मृत्यु की देवी निर्ऋति के वाहन को देवी लक्ष्मी के द्वारा स्वयं का वाहन स्वीकार करना, इस बात का द्योतक है कि देवी लक्ष्मी उस पर अपना नियंत्रण रख सके और उलूक के दुष्प्रभावों से अपने भक्तों की रक्षा कर सके। देवी लक्ष्मी के वाहन उलूक की कई आध्यात्मिक एवं सामाजिक व्याख्याएँ की गई हैं, उनमें से कतिपय व्याखाएँ इस प्रकार हैं —

(i) सम्पत्ति की सुरक्षा सतत एवं सतर्कतापूर्वक की जानी चाहिये।

(ii) सांसारिक ऐश्वर्य बंधन का कारण है, जो इसका स्वेच्छा से वरण करता है, वह पारमार्थिक दृष्टि से उलूक (मूर्ख) है।

(ii) कुछ विद्वानों का मत है कि उल्लू खेती को हानि पहुँचाने वाले गिलहरी एवं चूहे आदि को भक्ष्य बना लेता है, जिससे खेती की रक्षा हो जाती है। चूँकि देवी लक्ष्मी उर्वरता एवं वनस्पति की अधिष्ठात्री है, उन्होंने इसे अपना वाहन स्वीकार किया।

(iii) ज्ञान रूपी प्रकाश को अज्ञान रूपी उलूक नहीं देख सकता है, अतः ऐसे अज्ञान को देवी अपने वश में रखती है।

(ii) गज (हाथी) : सब पशुओं में हाथी में बुद्धि, धैर्य एवं गंभीरता का प्राधान्य है। देवी लक्ष्मी का हाथी से इतना तादात्म्य है कि देवी के एक स्वरूप की अभिधा ही गज-लक्ष्मी है। देवी के प्राचीनतम सूक्त 'श्री सूक्त' में कथित है कि देवी हाथियों की चिंग्घाड़ सुनकर प्रमुदित होती है — (हस्तिनाद प्रमोदिनीम्)। और हाथियों की चिंग्घाड़ से अपनी उपस्थिति की घोषणा करती है — (हस्तिनाद प्रबोधिनीम्)।

समुद्र-मंथन के समय जब देवी लक्ष्मी सागर से उद्भूत हुई, उनका जलाभिषेक सुवर्ण कलशों से दिग्गजों ने किया — (दिग्गजा हेमपात्रस्थमादाय विमलं जलं। स्नापयांचक्रे देवी, सर्व लोक महेश्वरीम्। - विष्णु पुराण, १/९/१०३)। स्कंद पुराण के अनुसार तो समुद्र-मंथन के समय जब देवी समुद्र-तल से ऊपर आईं, वे हाथी पर सवार थी। — (पांडुर गजारूढ़ा, १-१-११-६७)।

हाथी ऐश्वर्य एवं राजसी वैभव का मान्य प्रतीक है, अतः समृद्धि और वैभव की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी से हाथी की वाहन रूप में सम्बद्धता स्वाभाविक है।

(iii) सिंह : सिंह देवी दुर्गा का लोक-प्रसिद्ध वाहन माना जाता है, परन्तु देवी लक्ष्मी के वाहन के रूप में इसका अंकन गुप्त वंशीय राजाओं की मुद्राओं पर मिलता है। वाहन रूप में सिंह धर्म का प्रतीक है। श्री दुर्गा सप्तशती के वैकृतिक रहस्य के अंतर्गत 'सिंहं सम्रगं धर्ममीश्वरम् (मंत्र संख्या ३०) कहा गया है। अतः सिंह वाहना देवी लक्ष्मी इस बात का प्रतीक है कि धर्माचरण से ही देवी की कृपा प्राप्त की जा सकती है।

(iv) गरुड़ : गरुड़ एक पुरा कल्पित पक्षी है। पौराणिक कथाओं के अनुसार गरुड़ दक्ष-कन्या विनता और कश्यप का पुत्र है। इसी कारण गरुड़ का एक पर्यायवाची नाम है - 'वैनतेय'। विनता का अपनी सौत कद्रु से वैमनस्य था, जो सर्पों की माता है। अतः गरुड़ भी सर्पों के शत्रु हैं। गरुड़ का सिर, चोंच एवं पंख पक्षी के है और शेष शरीर मनुष्य का है। इस प्रकार गरुड़ आधा पक्षी और आधा मानव है। गरुड़ को पक्षीराज माना जाता है।

सामान्यतः गरुड़ भगवान विष्णु के वाहन के रूप में लोक-प्रसिद्ध है। भगवान विष्णु की एक उपाधि है — 'गरुड़-ध्वज'। भगवान विष्णु सूर्य के ही सर्व-व्यापी रूप हैं, जो अनंत आकाश के तीव्रता से चक्कर लगाते हैं। अतः उनके लिये एक शक्ति सम्पन्न एवं द्रुतगामी वाहन की आवश्यकता थी। विष्णु वाहन के रूप में गरुड़ की कल्पना इसी का परिणाम है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार जिस देवता का जो वाहन होता है, वह उसकी

शक्ति का भी वाहन हो जाता है — (८५/१३)। इस प्रकार भगवान विष्णु का वाहन गरुड़ भगवान विष्णु की शक्ति/पत्नी का भी वाहन हो गया, जो देवी लक्ष्मी की भगवान विष्णु से घनिष्ठता का द्योतक है।

बसाढ़ से प्राप्त एक कुषाण कालीन मोहर पर देवी लक्ष्मी की आकृति एक नाव पर अंकित है, जिस अंकन में देवी का एक हाथ कटि पर है और दूसरे में कमल है। बायीं ओर एक शंख और गरुड़ अंकित है — (एक्सकेवेशन एट बसाढ़, आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया रिर्पोट १९१३-१४, फलक १३०)।

एलोरा की गुफाओं में एक गुफा में एक ऐसा चित्रांकन है, जिसमें भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी को गरुड़ पर आरूढ़ आकाश में विचरण करते दिखलाया गया है। यह अंकन आठवीं शती का माना जाता है — (आनंद कुमार स्वामी, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, चित्र संख्या १९६)।

गरुड़ एक तेज गति का बुद्धिमान पक्षी है। यह पक्षी सद् प्रवृतियों का प्रतीक है एवं सर्प रूपी असद् प्रवृतियों को यह अपने पंजे में जकड़ लेता है।

(v) हिरण (मृग) : देवी लक्ष्मी संबंधी सूक्त 'श्री सूक्त' में देवी के लिये 'सुवर्ण रजत स्रजाम् हरिणीं' कहा गया है। यह कथन यह सिद्ध करता है कि देवी लक्ष्मी और हिरण की सम्बद्धता श्री सूक्त के रचना काल से है।

ईस्वी सन् पूर्व दूसरी-पहली शती की कुणिन्दराज अमोघ भूति की मुद्राओं पर देवी के वाहन के रूप में हिरण का अंकन है।

मंत्र-शास्त्र में 'मृग' शब्द का एक अर्थ वेद है। इस अर्थ के आधार पर हिरण प्रतीक है वेद का, ज्ञान का एवं हरिण-वाहना देवी प्रतीक है — ज्ञान सम्पन्नता की।

हिरण को वायु का वाहन भी माना जाता है, जो वायु की गतिशीलता का द्योतक है। इस अर्थ में देवी का वाहन हिरण देवी लक्ष्मी की सर्व-व्यापकता एवं गतिशीलता का सूचक है।

उपरोक्त देवी लक्ष्मी के पशु-वाहनों के अतिरिक्त देवी लक्ष्मी का अंकन कतिपय मुद्राओं/मोहरों पर हंस, मकर एवं कच्छप के साथ भी मिले हैं, लेकिन इन अंकनों मेंदेवी इन प्राणी विशेषों पर आरूढ़ नहीं है, अतः हम इन्हें देवी के वाहन न कहकर प्रिय पशु-पक्षी कहेंगे।

(vii) देवी लक्ष्मी के प्रिय पशु-पक्षी

(i) हंस : हंस देवी सरस्वती का सर्वमान्य वाहन है, लेकिन कुछ मुद्राओं पर हंस के साथ देवी लक्ष्मी का अंकन मिला है। उदाहरणार्थ गौड़ाधिपति नरेन्द्रादित्य की स्वर्ण मुद्रा को ले सकते हैं, जिसमें देवी लक्ष्मी खड़ी मुद्रा में है और उनके चरण-तल पर हंस का अंकन है।

(ii) मकर (मगर/घड़ियाल) : मकर गंगा नदी का वाहन माना जाता है। गंगा नदी को वराह पुराण में 'धर्मस्तु द्रव रूपेण' अर्थात् तरल रूप में धर्म कहा गया है। इस प्रकार मकर धर्म का प्रतीक हुआ।

अमरावती (दक्षिण भारत) से प्राप्त एक पाषाण फलक पर उकेरी गई देवी लक्ष्मी की आकृति के सामने एक मकर उत्कीर्ण है — (प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा, पृ. १२६, फलक १४)। इसी प्रकार कौशाम्बी (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त पाषाण फलक पर गज-लक्ष्मी के अंकन के साथ मकर भी उकेरा गया है - (उपरोक्त, पृ. १२४, फलक १०ख)।

(iii) कच्छप : भगवान विष्णु के अवतारों में से एक है कच्छप रूप में भगवान का अवतार, अतः वैष्णव सम्प्रदाय में कच्छप भी एक प्रिय पशु है। नेपाल से प्राप्त एक चित्रित-पट पर 'अर्ध लक्ष्मीनारायण' का अंकन है। इस अंकन में भगवान विष्णु के शरीर के आधे भाग के नीचे गरुड़ एवं देवी लक्ष्मी के शरीर के आधे भाग के नीचे कच्छप अंकित है — (फॉरेन्नर्स इन एन्शियन्ट इंडिया, पृ. ८९)।

●

पांचरात्र संहिताओं में देवी लक्ष्मी

वैष्णव मत

हिन्दू धर्म का वह मत या सम्प्रदाय, जिसमें भगवान विष्णु या इनके अवतारों की उपासना को प्रधानता दी जाती है; उस मत या सम्प्रदाय को वैष्णव मत या सम्प्रदाय कहा जाता है। समृद्धि एवं सौभाग्य की अधिष्ठात्री होने के साथ-साथ देवी लक्ष्मी भगवान विष्णु की पत्नी (शक्ति / माया) या वैष्णवी देवी के रूप में वैष्णव मत या सम्प्रदाय में सर्वमान्य आराध्य देवी है। वैष्णव मत के कई प्राचीन नाम हैं, जिनमें 'भागवत मत' तथा 'पांचरात्र' ये विशेष लोक प्रसिद्ध हैं। इन नामों के अतिरिक्त भगवान विष्णु की उपासना को प्रमुखता देने वाले मतों के नाम हैं — सूरि, सुहृत, सात्त्वत, पंचकालवित्, एकान्तिक एवं तन्मय। (पाद्म संहिता, ४/२/८८) इन नामों में से 'सूरि' नाम ऋग्वेद संहिता की ऋचा संख्या १/२२/२० में प्रयुक्त हुआ है, जहाँ यह कहा गया है कि विष्णु के परमपद पर 'सूरियों' (विष्णु के उपासकों) की दृष्टि सदा लगी रहती है। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैष्णव (सूरि) मत का प्रचलन ऋग्वैदिक काल में हो चुका था और यह मत थोड़े संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्धन के साथ आज तक प्रचलित है।

पांचरात्र मत

पांचरात्र मत भी वैष्णव मत का ही एक प्राचीन नाम है। भिन्न-भिन्न संहिताओं एवं अन्य ग्रन्थों में पांचरात्र की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की गई हैं। इस मत को 'एकान्तिक' और 'सात्वत' भी कहते हैं। महाभारत (शांति पर्व) के अनुसार चार वेदों और सांख्य योग के समावेश के कारण 'नारायणीय उपाख्यान' पांचरात्र कहलाता है। (३३९/११-१२)

नारद पांचरात्र के अनुसार इसमें ब्रह्म, मुक्ति, भोग, योग एवं संसार — इन पांच विषयों का 'रात्र' यानि ज्ञान होने के कारण इसे पांचरात्र कहते हैं।

शतपथ ब्राह्मण (१ ३/६/१) के अनुसार सत्र की पांच रातों में इस धर्म की व्याख्या की गई, अतः इसका नाम 'पांचरात्र' पड़ा।

वस्तुतः इस मत का नाम पांचरात्र इसलिये पड़ा क्योंकि इस मत के सिद्धान्तानुसार सृष्टि की सब वस्तुएँ — (१) पुरुष, (२) प्रकृति, (३) स्वभाव, (४) कर्म एवं (५) दैव — इन पाँच कारणों से उत्पन्न होती है। पाँच प्रकार की ज्ञान भूमि पर विचारित होने के कारण यह मत 'पांचरात्र' कहलाया। (हिन्दू धर्म कोश, पृ. ३९४)

पांचरात्र संहिताएँ

पांचरात्र मत की व्याख्या एवं वैष्णवों के धर्म एवं आचार संबंधी विस्तृत विवरण पांचरात्र संहिताओं में दिया गया है। पांचरात्र मत संबंधी अनेक संहिताएँ हैं, जिनमें 'लक्ष्मी तंत्र' नामक संहिता एक प्रमुख संहिता है। इन संहिताओं में देवी भक्ति, देवी पूजा के मंत्र, मंडल और यंत्र आदि को विशेष महत्त्व दिया गया है।

लक्ष्मी तंत्र

इस ग्रन्थ में देवी लक्ष्मी को उच्चतम स्थान दिया गया है। वे प्रकृति हैं तथा प्रत्येक सृजन में चैतन्य रूप व्याप्त हैं। ये प्रकृति सदृश्य ही गतिशील एवं संवर्धनशील हैं। एक से अनेक होती हैं।

'लक्ष्मी तंत्र' के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया के आदि में देवी अपने को 'महालक्ष्मी' के रूप में प्रकट करती है। तत्पश्चात् महालक्ष्मी दो और रूपों — (१) कृष्णा एवं (२) ब्राह्मी को धारण करती है। इस प्रकार महालक्ष्मी, कृष्णा और ब्राह्मी — ये तीन देवियाँ देवी के सर्वोच्च रूप हैं, जो सत्त्व, रज और तम — इन तीन गुणों का प्रतिनिधित्व करती हैं। तत्पश्चात् महालक्ष्मी दानवों और दुष्टों के संहारार्थ विविध रूप या अवतार धारण करती हैं।

मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य के अन्तर्गत आदिशक्ति के नौ अवतारों का उल्लेख है। उसी की भाँति देवी महालक्ष्मी के नौ अवतारों का उल्लेख लक्ष्मी तंत्र में है, जिसके अनुसार इन नौ अवतारों के नाम हैं — (१) महिषासुर मर्दिनी, (२) योगनिद्रा (महाकाली), (३) कौशिकी, (४) सुनन्दा (विन्ध्यवासिनी), (५) रक्तदंतिका, (६)

शाकम्भरी, (७) दुर्गा, (८) भीमा एवं (९) भ्रामरी, जिनमें से प्रथम तीन हो चुके हैं तथा बाकी छह भविष्य में होंगे।

देवी लक्ष्मी की उपासना के प्रारम्भ होने के बाद में देवी के देवत्व की महिमा की वृद्धि करने के उद्देश्य से 'लक्ष्मी तंत्र' कार ने मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य के आधार पर उक्त नौ अवतारों की परिकल्पना संभवतः की है।

लक्ष्मीतंत्र विष्णु को नहीं, लक्ष्मी को ही उपास्य मानता है। उसके अनुसार लक्ष्मी ही सबकी इच्छा पूर्ति करती है तथा उसी के मंत्र में शक्ति है और वही ध्यान का केन्द्र है। लक्ष्मीतंत्र के अनुसार ब्रह्म की प्रकृति निवृति की है और शक्ति की प्रकृति प्रवृति की है। यह शक्ति ही लक्ष्मी है। ये ही सर्व सर्जन का साधन रूप कारण है। लक्ष्मी आनन्द है। ये किसी पर आधारित नहीं हैं। ये 'निरपेक्षतयानन्द' हैं। ये समय से सीमित नहीं हैं, अतः 'नित्य' हैं। ये किसी आकार में बद्ध नहीं हैं, मर्यादित नहीं हैं, अतः पूर्ण हैं। ये स्वयं को विश्वरूप में प्रकट करती हैं, अतः लक्ष्मी हैं। शक्ति-उपासना के लिये पांचरात्र आगम के लक्ष्मीतंत्र में विशेष रूप से विस्तृत निर्देश किया गया है। शक्तियों में महालक्ष्मी और उनकी सखियाँ — कीर्ति, जया, माया और उनकी अनुचरियों का उल्लेख किया गया है तथा उनकी उपासना और श्री सूक्त की महिमा प्रतिपादित की गई है। अन्त में लक्ष्मी-नारायण की संयुक्त वंदना के साथ ग्रन्थ समाप्त किया गया है।

श्रीमद्भगवत गीता के 'यदा यदा हि धर्मस्य . . . संभवामि युगे युगे' की शैली में देवी उद्घोष करती है कि जब-जब दानवों का उत्पात एवं संत्रास होगा, तब-तब उनका नाश करने वह अवतीर्ण होगी।

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं हनिष्यामि महासुरान।। - ९/४४

अन्य पांचरात्र संहिताएँ

'लक्ष्मी तंत्र' के अतिरिक्त अन्य कई पांचरात्र संहिताओं में देवी लक्ष्मी को प्रधानता दी गई है तथा उनमें देवी के विभिन्न अवतारों (स्वरूपों) एवं शक्तियों का उल्लेख किया गया है। उदाहरणार्थ निम्नांकित संहिताओं के उल्लेख दृष्टव्य हैं —

(i) जयाख्य संहिता (६/७७) एवं श्रीप्रश्न संहिता (५०/६०) के अनुसार देवी लक्ष्मी ने अपने को श्री, कीर्ति, जया तथा माया — इन चार स्वरूपों में क्रमशः

वासुदेव, संकर्षण, पद्युम्न एवं अनिरुद्ध — चतुर्व्यूह — की पत्नियों या शक्तियों के रूप में प्रकट किया।

(ii) दक्षिण मूर्ति (अत्रि) संहिता (१/७) में देवी लक्ष्मी के पांच रूप — (१) श्री, (२) विद्या, (३) लक्ष्मी, (४) महालक्ष्मी एवं (५) त्रि-शक्ति बतलाये गये हैं।

(iii) विहगेन्द्र संहिता (३/५) के अनुसार देवी लक्ष्मी के आठ स्वरूप हैं, जो इस प्रकार हैं ¾ (१) श्री, (२) कीर्ति, (३) विजया, (४) श्रद्धा, (५) स्मृति, (६) मेधा, (७) धृति एवं (८) करुणा।

(iv) प्रपंचसार (१२वाँ पटल) में देवी लक्ष्मी, जो स्वयं एक शक्ति है, की शक्तियों के रूपों का उल्लेख किया गया है। देवी लक्ष्मी की इस ग्रन्थ के अनुसार नौ शक्तियाँ हैं, जिनके नाम हैं — (१) विभूति, (२) उन्नति, (३) कान्ति, (४) हृष्टि, (५) कीर्ति, (६) सन्मति, (७) व्युष्टि, (८) उत्कृष्टि एवं (९) ऋद्धि।

(v) लक्ष्मी संहिता में देवी लक्ष्मी के बारह स्वरूप बतलाये गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं —

(१) श्री, (२) कामेश्वरी, (३) कान्ति, (४) क्रिया, (५) शक्ति, (६) विभूति, (७) इच्छा, (८) प्रीति, (९) रति, (१०) माया, (११) धी एवं (१२) महिम्न।

उपरोक्त देवी लक्ष्मी के स्वरूप (अवतार) और शक्तियों के विवरण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये सब स्वरूप (अवतार) और शक्तियाँ एक ही देवी की विविध संज्ञाएँ हैं, जो देवी की व्यापक सत्ता को अभिव्यक्त करती हैं।

●

भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी

विश्वात्मा के विश्वरूप के सात्त्विक-तत्त्व

हिन्दू धर्म के त्रिदेव — ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश की परिकल्पना में भगवान विष्णु विश्वात्मा के विश्वरूप के सात्त्विक तत्त्व हैं, जिनका मुख्य कार्य संयोजन, धारण, केन्द्रीयकरण एवं संरक्षण है। विश्व में जो प्रवृत्तियाँ केन्द्र की ओर जाती हैं, ऐक्य की शक्ति उत्पन्न करती है, अस्तित्व और वास्तविकता को दृढ़ करती है, प्रकाश और सत्य का निर्देश करती है, वे विष्णु भगवान से उद्‌भूत होती हैं। (हिन्दू धर्म कोश - डॉ. राजबली, पृ. ५९१)

विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति

विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति 'विष्लृ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है — सर्वत्र व्यापक होना। अतः वह जो सर्व-व्याप्त है, उसे विष्णु कहते हैं।

महाभारत (उद्योग पर्व, अ. ७०/१३) में विष्णु नाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है —

विष्णुर्विक्रमणाद् देवो जयनाज्जिष्णु रुच्यते।
शाश्वतत्वादनन्तश्च गोविन्दो वेदनात गवाम्।।

अर्थात् विक्रमण (वामनावतार में तीनों लोकों को आक्रान्त) करने के कारण वे भगवान विष्णु कहलाते हैं। वे सब पर विजय पाने से 'जिष्णु', शाश्वत (नित्य) होने से

'अनन्त' तथा गौओं (इन्द्रियों) के ज्ञाता और प्रकाशक होने के कारण (गां विन्दति) इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'गोविन्द' कहलाते हैं।

भगवान विष्णु एक वैदिक देवता

भगवान विष्णु एक वैदिक देवता हैं। वैदिक काल से आज तक वे सतत एवं सर्वमान्य उपास्य देवता रहे हैं। भगवान विष्णु के दिव्य-भव्य देवत्व एवं सामर्थ्य का प्रतिपादन एवं अभिवंदन ऋग्वेद संहिता के कई सूक्तों में किया गया है।

ऋग्वेद संहिता के सूक्त संख्या १/२२ 'अनेक देवता सूक्त' की ऋचा संख्या १६ से २१ तक की छह ऋचायें भगवान विष्णु को समर्पित हैं। इन ऋचाओं में भगवान विष्णु के त्रिपद, धर्म संरक्षक, इन्द्र सख्य एवं परमपद आदि विष्णु-चरित्रपरक प्रमुख प्रसंगों का उल्लेख है। इस सूक्त में भगवान विष्णु को सूर्य (आदित्य) का मूर्त स्वरूप माना है, जो उनकी सर्वत्र एवं सर्वव्यापकता का सूचक है।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे। १७
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतोधर्माणि धारयन्।। १८
विष्णोः कर्माणिपश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा। १९
तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।। २०

भावार्थ : विष्णु ने विश्व को आवृत कर अपने पद तीन स्थानों पर स्थापित किये। उनका प्रखर तेज समस्त विश्व में व्याप्त है।

अविनाशी एवं रक्षण करने वाले विष्णु ने अपने पद-विक्षेपों से संसार को जब से आवृत किया है, तब से वे जग में धर्म संरक्षक बन गये हैं।

हे स्तुतिकर्त्ताओ! आपके सारे कृत्यों को सूक्ष्मता से निरीक्षण करने वाले एवं इंद्र के प्रिय मित्र विष्णु के पराक्रम को आप अवलोकन कीजिये।

आकाश में खुले हुए दिव्य नेत्र की भाँति तेजस्वी विष्णु के पद-विक्षेपों का पराक्रम विद्वान भक्त भक्ति भाव से दर्शन करते हैं।

ऋग्वेद संहिता के सूक्त संख्या १/१५४ 'विष्णु सूक्त' में भगवान विष्णु की महिमा का गुण-गान करते हुए, उन्हें 'त्रिविक्रम' कहा गया है अर्थात् वे ऐसे देव हैं, जो तीन पाद प्रक्षेपों में समस्त विश्व को नाप लेते हैं और इसीलिये उन्हें 'उरुवाय' (विस्तीर्ण गतिवाले) और 'उरुक्रम' (विस्तीर्ण पाद-प्रक्षेप वाले) कहा गया है।

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरि क्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रपतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित पदेभिः।।
- (१/१५४/३)

सूक्त संख्या १/१५५ और १/१५६ भी विष्णु संबंधी सूक्त हैं। सूक्त संख्या १/१५५ में आदित्य-स्वरूपी विष्णु देवता की स्तुति की गई है तथा सूक्त संख्या १/१५६ में विष्णु भगवान के सर्व-व्यापी देवत्व का गौरव गान एवं अभिवंदन किया गया है।

ऋग्वेद संहिता के सूक्त संख्या ७/९९ में भगवान विष्णु की महिमा का बखान करते हुए कहा गया है कि कोई ऐसा प्राणी न तो उत्पन्न हुआ है और न होने वाला है, जिसने भगवान विष्णु की महिमा का अन्त पाया है (न ते विष्णु जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप। - ७/९९/२)।

देवी लक्ष्मी भी एक स्त्रीवाची वैदिक देवता

'श्री' और 'लक्ष्मी' ये दोनों शब्द हमें ऋग्वेद की मूल संहिता में मिलते हैं, लेकिन ये किसी मूर्त रूप या देवी के व्यंजक या बोधक नहीं हैं। 'श्री' और 'लक्ष्मी' के मूर्त रूप हमें यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में मिलते हैं। अब तक जो शब्द भाव वाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता था, अब उसे व्यक्तिवाची संज्ञा बना दिया गया। इस संहिता के अ. ३१ के मंत्र संख्या २२ में श्री और लक्ष्मी को आदित्य (परम पुरुष / विष्णु) की दो पत्नियाँ कहा गया है। इस मंत्र में 'श्री' और 'लक्ष्मी' को दो भिन्न-भिन्न देवियाँ बतलायी गयी हैं। कालान्तर में इन दोनों का परस्पर विलय हो गया तथा श्री लक्ष्मी का सर्वप्रथम दर्शन हमें 'श्री सूक्त' में होता है। श्री सूक्त ऋग्वेद संहिता का एक 'खिल (परिशिष्ट) सूक्त' है। 'खिल सूक्त' वे सूक्त हैं, जो मूल संहिता में परवर्ती काल में जोड़े गये। इसका तात्पर्य यही है कि खिल सूक्त मूल संहिता के सूक्तों जैसे प्राचीन नहीं हैं, लेकिन इनका महत्त्व मूल संहिता के सूक्तों जैसा ही है। श्री सूक्त में 'श्री' और 'लक्ष्मी' में कोई भेद नहीं है।

'श्री सूक्त' मूल रूप में १६ मंत्रों का था, जिसमें कुछ मंत्र परवर्ती काल में जोड़े गये हैं। इन जोड़े गये मंत्रों में श्री लक्ष्मी को विष्णु पत्नी संज्ञा से संबोधित किया गया है —

विष्णुपत्नी क्षमां देवीं माधवीं माधव प्रियाम्।
लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युत वल्लभाम्।।

ब्राह्मण ग्रन्थों एवं पुराणों में भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी

ब्राह्मण ग्रन्थों में भगवान विष्णु और देवी श्री लक्ष्मी की परिकल्पना, अवधारणा एवं यागों आदि का और विस्तार हुआ और पुराणों में तो विष्णु भगवान और देवी श्री लक्ष्मी और उनके अवतारों की विविध परिकल्पनाओं, कथाओं और आराधना-पद्धतियों का अत्यधिक विस्तार हुआ है।

देवी लक्ष्मी भगवान विष्णु की पत्नी या शक्ति

विष्णु पुराण में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण चराचर जगत् पर-ब्रह्म स्वरूप भगवान विष्णु का उनकी शक्ति से सम्पन्न 'विश्व' नामक रूप है। समष्टि शक्ति भगवान विष्णु की शक्ति है और वह शक्ति लक्ष्मीजी हैं।

एतत् सर्वमिदं विश्वं जगदेच्चराचरम्।
परब्रह्म स्वरूपस्य विष्णोः शक्ति समन्वितम्।। - (६/७/६०)

भगवान विष्णु और श्री लक्ष्मी की तादात्मकता को प्रदर्शित करते हुए महर्षि पराशरजी आगे कहते हैं कि भगवान गदाधर (विष्णु) आश्रय हैं और लक्ष्मीजी शक्ति हैं। भगवान विष्णु निमेष हैं और लक्ष्मीजी काष्ठा हैं, वे मुहूर्त हैं और ये कला हैं। सर्वेश्वर सर्व रूप हरि दीपक हैं और श्री लक्ष्मीजी ज्योति हैं। श्री विष्णु वृक्ष रूप हैं और जगन्माता श्री लक्ष्मीजी लता हैं। संक्षेप में यह कहना चाहिये कि देव, तिर्यक और मनुष्य आदि में पुरुषवाची भगवान हरि है और स्त्रीवाची श्री लक्ष्मीजी तथा इनके परे और कोई नहीं है।

अवष्टम्भो गदापाणिः शक्तिर्लक्ष्मीर्द्विजोत्तम।
काष्ठा लक्ष्मीर्निमेषोऽसौ मुहूर्त्तोऽसौ कला त्वियम्।।
ज्योत्स्ना लक्ष्मीः प्रदीपोऽसौ सर्वः सर्वेश्वरोहरिः।
लताभूता जगन्माता श्रीविष्णुर्द्रुम संक्षितः।।
देव तिर्यङ् मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान्हरि।
स्त्रीनाम्नि श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्।।
- (वि. पु., १/८/२९, ३०, ३५)

विष्णु भगवान और श्री लक्ष्मीजी के एक साथ अवतार

जैसे भगवान विष्णु का देवत्व सर्वव्यापी है, वैसा ही देवी लक्ष्मी का देवत्व भी सर्वव्यापी है (त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम्। - अग्नि पुराण, २३७ /

१०)। जब जब भगवान विष्णु अवतार धारण करते हैं, तब तब लक्ष्मीजी उनके साथ रहती है। जब श्रीहरि आदित्य रूप हुए तो वे पद्म से पुनः उत्पन्न हुई और पद्मा कहलायी तथा जब वे परशुराम हुए तो ये पृथ्वी हुई और श्रीहरि के राम होने पर ये सीताजी हुई और श्री कृष्णावतार में श्री रुक्मिणीजी हुई। इसी प्रकार अन्य अवतारों में भी ये भगवान से कभी पृथक नहीं होती। भगवान देव रूप होने पर ये दिव्य शरीर धारण करती हैं और मनुष्य होने पर मानवी रूप से प्रकट होती हैं।

एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः।
अवतारं करोत्येषा तदाश्रीस्त त्सहायिनी।।
पुनश्च पद्मादुत्पन्ना आदित्योऽभूद्यदा हरिः।
यदा तु भार्गवो रामस्तदा भूद्धरणी त्वियम्।
राघव त्वे ऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्ण जन्मि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी।।
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मन स्तनुम्।।
- (वि. पु. १/९/१४२-१४५)

भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी की सर्वव्यापकता

महर्षि पराशरजी ने भगवान विष्णु तथा लक्ष्मीजी की सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए कहा है कि जिस प्रकार श्री विष्णु भगवान सर्व-व्यापक हैं, वैसे ही श्री लक्ष्मीजी भी हैं। विष्णु अर्थ है और ये वाणी हैं। हरि नियम हैं और ये नीति हैं। भगवान विष्णु बोध है और ये बुद्धि हैं तथा वे धर्म हैं तो ये सत्क्रिया हैं। भगवान विष्णु जगत के स्रष्टा हैं और श्री लक्ष्मीजी सृष्टि हैं। श्रीहरि भूधर (पर्वत या राजा) हैं तो लक्ष्मीजी भूमि हैं तथा भगवान विष्णु संतोष हैं और लक्ष्मीजी नित्य-तुष्टि हैं।

नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम।।
अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम्।
स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टि श्रीर्भूमि र्भूधरो हरिः।
संतोषो भगवाँल्लक्ष्मीस्तुष्टि मैत्रेय शाश्वती।।
- (विष्णु पुराण, १/८/१७-१९)

समुद्र से देवी लक्ष्मी के प्राकट्य के पश्चात् उनकी स्तुति करते हुए, देवराज इन्द्र कहते हैं कि "हे देवी! तुम सम्पूर्ण लोकों की माता हो और देवदेव भगवान हरि (विष्णु) पिता हैं। हे माता! तुमसे और श्री विष्णु भगवान से यह सकल चराचर जगत् व्याप्त है।"

त्वं माता सर्व लोकानां देवदेवो हरि पिता।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम्॥
- (वि. पु. १/९/१२६)

समुद्र से प्राकट्य के बाद देवी लक्ष्मी एवं भगवान विष्णु का दाम्पत्य संबंध सतत एवं अटूट रहा है।

आदिपुरुष तथा आद्याशक्ति

भगवान विष्णु आदि-पुरुष हैं तथा श्री लक्ष्मीजी आद्या-शक्ति हैं। लक्ष्मीजी की स्तुति करते हुए, देवराज की उक्ति है —

आद्यन्तरहिते देवि आद्य-शक्ति महेश्वरि।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तुते॥
- (महालक्ष्मी अष्टक ५, इन्द्रप्रोक्त)

वैदिक साहित्य की दृष्टि से भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी (श्री देवी) का दाम्पत्य संबंध यजुर्वेद की वाजसेयनी संहिता एवं ऋग्वेद के परिशिष्ट सूक्त 'श्री सूक्त' के समय से है और पौराणिक साहित्य के अनुसार उस समय से जब समुद्र-मंथन की प्रक्रिया में श्री लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ।

भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी के दाम्पत्य संबंध परक नाम

(अ) श्री विष्णु सहस्रनाम

महाभारत के अनुशासन पर्व के अ. १४९ में भगवान विष्णु के एक सहस्र नामों का उल्लेख है, जिनमें अनेक नाम ऐसे हैं, जो देवी लक्ष्मी (श्री देवी) और भगवान विष्णु (नारायण) की एकरूपता के द्योतक हैं तथा जो देवी लक्ष्मी के महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणार्थ कतिपय निम्नवत नामों को देखें —

श्रीमान (१७८), श्रीनिवास (१८३), लक्ष्मीवान (३६१), श्रीगर्भ (३७६), श्रीवास (६०२), श्रीपति (६०३), श्रीश (६०६), श्रीनिधि (६०८), एवं श्रीधर (६१०)।

(आ) श्रीलक्ष्मी सहस्रनाम

इसी प्रकार पद्म पुराण के अन्तर्गत देवी लक्ष्मी के एक सहस्र नामों का उल्लेख है, जिनमें अनेक नाम ऐसे हैं, जो भगवान विष्णु (नारायण) और देवी लक्ष्मी (श्री देवी) की घनिष्ठता के सूचक हैं तथा जो भगवान विष्णु के माहात्म्य को प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणार्थ कतिपय निम्नांकित नामों को देखें —

अच्युता (१९), योगेश्वरप्रिया (२९४), वैष्णवी (४०७), गरुड़ारूढ़हृदया (४३३), हरिभद्रा (४९०), विष्णुवल्लभा (५१०), हरिप्रिया (८९१) एवं विष्णुवैक्षःस्थलगता (१०००)।

देवी लक्ष्मी एवं भगवान विष्णु की युग्म प्रतिमाएँ

देवी लक्ष्मी एवं भगवान विष्णु की युग्म प्रतिमाओं को 'लक्ष्मी-नारायण' की प्रतिमा कहा जाता है। ये युग्म प्रतिमाएँ प्रदर्शित करती हैं कि भगवान विष्णु स्वयं की पत्नी या शक्ति के साथ होते हैं, तब उनका सर्वोच्च रूप होता है तथा यह युगल स्वरूप ही उनकी शक्ति एवं सामर्थ्य को पूर्ण-रूपेण प्रस्तुत करता है।

अर्ध लक्ष्मी हरि

लक्ष्मी-विष्णु की घनिष्ठता एवं एकरूपता को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से ऐसे स्वरूप की परिकल्पना की गई है, जिसका दाहिना अर्द्धांग विष्णु का और बायाँ लक्ष्मी का है, जिसे 'अर्धलक्ष्मीहरि' कहते हैं। यह स्वरूप भगवान शिव के अर्धनारीश्वर के सदृश है। यह सत् और चित् के मिलन का रूपक है, जिससे आनन्द की सृष्टि होती है।

पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर देवी लक्ष्मी और भगवान विष्णु का दाम्पत्य संबंध

डॉ. सुवीरा जायसवाल ने विविध पुरातात्विक साक्ष्यों का निरीक्षण कर यह मत व्यक्त किया है कि प्रारम्भ में श्री लक्ष्मी एक स्वतंत्र मातृका देवी के रूप में कल्पित हुई और बाद में कई चढ़ाव-उतारों को पार कर अन्त में गुप्त वंशीय राजाओं के काल में भगवान विष्णु से सम्बद्ध हुई। कुषाण काल के अंतिम चरण एवं गुप्त काल के प्रथम चरण के आसपास जब तांत्रिकता का विकास हुआ, श्री लक्ष्मी को भगवान विष्णु की शक्ति माना गया। इस रूप में गुप्त-काल के बाद के समय जब वैष्णव सम्प्रदाय के पंचरात्र मत का प्रचलन हुआ, तब उसमें देवी लक्ष्मी की विष्णु की शक्ति के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। - (दी ऑरिजन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ वैष्णवीजम्, पृ. ११५)

●

देवी लक्ष्मी की बड़ी बहन देवी अलक्ष्मी (ज्येष्ठा देवी)

अलक्ष्मी का अर्थ

'अ' उपसर्ग लक्ष्मी शब्द के लगाने से लक्ष्मी शब्द का जो अर्थ होता है उससे विरोधी या उलटा अर्थ अलक्ष्मी का हो जाता है। इसलिये अलक्ष्मी शब्द का अर्थ हुआ, वह जो लक्ष्मी नहीं है। लक्ष्मी सम्पन्नता की देवी है, प्रतीक है एवं पर्याय है तथा अलक्ष्मी विपन्नता (दरिद्रता) की देवी है, प्रतीक है एवं पर्याय है।

हिन्दू धार्मिक साहित्य में अलक्ष्मी को लक्ष्मी की बड़ी बहन माना गया है, अतः अलक्ष्मी को ज्येष्ठा देवी भी कहा जाता है।

वैदिक साहित्य में अलक्ष्मी

ऋग्वेद की मूल संहिता में देवी लक्ष्मी को समर्पित कोई सूक्त या संदर्भ नहीं है, लेकिन दरिद्रता की अधिष्ठात्री देवी अलक्ष्मी को समर्पित एक सूक्त है। इस प्रकार देवी लक्ष्मी के पहले देवी अलक्ष्मी का स्मरण किया गया है। ऋग्वेद की मूल संहिता में सूक्त संख्या १०/१५५ (अश्री नाशन सूक्त) में अलक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन करते हुए, उसे दूर भाग जाने के लिये कहा गया है। समृद्धि की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी को समर्पित 'श्री सूक्त' ऋग्वेद संहिता का एक परिशिष्ट सूक्त है, अर्थात् यह सूक्त मूल संहिता के परवर्ती काल में जोड़ा गया है तथा मूल संहिता में समाविष्ट सूक्तों जैसा प्राचीन नहीं है। 'श्री सूक्त' के मंत्र संख्या ८ में अलक्ष्मी का उल्लेख देवी लक्ष्मी की बड़ी बहन (ज्येष्ठा) के रूप में किया गया है। श्री सूक्त में भी अलक्ष्मी (दरिद्रता) के नाश की कामना प्रार्थी करता है (. . . ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्)।

अथर्ववेद के 'पाप लक्षण नाशन सूक्त' (सू. सं. ७/११५) में अलक्ष्मी को 'पापिष्ठा लक्ष्मी' कहा है तथा अलक्ष्मी का दूसरा नाम 'निर्ऋति' कहा गया है, जो विनाश और मृत्यु की देवी मानी जाती है। इस सूक्त में भी सूक्तकार 'अलक्ष्मी' (दरिद्रता) को दूर भाग जाने की प्रार्थना करता है (प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्राभुतः पत्।)।

पौराणिक साहित्य में देवी अलक्ष्मी

वैदिक साहित्य में देवी अलक्ष्मी (ज्येष्ठा देवी) संबंधी परिकल्पना आदि सीमित है, परन्तु वेदोत्तर काल में पौराणिक साहित्य में देवी की प्राकट्य कथाएँ, उसका गार्हस्थ्य जीवन, उसके निवास योग्य स्थान एवं उसके दुष्परिणामों के निवारणार्थ उपाय आदि का विवरण विस्तारपूर्वक दिया गया है।

देवी अलक्ष्मी (ज्येष्ठा देवी) की प्राकट्य कथाएँ

सम्पन्नता की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी की प्राकट्य संबंधी कथाओं के सदृश ही विपन्नता (दरिद्रता) की अधिष्ठात्री देवी अलक्ष्मी की प्राकट्य संबंधी पुरा-कथाएँ हैं, जिनमें से कतिपय कथाएँ इस प्रकार हैं—

(i) तैत्तिरीय ब्राह्मण

इस ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार ज्येष्ठा लक्ष्मी (अलक्ष्मी) प्रजापति के ललाट से उत्पन्न हुई थी।

(ii) ब्रह्मवैवर्त पुराण

इस पुराण के अनुसार अलक्ष्मी की उत्पत्ति ब्रह्माजी के वाम पार्श्व से हुई (अलक्ष्मी स्तद्वाम पार्श्वाद् बभूवात्यन्त कामिनी। - १/८/१०)।

(iii) लिंग पुराण

इस पुराण में अलक्ष्मी के प्राकट्य संबंधी दो कथाएँ निम्नवत हैं—

(क) जगत को मोहित करने की इच्छा से भगवान विष्णु ने उसके दो भाग किये। पहले भाग में उन्होंने वेदों, ब्राह्मणों, वेदविहित धर्मों, श्री, पद्मा और श्रेष्ठा की कल्पना की एवं दूसरे भाग में अशुभ ज्येष्ठा लक्ष्मी, अवैदिकों, नराधमों एवं अधर्म की कल्पना की। उन्होंने पहले अलक्ष्मी की, बाद में लक्ष्मी की सृष्टि की (अलक्ष्मीमग्रतः सृष्ट्वा पश्चात्पद्मा जनार्दनः। - २/६/५)।

(ख) समुद्र-मंथन की प्रक्रिया में सर्वप्रथम विष प्रकट हुआ एवं उस विष से अलक्ष्मी की उत्पत्ति हुई। श्री (लक्ष्मी) के पहले उत्पन्न होने के कारण अलक्ष्मी को ज्येष्ठा कहा जाता है।

ज्येष्ठा तेन समा ख्याता अलक्ष्मी द्विजसत्तमः।
अमृतोद्भव वेलायां विषानन्तर उत्वणाता॥ - (२/६/६)

(iv) पद्म पुराण

पद्म पुराण में समुद्र-मंथन के प्रसंग का उल्लेख तीन स्थलों पर किया गया है, जिनमें से दो स्थलों पर समुद्र से देवी अलक्ष्मी के प्रकट होने का उल्लेख है।

(क) पद्म पुराण **(स्वर्ग खंड, अ. ४१)**

उक्त अध्याय में वर्णित समुद्र-मंथन के प्रसंग के वर्णन में प्रथम समुद्र से विष उत्पन्न हुआ और उसके पश्चात् अलक्ष्मी।

(ख) पद्म पुराण (उत्तर खंड, अ. २६०)

इस अध्याय में वर्णित समुद्र-मंथन के प्रसंग के अनुसार मंथन की प्रक्रिया में कालकूट विष के पश्चात् ज्येष्ठा देवी (लक्ष्मीजी की बड़ी बहन) प्रकट हुई। वे लाल वस्त्र पहने थीं (ज्येष्ठा देवी समुत्पन्ना रक्त स्रक्वाससावृता। - २६०/२३)

पद्म पुराण और लिंग पुराण के वर्णनों में अन्तर

पद्म पुराण के उक्त दोनों वर्णनों में ज्येष्ठा (अलक्ष्मी) सीधे समुद्र से उत्पन्न हुई, लेकिन लिंग पुराण के वर्णन में प्रथम विष प्रकट हुआ तथा उस विष से अलक्ष्मी उत्पन्न हुई।

देवी अलक्ष्मी के पति / पुत्र

देवी अलक्ष्मी का विवाह लिंग पुराण के अनुसार 'दुःसह' नामक ऋषि से हुआ तथा पद्म पुराण के अनुसार 'उद्दालक' से और मार्कण्डेय पुराण के अनुसार 'मृत्यु' से।

(i) लिंग पुराण में वर्णित 'अलक्ष्मी-दुःसह' कथा

लिंग पुराण के अनुसार देवी अलक्ष्मी का विवाह दुःसह नामक ऋषि से हुआ, लेकिन उनका विवाहित जीवन सुखद नहीं रहा। देवी अलक्ष्मी वेद-ध्वनि एवं हरिनाम

संकीर्तन आदि से भयभीत हो इधर-उधर छिप जाती थी। जब ऋषि दुःसह ने तपस्या करना आरम्भ किया, देवी अलक्ष्मी ने वहाँ से किसी दूसरे स्थान पर चलने का आग्रह किया। अतः ऋषि दुःसह ने तपस्या का विचार छोड़ देवी अलक्ष्मी के साथ उसके निवास योग्य स्थान की शोध करने चल पड़े। मार्ग में उनकी भेंट मार्कण्डेय ऋषि से हुई, जिनसे उन्होंने देवी अलक्ष्मी के निवास योग्य स्थान के बारे में पूछताछ की। ऋषि मार्कण्डेय ने उन्हें परामर्श दिया कि जहाँ भगवान विष्णु की निन्दा होती हो, ऐसा स्थान देवी अलक्ष्मी के निवास योग्य है और इतना कहकर वे अदृश्य हो गये। जब ऋषि दुःसह और देवी अलक्ष्मी ऐसे स्थान को खोजने जा रहे थे, वे एक जलाशय पर स्थित आश्रम में पहुँचे। ऋषि दुःसह ने देवी अलक्ष्मी को वहीं रहने के लिये कह, स्वयं पाताल में चले गये और बाद में लौटे नहीं। जब देवी अलक्ष्मी पति-परित्यक्ता के रूप में आश्रम में रह रही थी, एक दिन उसकी भेंट अचानक भगवान विष्णु से हो गई। देवी अलक्ष्मी ने ऋषि के अदृश्य होने की बात कही तथा अपने भरण-पोषण का उपाय पूछा, जिसके उत्तर में भगवान विष्णु ने कहा कि भगवान शंकर, अम्बा (पार्वती) तथा मेरे भक्तों की निन्दा करने वालों के गृह, धन, क्षेत्र आदि सब तुम्हारे होंगे एवं उन्हीं से तुम्हारा भरण-पोषण होगा। (२/६/८५-८९)

(ii) पद्म पुराण में वर्णित 'अलक्ष्मी-उद्दालक' की कथा

(क) पद्म पुराण के अनुसार जब श्री देवी (लक्ष्मी देवी) के समुद्र से प्रकट होने पर उनसे देवताओं ने भगवान विष्णु को पति रूप में ग्रहण करने की प्रार्थना की, तब लक्ष्मी देवी ने कहा कि मेरी बड़ी बहन अलक्ष्मी का विवाह हुए बिना मेरा (छोटी बहन का) विवाह उचित नहीं होगा। श्री देवी की यह बात सुन, भगवान विष्णु ने पहले देवी अलक्ष्मी का विवाह ऋषि उद्दालक से करवाया एवं उसके बाद में उन्होंने श्री देवी को पत्नी के रूप में स्वीकार किया।

ऋषि उद्दालक और देवी अलक्ष्मी की आपस में पटी नहीं और घर में कलह होने लगी। दोनों लड़ते-झगड़ते एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये भटकने लगे। अन्त में ऋषि उद्दालक देवी अलक्ष्मी को एक पीपल (अश्वत्थ) के वृक्ष के नीचे छोड़कर भाग खड़े हुए। ऋषि उद्दालक के नहीं लौटने पर अलक्ष्मी देवी विलाप करने लगी, जिससे द्रवित हो देवी लक्ष्मी ने अपने पति भगवान विष्णु से उस पर दया करने का अनुरोध किया। अतः भगवान विष्णु ने देवी अलक्ष्मी को स्थायी रूप से अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष पर निवास

करने का आदेश देते हुए कहा कि उसकी छोटी बहन देवी लक्ष्मी यहाँ प्रत्येक शनिवार को निवास करेगी एवं उस दिन अश्वत्थ वृक्ष की पूजा होगी। इसके साथ-साथ भगवान विष्णु ने यह भी वरदान दिया कि जो व्यक्ति तुम्हारी प्रतिदिन पूजा करेगा, उसके घर में देवी लक्ष्मी स्थायी निवास करेगी।

(ख) पीपल (अश्वत्थ) वृक्ष की महिमा

अति प्राचीन काल से हिन्दू धर्म में पीपल के वृक्ष को पावन एवं पूज्य माना गया है। पीपल (अश्वत्थ) के माहात्म्य को व्यक्त करते हुए कहा गया है —

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां राजा ब्राह्मणवर्णकः।
अश्वत्थः पूजितो येन सर्व संपूजितं भवेत।।

श्रीमद्भगवत गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है — 'अश्वत्थः सर्व वृक्षाणाम्'।

स्कंद पुराण के अनुसार पीपल के पेड़ की जड़ में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तों में भगवान श्रीहरि और फलों में सब देवताओं से युक्त अच्युत निवास करते हैं। (स्कंद पुराण, नागर खंड, २४७/४१-४२) इस प्रकार पीपल की पूजा करने से सब देवताओं की पूजा हो जाती है।

पीपल के पत्ते बड़े कोमल होते हैं। जब अन्य पेड़ों के पत्ते हिलते नहीं हो, तब भी पीपल के पत्ते हिलते रहते हैं। इसी कारण पीपल का एक नाम 'चलपत्र' भी है, अर्थात् जिसके पत्ते निरन्तर स्पंदित और वायु में तरंगित होते रहते हैं।

पीपल का वृक्ष पर्यावरण को शुद्ध वायु प्रदान करता है एवं इसकी जड़, छाल, पत्ते एवं फल आदि सभी में औषधीय गुण हैं।

हिन्दू धर्मावलम्बियों में समृद्धि एवं सम्पन्नता की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी को प्रसन्न करने के उद्देश्य से अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की पूजा करने की प्रथा प्राचीन काल से आज तक प्रचलित है।

(iii) मार्कण्डेय पुराण में वर्णित 'अलक्ष्मी-मृत्यु' की कथा

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार देवी अलक्ष्मी का विवाह मृत्यु से हुआ। मृत्यु से अलक्ष्मी को चौदह पुत्र हुए, जिनमें चौदहवाँ पुत्र दुःसह मनुष्यों के घरों में रहने वाला,

क्षुधातुर, अधोमुख, नंगा रहने वाला एवं कौए के समान कर्कश ध्वनि वाला था।

तथैवान्यो गृहे पुंसां दुःसहो नाम विश्रुतः।
क्षुत्क्षामोऽधोमुखो नग्नश्चीरी काकसमस्वनः॥ (४७/३८)

मार्कण्डेय पुराण के अ. ४७ में श्लोक संख्या ३८ से ९६ तक के श्लोकों में दुःसह किन स्थानों में रहता है तथा किन व्यक्तियों के पास रहता है, उसकी एक अति विस्तृत सूची दी गई है। ये वे स्थान और व्यक्ति हैं, जहाँ लक्ष्मी नहीं रहती।

लिंग पुराण में देवी अलक्ष्मी के पति का नाम दुःसह है, यहाँ देवी के पुत्र का नाम दुःसह है, जो सभी प्रकार से अशुभ एवं अमांगलिक तत्त्वों का मूर्तिमंत रूप है।

देवी अलक्ष्मी के निवास योग्य स्थान

वे सभी स्थान और व्यक्ति जो देवी लक्ष्मी को प्रिय हैं, वे देवी अलक्ष्मी के लिये अप्रिय हैं। ब्रह्म वैवर्त पुराण के प्रकृति खंड के अध्याय ३८वें और गणपति खंड के अध्याय २३वें में ऐसे स्थानों एवं व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है, जो देवी लक्ष्मी को प्रिय हैं एवं जहाँ वे वास करती हैं। इसी प्रकार महाभारत के अनुशासन पर्व के अध्याय ११वें में देवी लक्ष्मी के वास योग्य स्थलों का वर्णन किया गया है। ये सभी स्थान और व्यक्ति अलक्ष्मी को अप्रिय हैं तथा जो स्थान और व्यक्ति देवी लक्ष्मी द्वारा त्यक्त हैं, वे सभी अलक्ष्मी को प्रिय हैं। पद्म पुराण (स्वर्ग खंड) के अध्याय ४१वें में कहा गया है कि समुद्र से प्रकट होने के बाद जब अलक्ष्मी ने देवताओं से पूछा 'किं कर्त्तव्यं मयैति वै?' (मेरे लिये क्या कार्य है?) तब देवताओं ने कहा कि सभी अशुभ स्थान उसके लिये हैं तथा ऐसे अशुभ स्थानों की सूची बतलाई। लिंग पुराण के अ. २/४६ में भी अलक्ष्मी के वास योग्य स्थानों का उल्लेख किया गया है। अलक्ष्मी के चौदहवें पुत्र दुःसह के निवास योग्य स्थानों एवं व्यक्तियों का वर्णन विस्तारपूर्वक मार्कण्डेय पुराण के अ. ४७ में मंत्र संख्या ४३ से ९६ तक में किया गया है। ये सभी स्थान और व्यक्ति, जो दुःसह के लिये उपयुक्त बतलाये गये, वे अलक्ष्मी के लिये भी उपयुक्त माने गये हैं।

वे सभी स्थान और व्यक्ति, जो अधार्मिक, अनैतिक एवं अस्वच्छ हैं, वे देवी अलक्ष्मी को प्रिय हैं तथा जो स्थान और व्यक्ति धार्मिक, नैतिक एवं स्वच्छ हैं, वे सभी उसे अप्रिय हैं।

'लक्ष्मी-अलक्ष्मी' का विवाद एवं गंगा द्वारा उसका निर्णय

एक बार लक्ष्मी और अलक्ष्मी में परस्पर विवाद छिड़ गया कि दोनों में श्रेष्ठ कौन है? वे इस प्रश्न का निर्णय करवाने के लिये ब्रह्माजी के पास पहुँची। ब्रह्माजी ने स्वयं निर्णय न देकर, उन्हें गंगा के पास भेजा। ब्रह्माजी की बात मानकर वे दोनों भू-लोक में पहुँची और भूमि को भी साथ में लेकर गौतमी गंगा के समीप गईं। गंगा ने उनके आने का कारण जानकर और दोनों की दलीलों को सुनकर अपना निर्णय देते हुए कहा कि यह सारा चराचर लक्ष्मी से व्याप्त है एवं यह जगत लक्ष्मीमय है। जिस किसी में जो कुछ उत्कृष्टता दिखाई देती है, वह सब लक्ष्मीमय है। उससे रहित कोई भी वस्तु नहीं है। ऐसा कहने के बाद गंगा ने अलक्ष्मी से कहा कि तुम्हें लक्ष्मी से स्पर्धा करने में लज्जा आनी चाहिये और उसे चली जाने के लिये कहा।

किमत्र बहुनोक्तेन सर्वं लक्ष्मीमयं जगत्।
यस्मिन् कस्मिंश्च यत् किंचिदुत्कृष्टं परिदृश्यते।।
लक्ष्मीमयं तु तत्सर्वं तया हीनं न किंचन्।
अत्रमां सुन्दरी देवीं स्पर्धयन्ती न लज्जसे।।

- (ब्रह्म पुराण, अ. १३७/३७-३८)

देवी अलक्ष्मी का कुप्रभाव

महाभारत (वन पर्व) के अन्तर्गत महर्षि लोमश अधर्म से होने वाली हानि को बतलाते हुए कहते हैं कि लज्जा, संकोच और सदाचार से हीन एवं निष्फल व्रत का आचरण करने वाले असुरों को क्षमा, लक्ष्मी एवं स्वधर्म ने शीघ्र त्याग दिया। लक्ष्मी देवताओं के पास चली गई और अलक्ष्मी असुरों के यहाँ। अलक्ष्मी के आवेश से युक्त होने पर असुरों का चित्त दर्प और अभिमान से दूषित हो गया और उस दशा में उन दैत्यों और दानवों में कलि का प्रवेश हो गया। जब वे दानव अलक्ष्मी से संयुक्त हो गये तब उनका विनाश हो गया।

लक्ष्मीस्तु देवानगमद लक्ष्मी सुरान् नृप।
तान लक्ष्मी समाविष्टान दर्पोपहत चेतसः।। (९४/१०)

देवी अलक्ष्मी के कुप्रभाव की तीव्रता

रामायण (अरण्य कांड) में कथित है कि अलक्ष्मी के अशुभ प्रभाव के कारण ही श्री

राम का राज्याभिषेक नहीं हो सका, उन्हें वन जाना पड़ा, सीताजी का हरण हुआ एवं जटायु की मृत्यु।

अलक्ष्मी का विनाशकारी प्रभाव इतना तीव्र होता है कि वह समुद्र को सुखा सकता है एवं प्रज्ज्वलित अग्नि को शीतल कर सकता है।

राज्यात् भ्रंशो वनवासा सीता नष्ट द्विजोहतः।
ई दृशीयं ममा लक्ष्मीः निर्दहेदपि पावकम्।।
सम्पूर्ण चेदद्य प्रतरेयं महोदधिम्।
सोऽपि नूनं ममालक्ष्म्या विशुष्येत सरितां पतिः।।

देवी अलक्ष्मी का स्वरूप

ऋग्वेद संहिता के 'अलक्ष्मी नाशन सूक्त' (१०/१५५) में देवी अलक्ष्मी के स्वरूप की परिकल्पना वर्णित है, तदनुसार देवी अलक्ष्मी टेढ़ी आँखों वाली है। उसके अंग-प्रत्यंग टेढ़े-मेढ़े हैं, वह मेढ़कों की भाँति टर्र-टर्र ध्वनि करती है। वह एक कूबड़ी बुढ़िया है। (अरायि काणे विकटे . . .)।

पद्म पुराण (स्वर्ग खंड, अ. ४१) के अनुसार देवी लक्ष्मी से पहले समुद्र-मंथन की प्रक्रिया में देवी अलक्ष्मी प्रकट हुई। इसी संदर्भ में अलक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन करते हुए, उसे श्याम वर्ण वाली, रक्ताभ आँखों वाली, विगत यौवना (वृद्धा), रूखे और गंदे केशों वाली कहा गया है। (ततः अलक्ष्मी समुत्पन्ना कालास्या रक्तलोचना। रुक्ष पिंगल केशी च जरतीं विभ्रति तनुम।। - ४१/३३)।

देवी अलक्ष्मी के विग्रह की परिकल्पना देवी लक्ष्मी के विग्रह की परिकल्पना से बिल्कुल विपरीत है। दोनों दो छोर हैं—एक सौंदर्य एवं सुरूपता का तो दूसरा भद्देपन और कुरूपता का।

अंशुमदभेदागम (४९वाँ पटल), जो प्रतिमा लक्षण संबंधी ग्रन्थ है, उसमें अलक्ष्मी (ज्येष्ठा देवी) के सगुण स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि देवी की दो भुजाएँ, दो नेत्र, विशाल कपोल, लम्बमान स्तन (नाभि तक लटकते स्तन), बड़ा पेट, मोटी-मोटी जाँघें, ऊँची उठी हुई नासिका, लम्बोष्ठ एवं स्याही जैसा कृष्ण वर्ण होना चाहिये। भद्रासन पर आसीन देवी के पैर सामने लटकते हुए दिखाना चाहिये। देवी की केश-राशि को गांठ मारकर बंधी हुई, ललाट पर तिलक, सिर पर मुकुट, दाहिने हाथ में

निलोत्पल पुष्प एवं बायाँ हाथ आसन पर रखा हुआ दिखाना चाहिये। लेकिन मूर्ति निर्माण में दाहिना हाथ अभय मुद्रा में और बायाँ जाँघ पर धरे भी दिखलाया जा सकता है। दाहिने हाथ में दंड और बायें में रस्सी (सूत्र) भी दिखलाये जा सकते हैं।

देवी का प्रतीक एवं वाहन

दैन्य एवं दुर्भाग्य की अधिष्ठात्री देवी का वाहन गधा (खर) है। देवी को खरारूढ़ा कहा गया है तथा उसकी ध्वजा पर कौआ प्रतीक रूप में दिखलाया जाता है। - (हिन्दू आईकोनोग्राफी, भाग-१ (अंश २), पृ. ३९३)।

ज्येष्ठा देवी के मंदिर

दक्षिण भारत में ज्येष्ठा देवी की पूजा-अर्चना का प्रचलन था, लेकिन आजकल नहीं है। अतः दक्षिण भारत के कुछ मंदिरों और गुफाओं में ऐसी मूर्तियाँ या अंकन हैं, जिन्हें ज्येष्ठा देवी की मूर्ति या अंकन माना जाता है; लेकिन ये उपरोक्त ज्येष्ठा देवी के सगुण स्वरूप के वर्णन से मेल नहीं खाते हैं। उत्तर भारत की शीतला देवी को ज्येष्ठा देवी का प्रति रूप कहा जा सकता है।

तमिलनाडु में तिरुप्परंकुनरम के उत्तरी गुफा समूह में देवी के स्वरूप का एक अंकन चट्टान पर किया हुआ मिला है, जिसे ज्येष्ठा देवी का अंकन कहा जाता है।

कांचीपुरम (तमिलनाडु) के कैलाश मंदिर में जो ज्येष्ठा देवी की मूर्ति मानी जाती है, उसके संबंध में यह मान्यता है कि चोल वंश के राजाओं द्वारा ज्येष्ठा दैवी को अमंगल के निवारणार्थ कुलदेवी के रूप में पूजने की प्रथा थी। - (कल्ट ऑफ शक्ति इन तमिलनाडु, टी. बी. महालिंगम्, पृ. २९३)।

अलक्ष्मी के निवारणार्थ करणीय उपाय

अलक्ष्मी दुर्भाग्य, दरिद्रता एवं अमंगल की प्रतीक है; अतः इसके कुप्रभाव से बचने के लिये कई प्रकार के उपायों का प्रावधान शास्त्रों में किया गया है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं —

(१) ज्येष्ठा कल्प

बौधायन गृह्य सूत्र के ज्येष्ठा पूजा के अध्याय के अनुसार भ्राद्रपद मास के अनुराधा नक्षत्र में ज्येष्ठा कल्प करना चाहिये। इस सूत्र में इस कल्प को करने की विधि का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है।

(२) ज्येष्ठा व्रत

भ्रादपद शुक्ल अष्टमी ज्येष्ठा नक्षत्र के साथ हो तो उसमें ज्येष्ठा देवी (अलक्ष्मी) का अनेक उपचारों से पूजन करना चाहिये। इससे दरिद्रता का नाश होता है। इस व्रत की सविस्तार विधि व्रतराज ग्रन्थ में दी गई है। ऐसा विधान है कि यह व्रत सुहागिन महिलाओं को करना चाहिये। (व्रतराज, पृ. ३८०)

(३) जाप

लिंग पुराण (२/७) के अनुसार 'ॐ नमो नारायणाय' मंत्र का जाप करना चाहिए।

(४) गंगा स्नान

ब्रह्म पुराण में 'लक्ष्मी तीर्थ' (अ. १३७) का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है कि दरिद्रा से दुःख तभी तक होता है, जब तक गंगा नदी की सेवा नहीं की जाती (ततः प्रभूति तत् तीर्थमलक्ष्मी नाशन शुभम्। - ३९)।

(५) लोकाचार

अलक्ष्मी के निवारणार्थ कल्प, व्रत, जप एवं स्नान आदि के अतिरिक्त कई प्रथाएँ जन साधारण में पुरातन काल से प्रचलित हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं —

(१) गाय के गोबर की अलक्ष्मी की मूर्ति बनाकर पूजा करना

बंगाल में अलक्ष्मी पूजन का प्रचलन अधिक है। वहाँ कार्तिक अमावस्या यानी दीपावली के दिन सायंकाल अलक्ष्मी की पूजा की जाती है। बंगाल में दीपावली के दिन लक्ष्मी-पूजा नहीं की जाती, अपितु बड़ी धूमधाम से काली पूजा की जाती है। दीपावली की रात में काली पूजा करने के पहले सायंकाल में गाय के गोबर की एक अलक्ष्मी-मूर्ति बनाई जाती है। उसे घर के द्वार पर घर की ओर पीठ करके स्थापित किया जाता है। सूर्यास्त के समय पुरोहित अलक्ष्मी की पूजा अपने बाएँ हाथ से करते हैं। पूजा सम्पन्न होने के बाद उस मूर्ति को किसी तालाब में विसर्जित कर दिया जाता है। अलक्ष्मी पूजा और उसके विसर्जन के बाद दीपक जलाए जाते हैं और काली-पूजा की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। - (अलक्ष्मी, डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, नवभारत टाइम्स, दिनांक ९/१०/९८)

(२) सूप फटक-फटककर अलक्ष्मी को घर से निकालना

दीपावली उत्सव के अवसर पर नरक चतुर्दशी (कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी) की पूजा को अलक्ष्मी पूजा माना जाता है। उस दिन सायंकाल घर की बाहरी नाली पर दीपक जलाया जाता है और रात के बाद उषा काल होने पर घर की महिलाएँ सूप फटक-फटक कर 'इस्सर आवें, दलिद्दर जाँय' कहती हुई घर के बाहर तक सूप फटकती हैं। वस्तुतः सूप फटककर वे अलक्ष्मी से घर से जाने की प्रार्थना करती हैं। अलक्ष्मी पूजा वस्तुतः अलक्ष्मी को बिदा करने का प्रयत्न करना है।

सूप फटक-फटक कर दरिद्रता को घर से निकालने वाली यह परम्परा पुरातन है। भविष्य पुराण में इस प्रथा का उल्लेख मिलता है, जहाँ कहा गया है कि रात्रि बीत जाने पर जब प्रायः लोग आधी नींद में नेत्र बंद किए लेटे होते हैं, नगर की महिलाएँ सूप को डंडियों से बजाती हुई, अपने-अपने घरों से हँसी-खुशी से अलक्ष्मी को निकालती हैं।

एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्ध लोचने तावन्नगरे नारीमिः शूर्प –
डिंडिभिवादनैः निष्कास्यते प्रहृष्टाभिः अलक्ष्मी स्व गृहंगणात्।।

●

देवी लक्ष्मी और अन्य देव-गण

भगवान विष्णु के साथ उनकी पत्नी / शक्ति के रूप में स्थिरतापूर्वक रहने के पूर्व वैदिक काल के परवर्ती काल में देवी लक्ष्मी भिन्न-भिन्न पुरुषवाची देवों से सम्बद्ध रही थी। इन पुरुषवाची देवताओं से वे किस रूप में सम्बद्ध रही, इसका स्पष्टीकरण स्वयं देवी लक्ष्मी ने करते हुए कहा है कि "मैं मूर्तिमती एवं अनन्य चित्त होकर तो भगवान नारायण में ही सम्पूर्ण भाव से निवास करती हूँ, क्योंकि उनमें महान धर्म संनिहित है। मैं नारायण के अतिरिक्त अन्यत्र शरीर से नहीं निवास करती हूँ। केवल भाव रूप में ही अन्यत्र रहती हूँ। जिस पुरुष में भावना द्वारा निवास करती हूँ, वह धर्म, यश, धन और काम से सम्पन्न होकर सदा बढ़ता रहता है।

नारायणे त्वेकमना वसामि सर्वेण भावेन शरीरभूता।
तस्मिन् हि धर्मः सुमहान् निविष्टो ब्रह्मण्यता चात्र तथा प्रिय त्वम्।।
नाहं शरीरेण वसामि देवि नैवं मया शक्यमिहाभिधातुम्।
भावेन यस्मिन् निवसामिपुंसि स वर्धते धर्मयशोऽर्थकामैः।।

- (महाभारत, १३/११/२०-२१)

देवी लक्ष्मी का भगवान विष्णु के अतिरिक्त जिन पुरुषवाची देवगण से घनिष्ठ आत्मीय संबंध रहा है या है, वे हैं—(१) धनाध्यक्ष कुबेर, (२) चंद्रदेव, (३) दैत्यराज बलि, (४) देवराज इन्द्र, (५) देवताओं के सेनापति कार्तिकेय एवं (६) श्री गणेश।

देवी लक्ष्मी का देवी अलक्ष्मी (ज्येष्ठादेवी) के अतिरिक्त जिन स्त्रीवाची देवगणों से घनिष्ठ और आत्मीय संबंध रहा है या हैं, वे हैं — (७) दुर्गा देवी, (८) सरस्वती देवी एवं (९) भू-देवी।

(१) धनाध्यक्ष कुबेर और देवी लक्ष्मी

धनाध्यक्ष कुबेर तथा धन की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी का संबंध परस्पर घनिष्ठता का होना स्वाभाविक है और संभवतः यह संबंध कुबेर को देवता के रूप में मान्यता मिलने के पहले से है, क्योंकि देवी लक्ष्मी संबंधी प्राचीनतम सूक्त 'श्रीसूक्त' में कुबेर को देवता न कहकर 'देवसखा' कहा गया है। श्रीसूक्त के जिस मंत्र (सं. ७) में ऐसा कहा गया है, वह इस प्रकार है —

उपैतु मां देव-सखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतो ऽस्मि राष्ट्रे ऽस्मिन कीर्तिमृद्धिं ददातु मे।।

इस मंत्र के द्वारा प्रार्थी देवी से याचना करता है कि मुझे देव-सखा कुबेर, उनके मित्र मणिभद्र तथा दक्ष प्रजापति की कन्या कीर्ति प्राप्त हो यानि मुझे धन और यश की प्राप्ति हो।

देवसखा कुबेर की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने कुबेर (वैश्रवण) को अमरत्व प्रदान किया तथा धन का स्वामी और लोकपाल बनाया (अमरत्वं धनेशत्वं लोकपाल त्वमेव च — महाभारत, वनपर्व, अ. २७४/१५)। अन्यत्र ऐसा भी उल्लेख है कि भगवान महेन्द्र ने कुबेर को समस्त यक्षों एवं धन का अधिपति बनाया (कुबेरं सर्वयक्षाणां धनानां च प्रभुं तथा - महाभारत, उद्योग पर्व, अ. १६/३३)। कुबेर तीर्थ के माहात्म्य को प्रतिपादित करते हुए, महाभारत में कहा गया है कि यक्षों के सम्राट कुबेर को धनाध्यक्ष पद प्रदान किया गया। (महाभारत, शल्य पर्व, अ. ४७/२५-२८)

रामायण-महाभारत और पौराणिक साहित्य में अनेक ऐसे संदर्भ और उल्लेख मिलते हैं, जिनसे कुबेर देवता एवं देवी लक्ष्मी के आत्मीय संबंध व्यक्त होते हैं।

रामायण

रामायण में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। कहीं यह शब्द देवी के लिये प्रयुक्त हुआ है तो कहीं ऐश्वर्य या वैभवता प्रदर्शित करने के लिये।

रामायण के सुंदर कांड के नवम अध्याय में इस प्रकार कहा गया है —

या हि वैश्रणवणे लक्ष्मीवां चंद्रे हरिवाहने।
सा रावण.गृहे रम्या नित्यमेवानपायिनी।। - (९/८)

अर्थात् कुबेर, इन्द्र एवं चन्द्रमा के यहाँ जो लक्ष्मी वास करती है, वे ही प्रमुखतया रावण के घर में स्थिर होकर रहती थी। इस श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द से तात्पर्य देवी लक्ष्मी से नहीं है, अपितु यहाँ लक्ष्मी शब्द का अर्थ है — ऐश्वर्य / सम्पदा।

सीताजी को खोजते हुए, जब हनुमानजी रावण के महल, वाहन आदि को देखते हैं तो रावण के अधिकार में कुबेर के पुष्पक विमान को पाते हैं, जिसकी भित्ति पर गज-लक्ष्मी चित्रित है, जिसका वर्णन वे इस प्रकार करते हैं —

नियुज्यमानाश्च गजाः सुहस्ताः सकेशरापूचोत्पल पत्रहस्ता।
बभूवदेवी च कृता सुहस्ता लक्ष्मीस्तथा पद्मिनी पद्महस्ता।।
- (सुंदरकाण्ड, ७/१४)

भावार्थ : उस विमान के कमल-मंडित सरोवर में ऐसे हाथी बनाये गये थे, जो लक्ष्मी के अभिषेक कार्य में नियुक्त थे। उनकी सूंड बड़ी सुंदर थी। उनके अंगों में कमलों के केशर लगे हुए थे तथा उन्होंने अपनी सूंडों में कमल-पुष्प धारण किये थे। उनके साथ ही वहाँ तेजस्विनी लक्ष्मी देवी की प्रतिमा भी विराजमान थी, जिनका उन हाथियों द्वारा अभिषेक हो रहा था। उनके हाथ बड़े सुंदर थे, उन्होंने अपने हाथ में कमल-पुष्प धारण कर रखा था।

महाभारत

कुबेर-सभा का वर्णन करते हुए नारद कहते हैं —

सदा भगवती लक्ष्मीस्तत्रैव नलकूबरः।
अहं च बहुशस्तस्यां भवन्त्यन्ये च मद्विधा।।
- (सभा पर्व, १०/१९)

अर्थात् उस सभा में देवी लक्ष्मी, नलकूवर तथा मैं (नारद) और मेरे जैसे अन्य उपस्थित रहते हैं। इस कथन का तात्पर्य यही है कि कुबेर-सभा में देवी लक्ष्मी भी आती-जाती थीं।

'वन-पर्व' के अध्याय १६८ में अर्जुन स्वर्गलोक का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मुझे राज्य-लक्ष्मी से सम्पन्न नर-वाहन कुबेर ने भी दर्शन दिये —

एतस्मिन्नेव काले तु कुबेरो नर वाहनः।
दर्शयामास मां राजँल्लक्ष्म्या परमयायुतः।। - (१६८/१३)

सभा पर्व के अ. १७ में मगध-नरेश बृहद्रथ का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा है कि बृहद्रथ तेज में सूर्य, क्षमा में पृथ्वी, क्रोध में यमराज और श्री (सम्पन्नता) में कुबेर के समान है।

तेजसा सूर्य संकाशः क्षमया पृथिवीसमः।
यमान्तक समः क्रोधे श्रिया वैश्रवणोपमः।। - (१७/१५)

नारद पुराण

इस पुराण में जय-होम की विधि संबंधी मंत्र में कहा गया है कि वाम कर्ण के अग्र-भाग में लक्ष्मी सहित कुबेर का न्यास करना चाहिये (श्रिया धनपतिं न्यस्या वामकर्णाग्रके पुनः। - ८४/१२)। यह निर्देश लक्ष्मी का कुबेर की पत्नी होने का सूचक माना जाता है।

मार्कण्डेय पुराण

इस पुराण में आठ निधियों के स्वरूप आदि की व्याख्या करते हुए 'पद्मिनी विद्या' का उल्लेख किया गया है। 'पद्मिनी विद्या' ऐसी विद्या है, जो सब प्रकार के भोगों को सम्पादित करने वाली विद्या मानी गई है (या तु सा पद्मिनी नाम विद्या भोगोपपादिका - ६५/२)। इन आठ निधियों की अधिष्ठात्री देवता है — देवी लक्ष्मी (पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मी स्तस्याश्च देवता। तदाधारश्च निधयस्तन्मे निगदत शृणु। - ६५/४)। निधियों की देवता लक्ष्मी है तथा कुबेर निधिपति हैं। गरुड़ पुराण में भी कुबेर को निधिपति कहा गया है (अ. ५३)। अतः इनमें परस्पर घनिष्ठ संबंध स्वाभाविक है।

मार्कण्डेय पुराण के अविक्षित चरित वर्णन शीर्षक अध्याय के अनुसार अविक्षित की माता वीरा ने लक्ष्मी की पूजा निधिपालगण (कुबेर) के साथ की थी (निधिनामप्यशेषाणां निधिपालगणस्य च। लक्ष्म्याश्च परया भक्त्या यतवाक्काय मानसा।। - १२२/१०)।

कुबेर-लक्ष्मी पूजा

दीपावली के अवसर पर कुबेर के साथ लक्ष्मीजी की पूजा करने की भी एक लोक प्रचलित रीति है (निर्णय-सिन्धु, २रा खण्ड, पृ. ७१४)।

पुरातात्विक साक्ष्य

कुबेर और लक्ष्मी के संयुक्त अंकन की प्राचीन मुद्राएँ एवं मूर्तियाँ भी प्राप्त हुईं है, जिनमें से कतिपय अंकन इस प्रकार हैं —

(क) बसाढ़ से प्राप्त मुद्राएँ

इन मुद्राओं पर थैली पकड़े दो बौनों के बीच में लक्ष्मी देवी अंकित हैं। इन बौनों को कुछ विद्वान कुबेर मानते हैं। - (एक्सकवेशन ऐट बसाढ़ - टी. बलाख) और कुछ यक्ष मानते हैं। - (डेव्हलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी - जे. एन. बनर्जी)

(ख) भरहुत

भरहुत स्तूप की प्राचीर पर यक्ष-यक्षी की उत्कीर्ण आकृति के नाम कुबेर-लक्ष्मी उल्लिखित हैं। यह अंकन ईसा पूर्व दूसरी शती का माना जाता है। (यक्ष, भा. १, पृ. ५, ले. ए. के. कुमार स्वामी)

(ग) मथुरा से प्राप्त कुषाण कालीन प्रतिमाएँ

(i) उक्त प्रतिमाओं में एक प्रतिमा में लक्ष्मी कमल, भद्रा फल एवं हारीति शिशु लिये कुबेर के साथ अंकित है। (ए केटेलोग ऑफ दि ब्राह्मेनिकल इमेजेज इन मथुरा आर्ट, ले. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. १०)

(ii) इसी काल की एक अन्य प्रतिमा में कुबेर पात्र धारण किये हैं तथा दो देवियाँ उनके सामने बैठी हैं। इन दो देवियों में से एक के हाथ में कमल है, अतः इसे लक्ष्मी माना जाता है। (उपरोक्त सं. सी. ३०)

(iii) प्रारम्भिक कुषाण काल के एक शिला फलक पर अर्द्धनारीश्वर शिव, विष्णु, गज-लक्ष्मी एवं कुबेर का अंकन है। (उपरोक्त, पृ. ९)

उपरोक्त पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर धनाध्यक्ष कुबेर एवं धनाधिष्ठात्री लक्ष्मी का घनिष्ठ संबंध व्यक्त होता है।

देवी लक्ष्मी कुबेर की पत्नी के रूप में

उपरोक्त पौराणिक संदर्भों एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि धनाध्यक्ष कुबेर एवं धनाधिष्ठात्री लक्ष्मी में परस्पर घनिष्ठ मैत्री संबंध था, लेकिन यह संबंध पति-पत्नी का था, यह प्रश्न विवादास्पद है। डॉ.

सुवीरा जायसवाल ने कुबेर-लक्ष्मी का संबंध पति-पत्नी का माना है। (दि ऑरिजिन एण्ड डेव्हलपमेंट ऑफ वैष्णवीजम (अंग्रेजी में), पृ. १०२); परन्तु पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का यह मत है कि कुबेर के साथ देवी लक्ष्मी का अंकन इस बात का द्योतक है कि देवी लक्ष्मी के देवत्व के विकास के किसी विशिष्ट काल खंड में देवी लक्ष्मी कुबेर की पत्नी मानी जाती थी। डॉ. अग्रवाल के इस मत का समर्थन डॉ. उपेन्द्रनाथ धल ने भी किया है। (गोडेस लक्ष्मी (अंग्रेजी में), पृ. ९१)। अतः देवी लक्ष्मी संभवतः किसी विशेष काल खंड में कुबेर-पत्नी मानी गई होगी, परन्तु सर्वदा एवं सतत नहीं।

(२) चंद्रमा (सोम) और देवी लक्ष्मी

देवी लक्ष्मी और चंद्रमा (सोम) के घनिष्ठ संबंध का प्राचीनतम उल्लेख हमें ब्रह्मपुराण (९/१३-१६), हरिवंश पुराण (१/२५/२३-२७), ब्रह्माण्ड पुराण (२/६५/२३-२६) एवं वायु पुराण (९०/२२-२५) के वंशानुचरित में चन्द्रमा की उत्पत्ति और उसके द्वारा किये गये राजसूय यज्ञ के विवरण में मिलता है। तदनुसार अत्रि के पुत्र चंद्रमा को ब्रह्माजी ने बीज, औषधि, ब्राह्मण और जल का राजा बनाया तथा ऐसा होने पर दक्ष ने अपनी २७ कन्याओं का विवाह चन्द्रमा से कर दिया। चन्द्रमा ने राज्याभिषेक एवं विवाह के पश्चात् राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसमें अनेक ऋषि-मुनियों के साथ देवी-देवताओं ने भी भाग लिया। इन देवी-देवताओं में सिनीवली (प्रतिपदा तिथि की अधिष्ठात्री देवी), कुहू (अमावस्या तिथि की अधिष्ठात्री देवी), द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति और लक्ष्मी — ये नौ देवियाँ भी थीं, जो चन्द्रमा की सेवा में संलग्न थीं।

तं सिनी च कुहुश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः।
कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे।। - (ब्रह्म., ९/१६)

उक्त पुराणों के अनुसार ये नौ देवियाँ स्वतंत्र देवियाँ थीं, लेकिन मत्स्य पुराण (२३/२४-२६) एवं पद्मपुराण (२/५/१२/२४-२६) के अनुसार राज्याभिषेक के पश्चात् चंद्रमा के सौंदर्य से आकर्षित होकर ये नौ देवियाँ अपने-अपने पतियों को छोड़कर, चन्द्रमा की सेवा में लग गईं।

उक्त उल्लेख में सिनी और कुहू को छोड़कर बाकी लक्ष्मी (सम्पति तथा ऐश्वर्य) के साथ जो विभिन्न देवियाँ यथा कीर्ति (यश), द्युति (प्रकाश), प्रभा (कान्ति), धृति (धैर्यता), पुष्टि (पोषणता), वसु (उपकारिता) का उल्लेख है, वे भाव-वाचक संज्ञाओं

का मानवीकरण है। अमूर्त का मूर्तरूप है, जो प्रतीकात्मक है; जिसका तात्पर्य यही है कि राजसूय यज्ञ के उपरान्त चन्द्रमा यश, ऐश्वर्य, समृद्धि आदि गुणों से सम्पन्न हो गये।

रामायण (५/९/८) में ऐसा उल्लेख मिलता है कि रावण के पास लक्ष्मी उसी प्रकार से स्थिर होकर रहती थीं जैसे कुबेर, चंद्रमा और इन्द्र के पास। यहाँ लक्ष्मी का तात्पर्य धन-सम्पत्ति से प्रतीत होता है।

चन्द्रमा (सोम) वनस्पतियों का देवता भी माना जाता है। श्रीसूक्त में श्री लक्ष्मी को उर्वरता प्रदान करने वाली देवी भी कहा गया है ('गंधद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम')। उर्वरता से ही वनस्पतियों की उत्पत्ति तथा संवर्धन होता है। अतः इन दोनों में परस्पर आत्मीय संबंध होना स्वाभाविक है।

(३) दैत्यराज बलि और देवी लक्ष्मी

देवासुर संग्राम में दानवों के राजा बलि ने देवताओं को पराजित कर दिया तथा तीनों लोकों पर राज्य करने लगे। बलि के पराक्रम से प्रभावित हो, असुरों ने उन्हें दैत्यराज पद पर अधिष्ठापित कर दिया। दैत्यराज बलि के राज्य सिंहासन पर बैठने के बाद उसके पितामह प्रह्लाद ने स्वयं उपस्थित हो उसे राजनीति आदि का ज्ञान प्रदान किया। ब्रह्म पुराण के अनुसार दैत्यराज बलि अपने पितामह के निर्देशानुसार जब धर्मानुकूल राज करने लगे तब बलि के शौर्य एवं सदाचारी स्वभाव से प्रभावित हो, देवी लक्ष्मी हाथ में कमल-पुष्प धारण किए दैत्यराज बलि के समीप स्वयं आई।

अथाम्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्मान्तर प्रभा।
पद्मोद्यतकरादेवी वरदां सुप्रवेशिनी।
- (वामन पु., २३/१३)

और कहा— "हे बलवानों में श्रेष्ठ दैत्यराज बलि! देवराज के पराजित हो जाने पर, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा मंगल हो; क्योंकि तुमने संग्राम में पराक्रम दिखाकर देवताओं के राज्य को जीत लिया है। इसलिये तुम्हारे श्रेष्ठ बल को देखकर, मैं स्वयं आई हूँ।"

बले बलवतां श्रेष्ठ दैत्यराज महाद्युते
प्रीताऽस्मितव भद्रं ते देवराज पराजये।
यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराज्यं पराजितम्
दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता।।
- (वामन पुराण, २३/१४-१५)

दैत्यराज बलि से ऐसा कहने के बाद देवी लक्ष्मी उसमें प्रविष्ट हो गई। इतना ही नहीं, अन्य देवियाँ भी — जैसे ह्री, कीर्ति, द्युति, प्रभा, धृति आदि तथा अप्सराएँ भी दैत्यराज की सेवा में उपस्थित हुईं।

दैत्यराज बलि में राजा के सभी गुण विद्यमान थे। अपने सुशासन एवं दानी स्वभाव के कारण दैत्यराज बलि ने त्रिलोकी में अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया तथा तीनों लोक समृद्ध हो गये। बिना जोते-बोये ही धरती अन्न-धान्य-फल-फूल उत्पन्न करती थी। गायें भरपूर दूध देती थीं। - (महाभारत, शांति पर्व, अ. २१६)।

देवगण स्वर्ग से निष्कासित एवं श्रीविहीन हो गये थे, अतः अपने विगत गौरव को पुनः प्राप्त करने के उद्देश्य से भगवान विष्णु की शरण में जाकर उनसे अपनी व्यथा-कथा कही। दैत्यराज बलि को पराजित करने के लिये भगवान विष्णु ने कश्यप मुनि की पत्नी अदिति के गर्भ से उनके पुत्र के रूप में अवतार लिया। इस अवतार में भगवान विष्णु ने बौने रूप में जन्म लिया था। अतः उन्हें वामन कहा जाता है। जब दैत्यराज बलि अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे, तब ब्राह्मण का रूप धारण कर भगवान विष्णु वामन रूप में वहाँ पहुँच गये। दैत्यराज बलि दान देने के लिये प्रसिद्ध थे, उनके द्वार से कोई भी खाली हाथ नहीं लौटता था। भगवान वामन ने बलि से तीन पग भूमि दान में माँगी, जिसे दैत्यराज ने देने का वचन दे दिया। वचन देते ही वामन त्रिविक्रम रूप धारण कर विराट बन गये और अपना सर्व देवमय स्वरूप दिखलाया। विराट रूप धारी भगवान वामन (विष्णु) ने अपने तीन पगों में तीनों लोकों को नाप लिया और दैत्यराज बलि को सुतल नामक पाताल में निवास हेतु भेज दिया।

सुतलं नाम पातालमधस्ताद वसुधा तलात्।
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना।
- (वा. पु., अ. ३१/६६)

दैत्यराज बलि की उदारता से भगवान विष्णु ने प्रसन्न हो, जब उनसे वर मांगने के लिये कहा, तब दैत्यराज बलि ने भगवान विष्णु से वर मांगा कि प्रति वर्ष धरती पर उसका राज्य तीन दिनों तक रहे तथा देवी लक्ष्मी भी उनके साथ हो, जिसे भगवान विष्णु ने स्वीकार किया। दैत्यराज बलि को समर्पित तीन दिन हैं — कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी, अमावस्या एवं शुक्ल प्रतिपदा। इन तीन दिनों पर प्रति वर्ष दैत्यराज बलि देवी लक्ष्मी के साथ पृथ्वी पर आते हैं। कार्तिक माहात्म्य में वर्णित है कि जो व्यक्ति इन

तीन दिनों में अपने घरों में दीप जलाकर प्रकाश करते हैं, देवी लक्ष्मी सदैव उनके यहाँ निवास करती हैं। (स्कंद पुराण, विष्णु खंड तथा देवी भागवत, ८/१९/१५)।

(४) देवराज इन्द्र और देवी लक्ष्मी

देवराज इन्द्र और देवी लक्ष्मी का आत्मीय संबंध प्राचीन काल से है। ऋग्वेद के परिशिष्ट सूक्त 'श्रीसूक्त' में, जो श्री देवी (लक्ष्मी देवी) का प्राचीनतम सूक्त है, उसके भाष्य में देवी का नाम 'इन्दिरा' भी है, जो देवी के देवराज इन्द्र से सम्बद्ध होने का सूचक है। देवराज इन्द्र और देवी लक्ष्मी के संबंध बनते हैं, बिगड़ते हैं, फिर बनते हैं; इस प्रकार इन दोनों के संबंधों में स्थिरता नहीं है।

महाभारत में देवराज इन्द्र एवं देवी लक्ष्मी संबंधी कई पुराकथाएँ हैं, जो इस प्रकार हैं —

(१) शील का माहात्म्य

'शील' के माहात्म्य को समझाते हुए, पितामह भीष्म ने दैत्यराज प्रह्लाद और ब्राह्मण वेशधारी देवराज इन्द्र की कथा युधिष्ठर को सुनाते हुए कहा कि — एक बार देवराज इन्द्र ब्राह्मण वेश धारण कर दैत्यराज प्रह्लाद के पास उनकी सेवा करने गये और उन्हें अपने द्वारा की गई सेवा से प्रसन्न कर दिया। अतः दैत्यराज प्रह्लाद ने ब्राह्मण को वर मांगने को कहा। ब्राह्मण ने दैत्यराज से उनके शील को मांग लिया, जिसे दैत्यराज ने देना स्वीकार कर लिया। वर देने के फलस्वरूप शील दैत्यराज के शरीर से चला गया। शील के चले जाने पर धर्म, सत्य, सदाचार एवं बल चले गये। इन सबके चले जाने के बाद दैत्यराज प्रह्लाद के शरीर से एक प्रभामयी देवी प्रकट हुई, जिसने दैत्यराज को अपना परिचय देते हुए कहा कि "मैं लक्ष्मी हूँ और जहाँ शील, धर्म, सत्य, सदाचार एवं बल है, वहीं मैं रहती हूँ। ब्राह्मण के वेश में, जिन्होंने वर मांगा वे देवराज इन्द्र थे, अतः मैं भी उन्हीं के पास जाती हूँ।" इस कथा के अनुसार शील ही धर्म, सत्य, सदाचार, बल एवं लक्ष्मी का आधार है, मूल है।

धर्मः सत्यं तथा वृतं बलं चैव तथाप्यहम्।
शील मूला महाप्रज्ञ सदा नास्त्यत्र संशय।।

- (शांति पर्व, अ. १२४/६२)

(२) जहाँ दुराचरण, वहाँ लक्ष्मी नहीं

एक बार देवराज इंद्र एवं देवर्षि नारद गंगा तट पर बैठे जब वार्तालाप कर रहे थे, तब उन्होंने भगवान विष्णु के विमान से उतर कर एक देवी को अपनी ओर आते देखा।

उस देवी ने उनके समीप आकर अपना परिचय देते हुए कहा कि "मैं लक्ष्मी हूँ और दैत्यों के दुराचरण के कारण मैं उन्हें त्यागकर देवराज के पास स्वयं आई हूँ। देवराज एवं देवर्षि ने देवी का अभिनन्दन किया और देवी लक्ष्मी को अपने साथ स्वर्गलोक की राजधानी अमरावती ले गये तथा देवी लक्ष्मी के शुभागमन से सभी आनंदित एवं प्रसन्न हो गये। (शांति पर्व, अ. २२८)

(३) देवी लक्ष्मी पृथ्वी, जल, अग्नि एवं सत्पुरुषों में प्रतिष्ठित

महाभारत के शांति पर्व के अ. २२५ में इंद्र-लक्ष्मी का संवाद है। यह संवाद उस समय हुआ, जब बलि राजा को त्याग कर देवी लक्ष्मी देवराज इंद्र के पास आईं। देवराज ने जब देवी लक्ष्मी से सदा रहने का आग्रह किया, तब यह निश्चय हुआ कि देवी अपने को चार भागों में विभक्त कर रहे। तदनुसार देवी ने अपना प्रथम पद पृथ्वी पर, द्वितीय पद जल में, तृतीय पद अग्नि में तथा चतुर्थ पद सत्पुरुषों में स्थापित किया। इस प्रकार सम्पूर्ण भूतों में देवी को स्थापित कर, सब ओर से देवराज ने देवी की रक्षा की।

(४) पाण्डव पूर्व जन्म में पंचेन्द्र एवं द्रौपदी लक्ष्मी

पाँच पुरुषों से द्रौपदी के विवाह को उचित ठहराने के उद्देश्य से व्यासजी ने द्रुपद को पाण्डवों तथा द्रौपदी के पूर्व जन्म की कथा सुनाते हुए कहा कि "ये पाँच पाण्डव पहले इन्द्र (पंचेन्द्र) रह चुके हैं तथा दिव्य-रूपा द्रौपदी स्वर्गलोक की लक्ष्मी है।" (लक्ष्मीश्चैषां पूर्वमेवोपदिष्टा, भार्या यैषा द्रौपदी दिव्यरूपा। - महाभारत, आदि पर्व, अ. १९६/३५)

(५) दुर्वासा-शाप एवं लक्ष्मी द्वारा इन्द्र का त्याग

जब देवी लक्ष्मी देवराज इंद्र के पास थी, उस समय एक घटना ऐसी घटी कि जिससे महर्षि दुर्वासा ने देवराज इन्द्र को शाप दे डाला कि तुम्हारे अधिकार में स्थित तीनों लोकों की लक्ष्मी शीघ्र ही अदृश्य हो जायेगी। महर्षि के शाप के कारण देवी लक्ष्मी क्षीर-सागर में लीन हो गई। स्कंद पुराण में कहा गया है —

पुरा दुर्वासासः शापाद गतैश्वर्य पुरन्दरे।
ममस्थु क्षीर जलधिं ब्रह्माद्याः ससुरासुराः।। - (२/३/८/३०)

जब देवताओं एवं दैत्यों ने एकजुट होकर समुद्र-मंथन किया, उस समय देवी लक्ष्मी पुनः प्रकट हुई और तत्पश्चात् भगवान विष्णु के साथ ही रहती है।

(६) कौमुदी-महोत्सव

कौमुदी-महोत्सव (शरद पूर्णिमा) के अवसर पर देवी लक्ष्मी और देवराज इंद्र को एक साथ ऐरावत पर प्रतिष्ठित कर, पूजा करने का विधान है, (निर्णय-सिन्धु, खंड-२, पृ. ६०) जो दोनों के घनिष्ठ संबंध का द्योतक है।

(५) कार्तिकेय (स्कंद) और देवी लक्ष्मी

देवताओं के सेनापति कुमार कार्तिकेय (स्कंद) और देवी लक्ष्मी की सम्बद्धता का उल्लेख महाभारत एवं कई पुराणों में मिलता है। ऐसे पौराणिक उल्लेखों के अतिरिक्त प्राचीन मुद्राओं पर भी दोनों का एक साथ अंकन इन दोनों के मैत्री संबंध को व्यक्त करते हैं।

तारकासुर का वध करने के लिये देवराज इंद्र ने छह मुखों वाले देवता कार्तिकेय (स्कंद) को देवताओं के सेनापति पद पर प्रतिष्ठित किया और उसका विवाह देवसेना से किया गया। उस समय शौर्य-सम्पन्न एवं अलंकारों से सज्जित सौंदर्यशाली कुमार कार्तिकेय की सेवा में कमल-सदृश कान्ति वाली श्री (लक्ष्मी) स्वयं उपस्थित हुई और मूर्तिमती श्री द्वारा सेवित यशस्वी कुमार कार्तिकेय उस समय पूर्णमासी के चन्द्रमा की भाँति शोभित थे।

अभजत पद्मरूपा श्रीः स्वयमेव शरीरिणी।
श्रिया जुष्टः पृथुयशाः स कुमारवरस्तदा।
निषण्णो दृश्यते भूतैः पौर्णमास्यां यथा शशी।।

\- महाभारत, वनपर्व, २२९/३-४

इसी अध्याय में आगे कहा गया है कि कुमार कार्तिकेय की पटरानी देव-सेना को ब्राह्मण लोग षष्ठी, लक्ष्मी, आशा, सुखप्रदा, सिनीवीली, कुहू, सद्वृत्ति एवं अपराजिता कहते हैं। इसी प्रकार देवसेना एवं लक्ष्मी में एकरूपता निरूपित की गई है। षष्ठी देवी का संबंध विशेष रूप से नव-जात शिशुओं से है तथा इनके भी कार्तिकेय की भाँति छह मुख हैं। (उपरोक्त २२९/५०)

श्री पंचमी

पंचमी तिथि को कार्तिकेय (स्कंद) श्री (लक्ष्मी) से सेवित हुए, अतः इसी तिथि को 'श्री पंचमी' कहते हैं और षष्ठी को कृतार्थ हुए थे, इसीलिए षष्ठी महातिथि मानी गई है।

श्री जुष्टः पंचमीं स्कंदस्तस्माच्छ्री पंचमी स्मृता।
षष्ठ्यां कृतार्थोऽभूद् यस्मात् तस्मात् षष्ठी महातिथिः।।
- उपरोक्त २२९/५२

श्री पंचमी देवी लक्ष्मी को समर्पित एक उत्सव दिवस है। गृह्य सूत्रों में श्रीकल्प एवं षष्ठी-कल्प मनाने की विधि दी गई है। मानवगृह्य सूत्र (२/१३) के अनुसार षष्ठी-कल्प में 'श्रीसूक्त' का उपयोग करना चाहिये। इसके अनुसार देवी के नाम हैं — श्री, ह्री, लक्ष्मी, उप-लक्ष्मी, नंदा, हरिद्रा, षष्ठी, जया एवं कामा। सम्पत्ति-ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये षष्ठी की उपासना करने का निर्देश दिया गया है। इस प्रकार श्री (लक्ष्मी) एवं षष्ठी में एकरूपता प्रतिपादित की गई है (बोधायन गृह्य सूत्र, ३/५, ३/७)।

बंगाल की लोक-कथाओं में प्रायः देवी लक्ष्मी को कार्तिकेय (स्कंद) की पत्नी कहा गया है। (एस. बी. दास, श्रीराधा का क्रम विकास, पृ.-५३)

यौधेय कालीन मुद्राएँ

यौधेय नामक एक प्राचीन जन-जातीय गणराज्य की मुद्राओं में चांदी की एक ऐसी मुद्रा मिली है, जिसके मुख-भाग पर छह मुखी कार्तिकेय का भाला पकड़े तथा पृष्ठ भाग पर कमल-पुष्प पर खड़ी देवी लक्ष्मी का अंकन है। ये सिक्के ईस्वी सन् की द्वितीय शती के माने गये हैं। देवी के स्थान पर कुछ सिक्कों पर हिरण का अंकन है, जो देवी का प्रतीक माना जाता है। - (अलान - ब्रिटिश म्युजियम केटेलोग ऑफ कोईन्स ऑफ एन्सीयन्ट इंडिया, पृ. २७०)

(६) श्री गणेश और देवी लक्ष्मी

देवी लक्ष्मी समृद्धिदात्री एवं सौभाग्य प्रदात्री है तथा श्री गणेश विघ्नहर्ता एवं बुद्धिदाता है, अतः इन दोनों का समन्वय व्यक्ति के जीवन में सुख और सफलता की प्राप्ति के लिये आवश्यक है। देवी लक्ष्मी एवं श्री गणेश का एक साथ उल्लेख तो कतिपय धार्मिक रचनाओं में है, लेकिन इनके परस्पर दाम्पत्य-संबंध या अन्य प्रकार के किसी आत्मीय संबंध का उल्लेख इन रचनाओं में नहीं मिलता है।

हेरम्बोपनिषद्

यह १४ श्लोकों का एक लघु उपनिषद् है। 'हेरम्ब' श्री गणेश का पर्यायवाची नाम है तथा जिसका शाब्दिक अर्थ है — 'वह जो दीन या भक्त-जनों का पालन-कर्ता है।

इस उपनिषद् में श्री गणेश को सभी देवों का ईश और विघ्नेश कहा गया है। श्री गणेश के स्वरूप का वर्णन करते हुए, कथित है कि उन (श्री गणेश) का वर्णन सिन्दूरी है तथा लक्ष्मीजी इनके साथ है और इनका मुख गज का है तथा इनके चार भुजायें हैं (लक्ष्मी सहायो ऽद्वय कुंजराकृतिश्चतुर्भुजश्चन्द्र कला कलापः। ६)। लेकिन इस उपनिषद् में किसी ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, जिससे दोनों के परस्पर संबंध का पता लग सके।

प्राणतोषिणी

तंत्र-शास्त्र के अन्तर्गत शाक्त उपासना विधि के ग्रन्थ प्राणतोषिणी में श्री गणेश को सिद्धि लक्ष्मी के साथ बतलाया गया है (सिद्धि-लक्ष्मी समाश्लिष्ट पार्श्वमर्द्धेन्दु शेखरम्)। परन्तु यहाँ भी दोनों के परस्पर संबंध का कोई उल्लेख नहीं है।

मुद्गल पुराण

श्री गणेश संबंधी 'मुद्गल पुराण' में श्री गणेश के ३२ (बत्तीस) रूपों का वर्णन दिया गया है। विभिन्न प्रतिमाओं एवं चित्रों में न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ, इन्हीं वर्णनों के आधार पर शिल्पकार / चित्रकार श्री गणेश की प्रतिमाओं और चित्रों का अंकन करते हैं। श्री गणेश के उक्त बत्तीस रूपों में एक रूप का नाम है — 'लक्ष्मी-गणेश'। लेकिन मुद्गल पुराण में लक्ष्मी-गणेश का जो ध्यान वर्णित है, उसके अनुसार श्री गणेश के दोनों पार्श्वों में देवियाँ हैं, लेकिन इन दोनों के नाम नहीं दिये हैं।

'लक्ष्मी-गणेश' स्वरूप का एक अन्य ध्यान-श्लोक भी है, जिसके अनुसार श्री गणेश के तीन नेत्र हैं एवं चार भुजाएँ हैं। वे अपनी सूंड में स्वर्ण-कमल धारण किये हैं। उनका दाहिना एक हाथ अभय-मुद्रा में है तथा बायें एक हाथ में भग्न दंत है। बाकी के दो हाथों में शंख और चक्र हैं। लक्ष्मी उनकी गोद में बायीं ओर विराजमान है तथा देवी एक हाथ श्री गणेश पर धरे हैं तथा दूसरे में कमल-पुष्प धारण किये है। - (गणेश-कोश (अंग्रेजी, पृ. २४०)। लेकिन यहाँ भी कोई ऐसा शब्द नहीं है, जिससे इनका परस्पर संबंध ज्ञात हो सके।

लक्ष्मी-गणेश मंदिर

लक्ष्मी-गणेश के युगल रूप के कतिपय मंदिर भी है, जहाँ इनकी नियमित पूजा-अर्चना होती है।

हेदवी (महाराष्ट्र) का मंदिर

महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले के हेदवी जनपद में लक्ष्मी-गणेश का मंदिर है। यह पेशवा कालीन मंदिर है। इस मंदिर की श्री गणेश की प्रतिमा श्वेत पाषाण की है तथा भुजाएँ दस हैं। श्री गणेश की वाम जंघा पर सिद्ध-लक्ष्मी विराजमान हैं।

बड़ौदा (गुजरात) का मंदिर

श्री लक्ष्मी-गणेश का एक मंदिर बड़ौदा (गुजरात) में भी स्थित है। यहाँ श्री गणेश की प्रतिमा दस भुजी है तथा श्री गणेश की गोद में लक्ष्मी बैठी हैं।

दीवाली का श्री लक्ष्मी पूजन

कार्तिक अमावस्या (दीवाली का दिन) के दिन जब श्री लक्ष्मी का पूजन होता है, तब श्री गणेश और देवी लक्ष्मी की पूजा एक साथ होती है। सामान्यतः संयुक्त पूजा देवता और उनकी शक्ति या पत्नी के साथ ही होती है; जैसे भगवान विष्णु (नारायण) और देवी लक्ष्मी। लेकिन श्री गणेश और देवी लक्ष्मी की संयुक्त पूजा इस प्रकार की नहीं है, क्योंकि परम्परा के अनुसार देवता (पति) के बायीं ओर देवी / शक्ति (पत्नी) होती है। लेकिन श्री गणेश और देवी लक्ष्मी की संयुक्त पूजा, जो दीवाली पर होती है, उसमें श्री लक्ष्मी के बायीं ओर श्री गणेश को रखा जाता है। हिन्दू देवी-देवताओं में यह एकमेव ऐसा उदाहरण है कि भगवान विष्णु की पत्नी (श्री लक्ष्मी) श्री गणेश के साथ पूजित होती है। इस संयुक्त पूजन के संभवतः निम्नांकित कारण हैं —

(१) श्री गणेश और भगवान विष्णु में एकरूपता

ब्रह्म वैवर्त पुराण में श्री गणेश के प्राकट्य की एक कथा इस प्रकार है —

एक बार भगवान विष्णु ने शिवजी से कहा कि 'पार्वतीजी से एक ऐसा पुत्र जन्मेगा, जो समस्त बिघ्नों का नाश करेगा।' इतना कहकर भगवान विष्णु ने एक बालक का रूप धारंण किया और शिवजी के आश्रम में गये तथा पार्वतीजी की शय्या पर बाल रूप में लेट गये। पार्वतीजी ने जब उस बालक को देखा तब उन्होंने उसे अपना पुत्र मान लिया। एक बार इसी पार्वती-पुत्र को देखने के लिये शनैश्चर देव पधारे तथा उनकी दृष्टि बालक पर पड़ने से उसका मस्तक धड़ से अलग हो गया। जब यह बात भगवान विष्णु को ज्ञात हुई तब उन्होंने शीघ्र ही एक हाथी का सिर लाकर, बालक के धड़ से जोड़कर, उसे जीवित कर दिया। यही बालक श्री गणेश के नाम से विख्यात हुआ। - (ब्र. वै. पु., गणपति खण्ड) इस पुराकथा के अनुसार श्री गणेश का श्री विष्णु के साथ तादात्म्य है

तथा श्री गणेश को भगवान विष्णु का रूप ही समझना चाहिये, अतः श्री गणेश के साथ लक्ष्मीजी की पूजा में कोई अनौचित्य नहीं है।

(२) समृद्धि और सुरक्षा का संयोजन

श्री गणेश विवेक एवं बुद्धि के देवता हैं। 'लक्ष्मी' (धन) को उपार्जित करने और संचित रखने के लिये विवेक और बुद्धि की अति आवश्यकता है। बुद्धिहीन व्यक्ति धन-सम्पत्ति के भंडार को सुरक्षित नहीं रख सकता है। शुभ-लाभ के प्रतीक श्री गणेश के एक हाथ में परशु है, जो सभी संकटों और व्यवधानों को नष्ट कर देने का प्रतीक है तथा दूसरे हाथ में पाश है, जो सभी विघ्न-बाधाओं को बांध लेता है। लक्ष्मी (धन) प्राप्ति के मार्ग में आने वाले सभी व्यवधान श्री गणेश की कृपा से दूर हो जाते हैं।

श्री गणेश के साथ श्री लक्ष्मी के पूजन से सुख-समृद्धि के साथ सुरक्षा का भी समावेश हो जाता है। श्री गणेश और श्री लक्ष्मी की संयुक्त पूजा-अर्चना से आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार की सम्पन्नता प्राप्त होती है।

(३) श्री गणेश की शक्ति के रूप में देवी लक्ष्मी

श्री गणेश एवं देवी लक्ष्मी के पारस्परिक संबंध को पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर निरूपित करते हुए डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव का कथन है कि "८वीं (आठवीं) सदी के आस-पास लक्ष्मी का अंकन गणेश के साथ मिलने लगता है। ऐसे दो फलक लखनऊ के राज्य संग्रहालय में हैं तथा एक फलक जयपुर के आमेर पैलेस संग्रहालय में है।" इसी संदर्भ में डॉ. श्रीवास्तव आगे लिखते हैं कि "ऐसा जान पड़ता है कि प्रतिहार-काल तक लक्ष्मी गणेश की शक्ति के रूप में बहु चर्चित हो चुकी थीं और इसीलिये प्रतिहारी-शिल्पी ने उन्हें (श्री लक्ष्मी) पहले कुबेर और गणेश के साथ आँका और फिर केवल गणेश के साथ। गणेश के साथ चतुर्भुजी गज-लक्ष्मी का अंकन फतेहगढ़ नगर के चित्रगुप्त मंदिर में जड़े एक प्रतिहार-कालीन फलक में देखा जा सकता है।" (एक साथ लक्ष्मी-गणेश पूजा का औचित्य, नवनीत, अक्टूबर २०००, पृ. ५३)

(४) हिन्दू सम्प्रदायों के समन्वय का प्रतीक

हिन्दू धर्म के प्रमुख चार सम्प्रदायों (शैव, वैष्णव, शाक्त एवं गाणपत्य) का समन्वयन श्री लक्ष्मी (वैष्णव और शाक्त) एवं श्री गणेश (शैव और गाणपत्य) की संयुक्त पूजा-

अर्चना में निहित है। दीपावली का पर्व सभी सम्प्रदायों का सर्वमान्य पर्व है, अतः दीपावली के श्री लक्ष्मी-पूजन में श्री लक्ष्मी के साथ श्री गणेश की पूजा-अर्चना की जाती है, वह हिन्दू धर्म की समन्वयवादी विचारधारा की प्रतीक है।

प. पू. शंकराचार्य स्वामी जयेन्द्र सरस्वती 'लक्ष्मी-गणेश' पूजन को भारतीय परम्परा की उदारता, सहिष्णुता और सामंजस्य का अनुपम उदाहरण मानते हैं, उनकी दृष्टि में यह पूजन दो धार्मिक परम्पराओं का पावन संगम है। (नवनीत, अक्टूबर २०००, पृ. ५६)

(७) देवी दुर्गा और देवी लक्ष्मी

देवी लक्ष्मी धन्य-धान्य, समृद्धि-सौभाग्य एवं उर्वरता की अधिष्ठात्री देवी हैं तथा देवी दुर्गा दुर्गति एवं दुर्भाग्य से बचाने वाली देवी हैं। देवी दुर्गा शक्ति के प्रतीक के रूप में आराध्य है तथा महाभारत (६/२३) में इन्हें भगवान शिव की पत्नी उमा कहा गया है। देवी लक्ष्मी भगवान विष्णु की शक्ति एवं पत्नी हैं। अतः इन दोनों देवियों में परस्पर आत्मीय संबंध है।

डॉ. उपेन्द्रनाथ धल के मतानुसार ये (देवी लक्ष्मी और देवी दुर्गा) प्राग्वैदिक काल के उर्वरता के देवता के दो पक्षों (सौम्य और उग्र) का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिन्हें परवर्तीकाल में हिन्दू त्रिदेवों में से दो प्रमुख देवता यथा भगवान शिव और भगवान विष्णु से उनकी पत्नियों के रूप में हिन्दू देव-मंडल में सम्पृक्त किया गया। - (गोडेस लक्ष्मी, पृ. १११)

देवी लक्ष्मी और देवी दुर्गा के उत्पत्ति स्थान की एकरूपता

(क) नृसिंह पूर्व तापनीयोपनिषद

इस उपनिषद में देवी लक्ष्मी और देवी दुर्गा दोनों को ब्रह्म योनियाँ कहा गया है।

(. . . श्रियं लक्ष्मीमौपलाम्बिका गां षष्ठीं च यामिन्द्र सेनेत्युत आहुस्तां विद्यां ब्रह्मयोनिं सरूपां तामिहायुषे शरणं प्रपद्ये। - ३/१)

(ख) वायु पुराण

सती की उत्पत्ति के संबंध में इस पुराण में कहा गया है कि ब्रह्माजी के क्रोध से रुद्र की उत्पत्ति हुई, जिसका स्वरूप अर्द्धनारीश्वर का था। नारी रूप के आधे भाग से सती

की उत्पत्ति हुई। सती के दक्षिणार्द्ध से शुक्ल वर्ण एवं वामार्द्ध से कृष्ण वर्णा दो देवियाँ प्रकट हुईं। शुक्ल वर्णा देवी ने फिर अपने को विभक्त किया, जिससे स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि उत्पन्न हुईं और कृष्ण वर्ण से महाकाली, रौद्री, दुर्गा, कालकर्णी आदि की उत्पत्ति हुईं।

(ग) ब्रह्माण्ड पुराण

ब्रह्माण्ड पुराण के ललितोपाख्यान (४/४०-५१) में देवी लक्ष्मी और देवी दुर्गा के जन्म की कथा वर्णित है, जिसके अनुसार उनका जन्म महालक्ष्मी (आद्या शक्ति) से हुआ और तत्पश्चात वे विभिन्न देवताओं से सम्बद्ध हुईं। इस कथा के अनुसार महालक्ष्मी ने तीन अंडों को उत्पन्न किया। एक अंडे से अम्बिका (दुर्गा) और विष्णु, दूसरे से लक्ष्मी और ब्रह्मा एवं तीसरे से सरस्वती (गिरा) और शिव उत्पन्न हुए। बाद में महालक्ष्मी ने सरस्वती को ब्रह्मा को, अम्बिका (दुर्गा) को शिव को तथा लक्ष्मी को विष्णु को पत्नी रूप में प्रदान किया।

(घ) ब्रह्मवैवर्त पुराण / देवी भागवत

इन पुराणों के अनुसार देवी लक्ष्मी और देवी दुर्गा दोनों मूल प्रकृति से उत्पन्न हुई हैं। इन पुराणों में वर्णित मूल प्रकृति के पंचविध रूपों में गणेश जननी दुर्गा (शिव-पत्नी) एवं लक्ष्मी (विष्णु-पत्नी) दो रूप हैं। (ब्र. वै. पु. (प्र. खं.) २१ तथा देवी भा. ९/१)

(ङ) विष्णु पुराण

इस पुराण के अनुसार दक्ष प्रजापति और प्रसूती की २४ कन्याओं में से लक्ष्मी सहित १३ का विवाह धर्म के साथ हुआ और शेष ११ कन्याओं में से सती (गौरी / दुर्गा) का विवाह रुद्र (शिव) से हुआ। (१/७/२६)

(च) मार्कण्डेय पुराण

इस पुराण के देवी माहात्म्य के प्रथम रहस्य (प्राधानिक रहस्य) में त्रि-देवियों (सरस्वती, लक्ष्मी एवं काली (दुर्गा) की उत्पत्ति आदिशक्ति (महालक्ष्मी / मूल प्रकृति) के त्रि-गुणों (सत्त्व, रज एवं तम) से बतलायी गयी है।

मार्कण्डेय पुराण में देवताओं ने देवी की स्तुति करते हुए देवी को विष्णु के वक्षः स्थल पर निवास करने वाली श्री (लक्ष्मी) और शिव द्वारा सम्मानित गौरी कहा है (श्रीः कैटभारि हृदयैक कृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृत प्रतिष्ठा। - ८१/११)।

निष्कर्ष

उक्त पौराणिक वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में प्राग्वैदिक या तदन्तर किसी काल में एक ही देवी के दो रूप - एक सौम्य (लक्ष्मी) तथा दूसरा उग्र (दुर्गा) थे, जो कालान्तर में वैष्णव और शैव सम्प्रदायों में विभाजित होने के कारण अन्ततः दो भिन्न-भिन्न देवियों के रूप में मान्य एवं आराध्य हुए। फलतः दोनों देवियों में परस्पर सौहार्दपूर्ण संबंध रहे हैं।

(८) देवी सरस्वती और देवी लक्ष्मी

देवी सरस्वती एक ऋग्वैदिक देवी हैं तथा देवी लक्ष्मी (श्री) के देवत्व की परिकल्पना अपेक्षाकृत बाद के समय की है, अतः वैदिक साहित्य में इन दोनों देवियों के परस्पर संबंध का कोई प्रश्न ही नहीं उठता; लेकिन परवर्तीकाल के पौराणिक साहित्य में इनके परस्पर घनिष्ठ संबंध के अनेक प्रसंगों का वर्णन है।

(१) सरस्वती और लक्ष्मी पर्यायवाची संज्ञाएँ

(क) विष्णु पुराण में देवी लक्ष्मी की स्तुति करते हुए उन्हें सरस्वती भी कहा गया है (संध्या रात्रिः प्रभा भूतिमेधा श्रद्धा सरस्वती। - १/९/११९)।

(ख) मत्स्य पुराण में सारस्वत व्रत की विधि और महिमा का वर्णन करते हुए देवी सरस्वती की स्तुति में उन्हें लक्ष्मी भी कहा गया है (लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टी प्रभा मतिः। - ६६/९)।

(२) देवी सरस्वती एवं देवी लक्ष्मी का उत्पत्ति स्थान एक ही

ब्रह्म वैवर्त पुराण (प्रकृति खंड, २/२९) के अनुसार श्रीकृष्ण ने अपनी इच्छा से अपने को दो भागों में विभक्त किया तथा ऐसा करने पर उनके वाम भाग से एक नारी मूर्ति और दक्षिण भाग से एक पुरुष मूर्ति प्रकट हुई। बाँयें भाग से उत्पन्न नारी मूर्ति (मूल प्रकृति) के जिह्वाग्र से श्वेत वर्णा एवं हाथों में वीणा एवं पुस्तक धारण किये मनोहरा कन्या सरस्वती प्रकट हुई। उसके वामार्द्ध से लक्ष्मी (कमला) और दक्षिणार्द्ध से राधिका का आविर्भाव हुआ। श्रीकृष्ण ने लक्ष्मी नारायण (विष्णु) को सौंप दी। इस कथा के अनुसार सरस्वती के वामार्द्ध से लक्ष्मी की उत्पत्ति कथित है। (२/५४-५५)

ब्रह्माण्ड पुराण के ललितोपाख्यान (४/४०-५१) में देवी लक्ष्मी और देवी सरस्वती के जन्म की कथा वर्णित है, जिसके अनुसार उनका जन्म महालक्ष्मी से हुआ

और तत्पश्चात् वे विभिन्न देवताओं से सम्बद्ध हुईं। इस कथा के अनुसार महालक्ष्मी ने तीन अंडों को उत्पन्न किया। एक अंडे से अम्बिका और विष्णु, दूसरे से लक्ष्मी और ब्रह्मा एवं तीसरे से सरस्वती (गिरा) और शिव उत्पन्न हुए। बाद में महालक्ष्मी ने सरस्वती को ब्रह्मा को, अम्बिका (दुर्गा) को शिव को तथा लक्ष्मी को विष्णु को पत्नी रूप में प्रदान किया।

मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य के प्रथम रहस्य (प्राधानिक रहस्य) में त्रि-देवियों (सरस्वती, लक्ष्मी एवं काली) की उत्पत्ति आदिशक्ति (महालक्ष्मी / मूल प्रकृति) के त्रि-गुणों (सत्त्व, रज एवं तम) से बतलाई गई है।

(३) देवी सरस्वती एवं देवी लक्ष्मी दोनों भगवान विष्णु की पत्नियाँ

(क) भगवान विष्णु की चार पत्नियों (गंगा, सरस्वती, लक्ष्मी एवं तुलसी) में से देवी सरस्वती एवं देवी लक्ष्मी भगवान विष्णु की सपत्नी हैं (गंगा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्रः प्रिय हरेः। तुलसी सहिता ब्रह्मंश्चतस्रः कीर्तिता श्रुतौ।। - ब्र. वै. पु., ११/४ तथा १२/१)।

(ख) जहाँ भगवान विष्णु की तीन पत्नियाँ (गंगा, लक्ष्मी और सरस्वती) कथित हैं, वहाँ भी देवी सरस्वती एवं देवी लक्ष्मी भगवान विष्णु की सपत्नी हैं (लक्ष्मी सरस्वती गंगा तिस्रो भार्या हरेरपि। - ब्र. वै. पु. (प्र. खं.), ६/१७)।

(ग) जहाँ भगवान विष्णु की दो पत्नियों (सरस्वती और लक्ष्मी) का उल्लेख है, वहाँ वे अपने मुख में सरस्वती को धारण करते हैं तथा लक्ष्मी को वक्षःस्थल पर। इसलिये भगवान विष्णु सर्वज्ञ हैं, निष्कल्मश हैं तथा लक्ष्मीवान हैं (बिभ्रत्सरस्वतीं वक्ये सर्वज्ञो ऽसि नमोऽस्तुते। लक्ष्मीवान स्यतो लक्ष्मीं बिभ्रद्वक्षसि चानघ।। - ब्रह्म पुराण, १२२/७१)।

देवी सरस्वती बौद्धिक ज्ञान और आध्यात्मिक श्रेष्ठता या मुक्ति की प्रतीक हैं तथा देवी लक्ष्मी भौतिक या सांसारिक समृद्धि या भुक्ति की प्रतीक है। बौद्धिक एवं भौतिक इन दोनों गुणों के परस्पर समन्वय से ही जीवन को उन्नत बनाया जा सकता है। मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में इन दोनों की जितनी अधिक घनिष्ठता होगी, उतना ही व्यक्ति जीवन में सुखी, सफल एवं सम्पन्न हो सकेगा। मुक्ति और भुक्ति का मिलन ही जीवन में श्रेयस्कर रहता है। देवी सरस्वती और देवी लक्ष्मी को भगवान विष्णु की सपत्नी निरूपित करने के पीछे यही भावना संभवतः रही होगी।

(४) लक्ष्मी, सरस्वती एवं गंगा के परस्पर शाप की कथा

लक्ष्मी, सरस्वती एवं गंगा भगवान नारायण (विष्णु) की तीन पत्नियों के कलह एवं परस्पर शाप के कारण उन्हें भूतल पर नदी एवं वृक्ष रूप में अवतरित होना पड़ा। - (ब्र. वै. पु. (प्र. खं), ६/१२-६८) तथा (देवी भागवत, ९/६/१७)

(५) सरस्वती-लक्ष्मी में वैमनस्य

जन-साधारण में यह बात प्रचलित है कि सरस्वती और लक्ष्मी में परस्पर वैमनस्य है, लेकिन ऐसा प्रवाद भ्रामक है। वस्तुतः सभी देवियाँ एक ही शक्ति आदिशक्ति के विविध स्वरूप हैं, अतः इनमें आपस में बैर-भाव रहने का कोई कारण नहीं है।

(९) भू-देवी (पृथ्वी माता) और देवी लक्ष्मी

पृथ्वी माता का मानवीकरण करके उनकी देवी के रूप में जो परिकल्पना की गई, उस देवी की संज्ञा भू-देवी है। पौराणिक साहित्य में इन्हें लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, तुलसी के अतिरिक्त विष्णु-पत्नी अर्थात् जगन्माता के रूप में मान्य किया गया है। इसीलिये धार्मिक हिन्दू नित्य प्रायः नींद से उठकर भू-देवी की स्तुति करके ही अपना पैर नीचे रखते हैं।

भू-देवी की परिकल्पना प्रथमतः हमें वैदिक साहित्य में मिलती है। अथर्ववेद के 'पृथ्वी सूक्त' (भूमि सूक्त) में पृथ्वी को माता मानकर जो वर्णन एवं स्तवन किया गया है, उसी के आधार पर कालान्तर में भू-देवी के देवत्व का विकास हुआ है। उक्त सूक्त की ऋचा संख्या ६ में पृथ्वी को सर्व-व्यापक अग्नि को धारण करने वाली, सर्वपोषक, रत्न एवं सुवर्ण गर्भा, सर्वाधार, सर्वसमावेशक एवं मानवों के निवास का स्थान कहा गया है तथा पृथ्वी देवी से धन, रत्न और सुवर्ण प्रदान करने की याचना की गई है।

विश्वंभरा वसुधावनी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणेनोदधातु।।
- (१२/१/६)

◆◆◆

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना।।
- (१२/१/४४)

'पृथ्वी (भूमि) सूक्त' में वर्णित पृथ्वी के दिव्य-भव्य वर्णन के आधार पर पौराणिक साहित्य में भू-देवी को भगवान विष्णु की भार्या माना गया है और उनके सगुण स्वरूप को आकारित किया गया है.।

पद्म पुराण (६/२६०/१६) के अनुसार भगवान विष्णु के दाहिनी ओर लक्ष्मी दिव्य पुष्पों की माला पहने विराजमान हैं और बायीं ओर भू-देवी दो धान्यपात्र धारण किये।

तंत्रसार (पृ. २३७) में भी ऐसा उल्लेख है कि भगवान विष्णु के एक ओर भू-देवी (वसुमती) और दूसरी ओर लक्ष्मी शोभित हैं (पार्श्व द्वन्द्वे जलधि सुतया विश्वधात्र्या च जुष्टम्)।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण (३/६१) के अनुसार भू-देवी का सगुण अंकन करते समय उन्हें शुक्ल वर्ण आभूषणों से सज्जित चंद्रांशु सदृश्य वस्त्र धारण किये, चार भुजाओं वाली बतलाना चाहिये, जिनमें से एक हाथ में रत्न-पात्र, दूसरे में सस्य-पात्र, तीसरे में औषधि और चौथे में कमल पुष्प धारण किये दिखलाना चाहिये।

शुक्ल वर्णा महीकार्या दिव्याभरण भूषिता।
चतुर्भुजा सौम्यवपुष चंद्रांशु सदृशाम्बरा।।
रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधि संयुतम्।
पद्मं करे च कर्तव्यं भुवो यादवनन्दन।।

देवी लक्ष्मी और भू-देवी दोनों की सम्बद्धता भगवान विष्णु के साथ है, अतः वे एक दूसरी की सपत्नी (सौत) हैं। कालान्तर में भू-देवी का लक्ष्मी देवी में विलय हो गया, जिसके फलस्वरूप देवी लक्ष्मी को ही भू-देवी माना जाने लगा। देवी लक्ष्मी के श्री विग्रह के रूप में उनके एक स्वरूप में उनके हाथ में धान्यमजरी दिखलाई जाती है, जो भू-देवी एवं लक्ष्मी देवी के मिलन का सूचक है। प्रारम्भ में उत्पादकता एवं सम्पन्नता, जो भू-देवी (पृथ्वी माता) के सहज गुण थे, बाद में वे देवी लक्ष्मी के ही सहज गुण माने जाने लगे। (शशिभूषण दासगुप्त, भारत में मातृ-पूजा का विकास, ग्रेट विमेन ऑफ इंडिया, पृ. ५२/५५)

●

देवी लक्ष्मी के निवास योग्य स्थान एवं कृपा योग्य पात्र

राजा बलि को त्यागकर जब देवी लक्ष्मी देवराज इन्द्र के पास आईं, तो उन्होंने इन्द्र से कहा कि "मैं सत्य, दान, तपस्या, व्रत, पराक्रम एवं धर्म में निवास करती हूँ। राजा बलि इन सबसे विमुख हो गये हैं, अतः मैं तुम्हारे पास आई हूँ। तुम्हें सदा सावधान रहकर तपस्या और पराक्रम द्वारा मुझे धारण करना चाहिये।"

सत्ये स्थितास्मि दाने च व्रते तपसि चैव हि।
पराक्रमे च धर्मे च पराचीनस्ततो बलिः।।

- महाभारत, (शांति पर्व, २२५/१२)

●●●

अप्रमतेन धार्यास्मि तपसा विक्रमेण च। - (१५)

तब इन्द्र ने कहा, "हे कमलालये! देवताओं, मनुष्यों अथवा सम्पूर्ण प्राणियों में कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है, जो अकेला तुम्हारा भार सहन कर सके। तुम जिस प्रकार मेरे निकट सदा निवास कर सको, वह उपाय मुझे बताओ।" इन्द्र द्वारा उपाय पूछे जाने पर लक्ष्मी ने कहा कि तुम मुझे चार भागों में विभक्त करो (चतुर्धा विभजस्व माम्।)। इन्द्र ने देवी के निर्देशानुसार चार भागों में विभाजित करने के उद्देश्य से देवी लक्ष्मी को सर्वप्रथम कहा, "देवी! तुम अपना एक पैर भूमि पर रखो, क्योंकि मनुष्य लोक में सम्पूर्ण भूतों को उत्पन्न करने वाली यह पृथ्वी ही सबको धारण करती है। अतः वह तुम्हारे पैर का भार सह सकने की सामर्थ्य रखती है।" इन्द्र के कथनानुसार लक्ष्मी ने अपना एक पैर पृथ्वी पर प्रतिष्ठित कर दिया और दूसरे पैर के प्रतिष्ठित करने के लिये

उपयुक्त स्थान के बारे में पूछा। इसके प्रत्युत्तर में इन्द्र ने कहा, "लक्ष्मी! मनुष्य लोक में जल ही सब ओर प्रवाहित होता है, अतः वही तुम्हारे दूसरे पैर का भार सह सकने की सामर्थ्य रखता है।" इन्द्र के ऐसा कहने पर लक्ष्मी ने अपना दूसरा पैर जल पर रख दिया एवं तीसरे पैर को भली भाँति स्थापित करने के लिये कहा। अतः इन्द्र ने कहा, "देवी! जिसमें वेद, यज्ञ और सम्पूर्ण देवता प्रतिष्ठित हैं, वे अग्नि देव तुम्हारे तीसरे पैर को अच्छी तरह धारण करेंगे।" इन्द्र के ऐसा कहने पर लक्ष्मी ने अपना तीसरा पैर अग्नि में प्रतिष्ठित कर दिया तथा चौथे पैर को स्थापित करने के स्थान के बारे में पूछा, जिसके उत्तर में इन्द्र ने कहा, "देवी! मनुष्यों में सत्पुरुष आपके चौथे पैर का भार सहने में पूर्ण समर्थ है, अतः अपना चौथा पैर सत्पुरुषों में प्रतिष्ठित करो।" इन्द्र के ऐसा कहने पर लक्ष्मी ने अपना चौथा पैर सत्पुरुषों में स्थापित किया।

इस प्रकार देवी लक्ष्मी अपने को चार भागों में विभक्त कर पृथ्वी (भूमि), जल, अग्नि एवं सत्पुरुषों में वास करती हैं अर्थात् ये ही वे आधार हैं, जिनसे लक्ष्मी या समृद्धि प्राप्त हो सकती है।

(१) पृथ्वी (भूमि)

लक्ष्मी ने अपना पहला पैर भूमि पर स्थापित किया, क्योंकि भूमि से अन्न-धान्य एवं खनिज पदार्थ आदि की प्राप्ति होती है, जो मनुष्य के सांसारिक सुख-सुविधा एवं जीवन-यापन के लिये आवश्यक है। देवी लक्ष्मी उर्वरता की अधिष्ठात्री है। श्री सूक्त में कहा गया है —

'गंध द्वारां दुराधर्षां नित्य पुष्टां करीषिणीम्।'

अर्थात् लक्ष्मी देवी गंध के द्वार से प्रविष्ट करने वाली, किसी से धर्षित न होने वाली, सर्वदा पुष्ट (धान्यादि से समृद्ध) रहने वाली तथा सूखे गोबर में निवास करने वाली हैं।

महाभारत में एक पुराकथा है कि एक बार देवी लक्ष्मी ने गायों के समूह में प्रवेश किया। उनके रूप-वैभव को देखकर गौओं ने आश्चर्यचकित हो उनका परिचय पूछा। उत्तर देते हुए देवी ने कहा, "मैं लक्ष्मी हूँ और मेरा साथ सब को सुख देता है। मैं तुम्हारे साथ निवास करना चाहती हूँ।" इस पर गौओं ने कहा कि "देवी! आप चंचल हैं, अतः आपको हम साथ में नहीं रखना चाहती हैं।" जब देवी लक्ष्मी ने उनकी बहुत अनुनय-विनय की तब गायों ने उन्हें अपने गोबर और मूत्र में निवास की अनुमति दी (शकृन्मूत्रे निवस त्वं। - अनुशासन पर्व, ८२/२४)।

गौ-मूत्र एवं गोबर में देवी लक्ष्मी का वास है अर्थात् इनसे भूमि की उर्वरता की क्षमता बढ़ती है एवं अधिक अन्न-धान्य उत्पन्न होता है, जो मनुष्यों का पालन-पोषण करता है।

(२) जल

देवी लक्ष्मी ने अपना दूसरा पैर जल पर प्रतिष्ठित किया, क्योंकि जल सब ओर प्रवाहित होता है एवं मानव जीवन का आधार है। जलधि रत्नों, मोती-मूंगों एवं अन्य बहुमूल्य पदार्थों के भंडार हैं। श्री सूक्त के मंत्र संख्या १२ में कहा गया है — 'आपः सृजन्तु स्निग्धानि . . .' अर्थात् हे जल देवता! स्नेह युक्त पदार्थों को उत्पन्न करें। इस प्रकार जल के माध्यम से व्यक्ति सम्पन्नता प्राप्त कर सकता है।

ऋग्वेद संहिता में दरिद्रता को नाश करने वाला एक 'अश्री नाशन सूक्त' (१०/१५५) है, जिसमें दरिद्रता को संबोधित करते हुए उसे सागर तट के अपौरुषेय काष्ठ की सहायता से दूर दूसरे तटों की ओर चले जाने का निर्देश दिया है —

अदः यद दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपुरुषम्।
तत् आरभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परः तरम्।।

संभवतः सूक्तकार का यहाँ निर्देश 'नौका नयन' से है, जिसके द्वारा दरिद्रता का नाश संभव है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस निर्देश के द्वारा समुद्रीय यात्रा या व्यापार के माध्यम से अलक्ष्मी के परिहार एवं लक्ष्मी की प्राप्ति की ओर संकेत किया गया है।

देवी लक्ष्मी का एक पैर जल पर प्रतिष्ठित है अर्थात् समृद्धि की प्राप्ति का जल एक सक्षम आधार है।

(३) अग्नि

देवी लक्ष्मी ने अपना तीसरा पैर अग्नि पर स्थापित किया, क्योंकि वेद, यज्ञ एवं सम्पूर्ण देवगण अग्नि में प्रतिष्ठित है। अग्नि देवताओं में अग्रणी माना गया है। अग्निदेव को अर्पित हविष्य वे देवताओं तक पहुँचाते हैं। श्री सूक्त में भी सूक्तकार श्री देवी (लक्ष्मी देवी) का आह्वान अग्नि (जातवेद) के माध्यम से करता है। अग्नि की कृपा से ही सम्पन्नता प्राप्त हो सकती है, अतः उनसे ही निवेदन किया गया है — 'तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्' — अर्थात् हे अग्नि देव ऐसी लक्ष्मी को आवाहित करें, जो स्थिर रहे।

अग्नि ही विद्युत का अग्रज है। ऋग्वेद संहिता के सूक्त संख्या १०/९१ में कहा गया है कि — 'तब श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतः' — अर्थात् प्रज्ज्वलित अग्नि का स्वर्णिम वर्ण विद्युत की आभा के सदृश है।

अग्नि या विद्युत सम्पन्नता प्राप्त करने के शक्तिशाली साधन हैं तथा इनके सदुपयोग से लक्ष्मी यानि समृद्धि की प्राप्ति संभव है। वर्तमान युग की औद्योगिक क्रान्ति विद्युत (अग्नि का प्रखर रूप) के कारण ही संभव हो सकी है।

(४) मनुष्यों में सत्पुरुष

देवी लक्ष्मी ने अपना चौथा पैर सत्पुरुषों में स्थापित किया, क्योंकि वे ही उसका भार सहने की शक्ति रखते हैं। जो व्यक्ति सद्‌गुणी है, सच्चरित्र है, सक्षम है, परिश्रमी है, ऐसे व्यक्ति ही देवी लक्ष्मी को प्रिय हैं।

एक बार भगवान श्री कृष्ण की पट्टमहिषी रुक्मिणी देवी अपनी अभिन्न रूपा लक्ष्मीजी से भेंट करने वैकुंठ पधारीं और वहाँ लक्ष्मीजी को भगवान विष्णु के समीप बैठी देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं, फिर लोक-कल्याण के लिये उन्होंने लक्ष्मीजी से पूछा, "देवी! आप किस स्थान पर और कैसे मनुष्यों के पास रहती हैं?" लक्ष्मीजी ने उत्तर दिया, "कल्याणी! सुनो, जो पुरुष मृदुभाषी, कार्यकुशल, निर्भीक, कर्मपरायण, क्रोध रहित, देवाराधन तत्पर, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, उदार तथा सत्त्व गुण से युक्त हैं, उनके यहाँ मेरा वास होता है।"

जो पुरुष अकर्मण्य, नास्तिक, वर्ण संकर, कृतघ्न, दुराचारी, क्रूर, चोर तथा गुरुजनों के दोष देखने वाला हो उसके भीतर मैं निवास नहीं करती हूँ।

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे, दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने।
अक्रोधेन देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्ण सत्त्वे।।
नाकर्मशीले पुरुषे वसामि न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने।
न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे न चापि चौरे न गुरुष्व सूये।।

– (महाभारत अनुशासन पर्व, ११/६-७)

आगे देवी लक्ष्मी ने कहा कि जो स्त्रियाँ कमनीय गुणों से युक्त देवताओं और ब्राह्मणों की सेवा में तत्पर, घर के बर्तन-भाँडों को शुद्ध और स्वच्छ रखने वाली एवं

गौओं की सेवा तथा धान्य के संग्रह में तत्पर होती हैं, उनमें भी मैं सदा निवास करती हूँ। जो स्त्रियाँ सत्यवादिनी और अपनी सौम्य वेश-भूषा के कारण देखने में प्रिय होती हैं, जो सौभाग्यशालिनी, सद्‌गुणवती, पतिव्रता एवं कल्याणमय आचार-विचार वाली होती हैं तथा जो सदा वस्त्राभूषणों से विभूषित रहती हैं, ऐसी स्त्रियों में मैं सदा निवास करती हूँ।

वसामि स्त्रीषु कान्तासुदेवद्विजपरासु च।
विशुद्ध गृहभांडासु गोधान्याभिरतासु च।।
सत्यासु नित्यं प्रिय दर्शनासु सौभाग्ययुक्तासु गुणान्वितासु।
वसामि नारीषु पतिव्रतासु कल्याणशीलासु विभूषितासु।।

- (उक्त, ११/१०-१३)

आगे देवी लक्ष्मी ने उन स्थानों की सूची प्रस्तुत की, जिनमें वे निवास करती हैं और अंत में वे अपना सिद्धान्त प्रतिपादित करती हुई कहती हैं कि मैं मूर्तिमती एवं अनन्य चित्त होकर तो भगवान नारायण (विष्णु) में ही सम्पूर्ण भाव से निवास करती हूँ। मैं नारायण के सिवाय अन्यत्र मात्र भाव रूप से निवास करती हूँ।

पौराणिक कथाओं के अनुसार देवताओं ने अहंकारवश लक्ष्मीजी का तिरस्कार किया और दानवों ने स्वयं की लक्ष्मी विलास, आलस्य एवं प्रमाद आदि में खो दी। अतः लक्ष्मीजी दुःखी होकर समुद्र में चली गई। तदन्तर देव और दानव दोनों ने एक होकर, संघटित होकर समुद्र-मंथन किया एवं उनके अथक परिश्रम के बाद लक्ष्मीजी का पुनः धरती पर आगमन हुआ।

देवी लक्ष्मी के समुद्र से प्रकट होने के पश्चात्, जब ऋषि-मुनियों ने उनकी वंदना कर, संसार में रहने की प्रार्थना की, तब उनके आग्रह को मानकर देवी लक्ष्मी ने कहा, "हे भक्तगण! भारतवर्ष में मैं पुण्यवान, सद्‌गुणी, नीति के मार्ग पर चलने वाले गृहस्थों के घरों में निवास करूँगी। जिस व्यक्ति के घर में गुरु, देवता, माता-पिता, अतिथि एवं अन्य पूर्वज रुष्ट रहेंगे, उनके घरों में मैं कभी नहीं जाऊँगी।"

स्थिरा पुण्यवतां गेहे सुनीतिपथ वेदिनाम्।
गृहस्थानां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान् -
यंयं रुष्टो गुरुर्देवो माता तातश्च बांधवाः।
अतिथिः पितृलोकश्च यामितस्य न मंदिरम्।

जो चिन्ताग्रस्त, भयभीत, शोक-संतप्त, दुराचारी, कृपण एवं ऋणी हैं, उनके घरों में नहीं रहूँगी। जो पूजा-पाठ या कीर्तन-भजन नहीं करते हैं, जो कन्या विक्रय करते हैं, जो हिंसा करते हैं, जो स्वार्थी हैं, ऐसे लोगों के घरों में नहीं जाऊँगी। जो आश्रितों की उपेक्षा कर धन संचय में लीन रहते हैं, जो गंदे वस्त्र धारण करते हैं, जो मूर्ख हैं तथा जो आलसी है, ऐसे लोगों से मैं दूर ही रहती हूँ। - (ब्रह्मवैवर्त पुराण, गणपति खंड, २३/२०-४०)

स्कंद पुराण के अनुसार लक्ष्मीजी ने अपने प्रिय और अप्रिय स्थानों को बतलाने के उद्देश्य से कहा —

"जहाँ मैं रहती हूँ, वहाँ धर्म, अर्थ और सुयश भी रहते हैं। जहाँ गृहणी रहती है, वहाँ मेरा भी वास है। जहाँ धान्य, स्वर्ण, रजत होते हैं, मैं वहाँ अवश्य होती हूँ। जो मृदुभाषी हैं, जो धर्म पारायण हैं, जो संयमी हैं, जो अहंकार रहित हैं, जो परोपकारी हैं और जो शिष्ट हैं, ऐसे लोगों के यहाँ मैं रहती हूँ। जिस व्यक्ति में त्याग, पवित्रता तथा सत्यवादिता — ये तीन गुण हैं, वहाँ मैं रहती हूँ। सद्गुणी, सुशीला एवं पतिव्रता स्त्रियों में मेरा वास होता है।

जो धन प्राप्त करने का प्रयास करते नहीं हैं एवं थोड़ा धन प्राप्त होने पर संतुष्ट हो जाते हैं, ऐसे लोगों के पास मैं नहीं रहती। जो स्त्रियाँ गंदी रहती हैं, जो घर की चीजों को जहाँ-कहीं रख देती हैं, जिनमें सद्बुद्धि नहीं होती, जो पति का कहना नहीं मानती हैं, जो अपने घर में रहने के बजाय दूसरों के घरों में अधिक समय व्यतीत करती हैं, जो कलह करती हैं, जो अपवित्र रहती हैं, जो सदा लड़ाई-झगड़े करती रहती हैं, ऐसी स्त्रियों से मैं दूर ही रहती हूँ।"

देवी लक्ष्मी कब आती है और कब चली जाती है

महाभारत के शांति पर्व के अन्तर्गत 'इन्द्र-लक्ष्मी संवाद' (अध्याय २२८) में देवी लक्ष्मी ने उन सद्गुणों को बतलाया है, जिनके कारण वे आती हैं तथा उन दुर्गुणों की सूची प्रस्तुत की है, जिनके कारण वे चली जाती हैं। वे देवराज इन्द्र से कहती हैं - "मैं नित्य धर्माचरण करने वाले, परम बुद्धिमान, ब्राह्मण-भक्त, सत्यवादी, विनयी एवं दानशील पुरुष में ही सदा निवास करती हूँ। जो अपने धर्म का पालन करते हैं, धैर्य से कभी विचलित नहीं होते और स्वर्ग प्राप्ति के साधनों में लगे रहते हैं, उन प्राणियों के भीतर मैं सदा निवास करती हूँ।"

धर्म नित्ये महाबुद्धौ ब्रह्मणे संत्यवादिनि।
प्राश्रिते दानशीले च सदैव निवसाम्यहम्।।
स्वधर्ममनुतिष्ठत्सु धैर्याद चलितेषु च।
स्वर्ग मार्गाभिरामेषु सत्त्वषु निरता ह्यहम्।।
- (महाभारत-शांतिपर्व, २२८/२६/२९)

जो धर्म के विपरीत आचरण करते हैं, उन्हें छोड़कर लक्ष्मीजी दूर चली जाती हैं। लक्ष्मीजी ने दैत्यों के दुराचरण की एक लम्बी सूची इन्द्र के सम्मुख प्रस्तुत की, जिनके कारण वे उन्हें त्यागकर इन्द्र के पास आई हैं। उन्होंने कहा, "देवेन्द्र! जब से इन दैत्यों ने धर्म के विपरीत आचरण अपनाये हैं, तब से मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अब इन दानवों के घर में नहीं रहूँगी।"

तेष्वेवमादीनाचारानावरत्सु विपर्यये।
नाहं देवेन्द्र वत्स्यामि दानवेष्विति मे मतिः।।
- (उक्त २२८/८०)

देवी लक्ष्मी द्वारा निर्देशित अपने प्रिय एवं अप्रिय व्यक्तियों और स्थानों से तथा किन गुणों के कारण वे आगमन करती हैं तथा किन दुर्गुणों के कारण वे दूर चली जाती हैं, यह बात स्पष्टतया प्रतीत होती है कि देवी परिश्रमी एवं अपने कर्म में नीतिमत्ता के साथ कार्यरत व्यक्तियों पर कृपा करती हैं। इसीलिये श्रद्धालु प्रातः नींद से जगते ही अपनी हथेली को देखकर कहते हैं —

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमूले सरस्वती।
कर मध्ये तु गोविंदः प्रभाते कर दर्शनम्।।

वस्तुतः हाथ के अग्र भाग यानि अंगुलियों में कर्म के रूप में लक्ष्मीजी का स्थायी निवास है।

यह देवी कर्म की प्रेरणा देती है। बिना कर्म के न धरती पर हल की रेखाएँ बन सकती हैं, न बीज वपन और न सिंचन संभव है और न फल की प्राप्ति। वेदों का कथन है — 'अयं मे हस्तो भगवान अयं मे भगवत्तरः।' अर्थात् मेरा यह हाथ भगवान है और यह हाथ भगवान से श्रेष्ठ है। (ऋग्वेद, १०/६०/१२ व अथर्ववेद, ४/१३/६)

'लक्ष्मी-नारायण' का एक लोक-प्रसिद्ध चित्रांकन अनेक हिन्दू धर्मावलम्बियों के घरों में देखा जा सकता है। इस चित्रांकन में क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर भगवान विष्णु लेटे हैं तथा उनके पैरों के समीप बैठी लक्ष्मीजी उनके पैर दबा रही हैं। यह चित्रांकन प्रतीकात्मक है तथा इसमें गूढ़ार्थ निहित है। यह चित्रांकन इस बात का द्योतक है कि जो पुरुष उद्यमी और परिश्रमी होते हैं तथा अपने कार्य के प्रति निष्ठा एवं दृढ़ता रखते हैं, उनके पैर में लक्ष्मी का सदा ही वास रहता है। जो व्यक्ति अच्छे काम करता है और अपने कार्य को निष्ठापूर्वक निभाता है, वहाँ लक्ष्मी स्वयं आ जाती है।

'पंचतंत्र' में कहा गया है —

उत्साह सम्पन्नम दीर्घसूत्रं क्रिया विधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़ सौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवास्सहेतोः।।

अर्थात् जो उत्साही है, आलसी नहीं है, कार्य करने की विधि को जानता है, किसी भी प्रकार के व्यसन में आसक्त नहीं है, शूरवीर है, किये हुए उपकार को मानता है और जिसकी मैत्री दृढ़ होती है, ऐसे सज्जन के पास रहने के लिये लक्ष्मीजी स्वयं ही उपस्थित हो जाती है।

और महाभारत में कहा गया है -

श्री मंगलात प्रभवति प्रागल्भ्यात संप्रवर्धते।
दाक्ष्यातु कुरुते मूलं संयमात प्रतिष्ठिति।।

"लक्ष्मी शुभ कार्य से उत्पन्न होती है। चतुरता से बढ़ती है और अत्यन्त निपुणता से जड़ बाँधती है तथा संयम से स्थिर रहती है।"

•

पुरातत्त्वीय दृष्टि से देवी लक्ष्मी के सगुण स्वरूप की पुरातनता

(i) सिन्धु-सरस्वती घाटी सभ्यता

भारतीय संस्कृति क़ा प्राचीनतम दर्शन हमें सिन्धु-सरस्वती घाटी सभ्यता के नाम से लोक प्रसिद्ध सभ्यता में प्राप्त होता है। यह सभ्यता न केवल भारत के पश्चिमोत्तर के अंचलों में अस्तित्व में थी, वरन् इसका विस्तार पूर्व की ओर उत्तरी भारत में भी था। प्रारम्भिक उत्खनन में इस महान सभ्यता के भग्नावशेष सिंध के मोहें-जो-दड़ो एवं पंजाब में पश्चिम में स्थित हड़प्पा (आजकल दोनों ही क्षेत्र पाकिस्तान में सम्मिलित हैं) में मिले थे तथा स्वाधीनता के पश्चात, जो उत्खनन भारत के विभिन्न स्थानों पर हुए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि इस सभ्यता का विस्तार एक ओर पूर्व में गंगा-यमुना की घाटी में स्थित आलमगीरपुर और दूसरी ओर दक्षिण में सौराष्ट्र (गुजरात) में लोथल तक हुआ था। पंजाब के रोपड़ एवं राजस्थान के कालीबाँग आदि क्षेत्रों की खुदाई में भी सिन्धु-सरस्वती सभ्यता के भग्नावशेष मिले हैं। यह सभ्यता पांच से सात हजार वर्ष पुरातन मानी जाती है। आज की भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की पुरातत्त्वीय दृष्टिकोण से यह सभ्यता स्रोत मानी जाती है तथा विद्वानों की मान्यता है कि वस्तुतः यह सभ्यता वैदिक सभ्यता ही है। (डॉ. भगवान सिह - हड़प्पा सम्भयता और वैदिक साहित्य)

भग्नावशेषों में प्राप्त देवी लक्ष्मी की प्रतिमूर्तियाँ

सिन्धु-सरस्वती घाटी सभ्यता के उपरोक्त स्थलों के भग्नावशेषों में प्राप्त नारी अंकनो, प्रतिमूर्तियों, फलकों आदि के निरीक्षण, परीक्षण और समीक्षण के पश्चात्

पुराविदों ने श्री सूक्त में वर्णित देवी लक्ष्मी की विशिष्टताओं एवं देवी के मान्य संकेत-चिन्हों - यथा हाथी, कमल, धान पात्र आदि के आधार पर कतिपय अंकनों एवं प्रतिमूर्तियों की पहचान देवी लक्ष्मी के अंकन / प्रतिमूर्ति के रूप में की हैं।

मोहें-जो-दड़ो और हड़प्पा में प्राप्त देवी लक्ष्मी की कतिपय प्रतिमूर्तियाँ एवं अंकन आदि इस प्रकार हैं —

(i) मोहें-जो-दड़ों से ऐसी मोहरें मिली हैं, जिनमें दो कमल की नालों के बीच में अंकित देवी हाथों को नीचे किये खड़ी है। देवी के आगे गले में माला पहराया गया बकरा है। बकरे के पीछे एक उपासक घुटनों के बल बैठा दोनों हाथ जोड़े है। उपासक के दाहिनी ओर एक चौकी पर कुछ सामग्री रखी है। संभवतः बकरे की बलि का दृश्यांकन है। इस मोहर पर एक ओर गज का भी अंकन है।

अथर्व वेद (९/५/१०-११) में बकरे की बलि का महत्त्व वर्णन करते हुए, ऐसी पशु-बलि से धन प्राप्त होने का उल्लेख है। (मैके-फरदर एक्सकेवेशन एट मोहन-जो-दड़ों-फलक ८२ सं.१ सी तथा राय गोविंद चंद्र-प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा-फलक १ आकृति ख३)

(ii) मोहें-जो-दड़ों से ही प्राप्त एक अन्य मोहर पर एक गोलाकार बावड़ी से निकले दो नाल सहित कमलों के मध्य खड़ी देवी लक्ष्मी के समक्ष एक भक्त वीरासन में पूजा करता दिखाया गया है। भक्त के पीछे गले में माला पहने बलि के उद्देश्य से एक बकरा अंकित है। दाहिनी ओर सात अन्य पुरुष लम्बा कुरता पहने हुए दिखाये गये हैं। - (मैके, उपरोक्त-फलक ९ सं.४३० तथा राय गोविंद चंद्र उपरोक्त फलक १ आकृति (क)

(iii) हड़प्पा से प्राप्त मोहरों पर हाथियों के पुट्ठों पर कमल और स्वस्तिक के चिन्हों का अंकन किया हुआ मिला है। देवी लक्ष्मी के ये संकेत-चिन्ह देवी की लोकप्रियता व्यक्त करते हैं। - (मैके, उपरोक्त फलक ८५ सं. १२७ तथा फलक ९६ सं. ५०४)

(iv) हड़प्पा से प्राप्त मृण्मूर्तियों में नारी मस्तक के आभूषण के साथ ही कनपटी के पास एक दीप बना हुआ ऐसा नारी अंकन मिला है, जिसे दीप-लक्ष्मी का पूर्वरूप भी माना जा सकता है। - (आर्कियो लोजिकल सर्वे आफ इंडिया वार्षिक विवरण १९१५-१६ प्लेट, ५)

(v) हड़प्पा से एक ऐसी मोहर प्राप्त हुई है, जिसमें एक देवी कोठरी में दिखलाई गई है, जिसके ऊपर और पार्श्व में कमल की कलियाँ बनी है। पुरातत्त्वविदों ने इस अंकन को देवी लक्ष्मी का अंकन माना है और कोठरी के अंकन से यह भी अनुमान लगाया है कि संभवतः उस काल में देवी के मंदिर भी थे। - (माधोस्वरूप वत्स-एक्सकेवेशन एट हड़प्पा - फलक ९२ सं. ३१६ तथा प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा - राय गोविंद चंद्र पृ.१६)

(ii) उक्त सभ्यता के परवर्ती काल में देवी का अंकन

सिन्धु सरस्वती घाटी सभ्यता के परवर्ती काल में देवी लक्ष्मी के ध्यान-श्लोकों के आधार पर देवी के सगुण स्वरूप का दिव्य-भव्य एवं कलात्मक अंकन कला-निपुण शिल्पियों ने चट्टानों का काटकर, पत्थरों को तराशकर, मिट्टी या धातु को सांचों में ढालकर एवं तुलिका द्वारा विविध रंगों के चित्र बनाकर किया है। ऐसा अंकन प्रमुखतया दो प्रकार का है। एक है किसी स्तूप, मंदिर या भवन के घेरे, द्वार या प्राचीर या किसी पृष्ठभूमि की शोभा एवं सौंदर्य की वृद्धि के उद्देश्य से किया गया देवी का और विशेषतया देवीके गज-लक्ष्मी स्वरूप का अंकन और दूसरा है देवी की उपासना या पूजा के लिये किया गया प्रतिमा या चित्र का निर्माण। दोनों ही पुरातत्त्वीय दृष्टि से देवी लक्ष्मी के देवत्व की पुरातनता के परिचायक हैं।

भारहुत (भरहुत), सांची, अमरावती (दक्षिण भारत) के स्तूप एवं बोधगया का मंदिर

भारहुत, सांची, अमरावती के स्तूपों एवं बोधगया के मंदिर में देवी लक्ष्मी का किया गया अंकन इन भवनों की शोभा एवं सौंदर्य वृद्धि के लिये किये गये अंकन हैं, न कि उपासना के लिये। प्रो. जीतेन्द्रनाथ बनर्जी का यह कथन ध्यातव्य है कि उड़ीसा में सभी सम्प्रदायों के मध्यकालीन मंदिरों के मुख्य द्वारों की चौखट के ऊपर मध्य में देवी लक्ष्मी के गज-लक्ष्मी स्वरूप का उत्कर्णन किया जाता था। - (दि डवलपमेंट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, पृ. ३७५)।

भारहुत

भारहुत स्तूप की वेदिका पर देवी लक्ष्मी के गज-लक्ष्मी स्वरूप का अंकन पुराविदों के मतानुसार ई. सन् पूर्व की द्वितीय शती का है। इस अंकन में एक गोलाकार में पूर्ण-

घट में से तीन खिले हुए कमल पुष्प निकले हुए हैं और इनमें से बीच के कमल पुष्प पर देवी लक्ष्मी खड़ी है और उनके दोनों ओर के कमल-पुष्पों पर एक-एक हाथी खड़े हैं, जो अपनी-अपनी सूंड से देवी का जलाभिषेक कर रहे हैं। देवी के एक हाथ में पुष्पमाला है और दूसरा हाथ वे कटि पर रखे हैं। सम्प्रति यह स्तूप अपने मूल स्थान पर नहीं है, लेकिन उत्खनन में प्राप्त हुए अवशेष कोलकाता के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित है। - (आनंद कुमार स्वामी, ला स्कल्पचर भारहुत)।

भारहुत जैसा ही देवी लक्ष्मी का अंकन बोधगया मंदिर एवं अमरावती (दक्षिण भारत) के स्तूप पर पाया गया है।

सांची स्तूप

मध्य प्रदेश के विदिशा के समीप स्थित सांची के स्तूप के तोरण पर देवी लक्ष्मी के कई विविध प्रकार के अंकन हैं। कहीं देवी स्थानक (खड़ी) मुद्रा में हैं, तो कहीं आसीन (बैठी) मुद्रा में, तो कहीं दिग्गजों द्वारा अभिषिक्त। डॉ. आनंद कुमार स्वामी के मतानुसार देवी के ऐसे अंकन करीब दस हैं, जो तत्कालीन देवी की लोकप्रियता एवं प्रसिद्धि के द्योतक हैं।

सांची स्तूप संख्या २ पर देवी के दो अंकन हैं। एक में दोनों पार्श्वों में एक-एक सेविका खड़ी हैं। एक सेविका हाथ में चामर पकड़े है और दूसरी छत्र और पात्र। दूसरे अंकन में देवी का अभिषेक करने वाले एक गज के ऊपर पद्म और दूसरे के ऊपर छत्र दिखलाया गया है। गज, चामर और छत्र ये देवी लक्ष्मी के राजसी वैभव या राज्य-लक्ष्मी स्वरूप के सूचक हैं।

विशाल स्तूप के पश्चिम तोरण पर देवी लक्ष्मी का स्थानक (खड़ी) मुद्रा में तथा उत्तरी तोरण पर दो आसीन (बैठी) मुद्रा में अंकन है, जिनमें देवी के ऊपर छत्र उत्कीर्ण है। - (डॉ. मोतीचंद - पद्मश्री - नेहरू अभिनन्दन ग्रंथ)।

(iii) मृण्मय, पत्थर एवं धातु की मूर्तियाँ

मथुरा

ईस्वी पूर्व द्वितीय-प्रथम शती (शुंग काल) की एक मृण्मूर्ति मथुरा पुरातत्त्व संग्रहालय में सुरक्षित है। इस अंकन में देवी लक्ष्मी के गज-लक्ष्मी स्वरूप को दिखलाया

गया है। देवी कमलवन के बीच में खड़ी है जिनका अभिषेक दो हाथियों द्वारा किया जा रहा है। - (उ. प्र. की ऐतिहासिक विभूति, फलक १३क, शिक्षा विभाग उ. प्र., लखनऊ)।

ईस्वी प्रथम से तृतीय शती (कुषाण काल) के एक अंकन में देवी लक्ष्मी एक हाथ में अन्न की बाली धारण किये हुए हैं। इस मूर्ति के पृष्ठ भाग पर कमल पुष्प, पत्ते एवं मयूर का जोड़ा आदि उत्कीर्ण हैं। - (कल्याण (१९८७), श्री कृष्णदत्त वाजपेयी का आलेख, पृ. २९७)।

मथुरा क्षेत्र से प्राप्त एक मूर्ति में पूर्ण-घट से निकले कमल के बीच देवी लक्ष्मी को खड़ी दिखलाया गया है। इस अंकन में देवी अपने बायें हाथ से दाहिनी ओर के स्तन को दबाते हुए बतलाया गया है। इसे देवी का दुग्ध धारिणी मातृ-रूप माना गया है। सम्प्रति यह मूर्ति लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। - (अग्रवाल-केटेलाग ऑफ ब्राह्मनिकल इमेजेज, मथुरा आर्ट, पृ. १०/११)।

कौशाम्बी

प्रयाग से लगभग ३७ मील दक्षिण-पश्चिम यमुना नदी के उत्तरी तट पर कोसम नामक गाँव है, जिसका प्राचीन नाम कौशाम्बी है। यहाँ खुदाई करते देवी लक्ष्मी की एक सुंदर एवं कलात्मक मृण्मूर्ति मिली है। इस मूर्ति में देवी के मस्तक पर धरे मुकुट के दोनों ओर एक-एक हाथी सूंडों से देवी का जलाभिषेक करते दिखलाये गये हैं। इस अंकन में हाथियों को शिल्पकार ने देवी के मुकुट में ही समाविष्ट कर दिया है। यह संयोजन बड़ा ही कलात्मक हो गया है। सम्प्रति यह मूर्ति प्रयाग (इलाहाबाद) विश्वविद्यालय के संग्रहालय में सुरक्षित है।

देवी लक्ष्मी के अंकन का एक मृण्फलक भी कौशाम्बी में मिला है, जिसमें देवी लक्ष्मी को राजसी वैभव के साथ उनके राज्य-लक्ष्मी स्वरूप को दिखलाया गया है। खिले हुए कमल के कोष पर देवी खड़ी है और पार्श्व में चामर और छत्र लिये सेविकाएँ खड़ी हैं। देवी को पद्मस्था, पद्महस्ता एवं पद्मवासा प्रदर्शित किया गया है। यह फलक ई. सन् पूर्व की प्रथम शती का माना गया है। - (इंडियन आर्कियोलोजी ५६-५७, प्लेट ३८-ए)।

लोरियानंदन गढ़ (बिहार)

देवी लक्ष्मी की छत्र और चामर के साथ मृण्मूर्तियाँ बिहार के लौरियानंदन गढ़ में भी मिली हैं। ये मूर्तियाँ सम्प्रति कोलकाता के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। - (नवनीत, नवंबर १९९९, ए. एल. श्रीवास्तव का आलेख, पृ. ४१)।

अहिच्छत्रा (उत्तर प्रदेश)

उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत बरेली जनपद में स्थित अहिच्छत्रा के पुरातत्त्व उत्खनन में देवी लक्ष्मी की एक लघु ताम्र प्रतिमा प्रकाश में आई है। इस प्रतिमा को कुषाण काल की पुराविदों ने आंका है। देवी की दो भुजाएँ हैं तथा वे सम्भंग अवस्था में कमल के आसन पर खड़ी हैं। मुखाकृति गोल, केश राशि गुंथी हुई, गले में हार, कमर में करधनी, हाथों और पैरों में कड़े पहने हुए दिखलाया गया है। - (पांचाल अंक १२, १९९९, एम. एल. बहल का आलेख, पृ. १६१)।

बीजापुर (कर्नाटक) एवं कंपिल (उ. प्र.)

बीजापुर के समीपस्थ पट्टदकल नामक स्थान में देवी लक्ष्मी को एक कलाकृति पर इस प्रकार दिखलाया गया है कि वे जल के मध्य कमल की शय्या पर लेटी हैं।

उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के अंतर्गत गंगा नदी की घाटी में स्थित कम्पिल नामक स्थान पर भी बीजापुर जैसी ही मूर्ति है। इस अंकन में भी जल के मध्य कमल की शय्या पर देवी को लेटे हुए बतलाया गया है। - (कल्याण (१९८७), कला में देवी लक्ष्मी, श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ. २९७)।

खिचींग (जिला मयूरभंज), उड़ीसा

उड़ीसा के खिचिंग नामक स्थान से देवी लक्ष्मी का एक अंकन प्राप्त हुआ है। इस अंकन में देवी को एक अलंकृत चौरस चौखटे में विश्व पद्म पर आसीन दिखलाया गया है तथा कलशों को उलटकर हाथी उनका जलाभिषेक कर रहे हैं। देवी का दाहिना हाथ दाहिने घुटने पर वरद मुद्रा में है तथा बायें हाथ में प्रफुल्ल कमल-पुष्प है। - (प्रो. बनर्जी, दि डेवल्पमेंट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, पृ. ३७६)।

उपरोक्त स्थानों के अतिरिक्त देवी लक्ष्मी की मृण्मूर्तियाँ बसाढ़, पटना, तामलुक आदि स्थानों पर भी मिली हैं।

देवी लक्ष्मी के एकल अंकन के अतिरिक्त उनके पुरुषवाची देवताओं के साथ प्राचीन युगल अंकन भी मिल हैं। देवी लक्ष्मी की जो युगल मूर्तियाँ मिली हैं, वे हैं - श्री गणेश और धनाध्यक्ष कुबेर के साथ (आनंद कुमार स्वामी, यक्ष, भाग-२, फलक-८), यक्ष के साथ (एक्सकेवेशन्स एट बसाढ़, फलक ४०), कुबेर और यक्षी के साथ

(हेमावती, दि हेरिटेज एण्ड इण्डियन आर्ट सीरीज, फलक २०), शेषशायी विष्णु के साथ (राय गोविन्दचंद्र, प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा, पृ. १२८/२९), स्थानक मुद्रा (खड़े) में विष्णु और सरस्वती के साथ (राजमोहन नाथ, दि ग्लोरियस आसाम, फलक १३) एवं भू-देवी (वसुधा) के साथ (कन्नौज, राजकुमार दीक्षित, शिक्षा विभाग, उ. प्र., फलक ९)।

गुफाओं में देवी का अंकन

एलोरा (महाराष्ट्र के औरंगाबाद नगर के समीप) और महाबलीपुरम् (तमिलनाडु में चेन्नई के समीप) के गुफा मंदिरों में देवी लक्ष्मी के स्वरूप का अंकन किया गया है।

एलोरा

(१) दशावतार गुफा (गुफा क्रमांक १५)

इस गुफा में गज-लक्ष्मी का एक सुंदर अंकन है। देवी पद्मासन पर बैठी है। उनके मस्तक पर किरीट और कंठ में मुक्ता-माला है। यह मूर्ति खंडित अवस्था में है। प्रतिमा के नीचे के भाग पर कमलों से पूर्ण सरोवर है।

एलोरा की गुफाओं का निर्माण काल पुराविदों ने ई. सन् की छठी शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक माना है।

(२) कैलाश गुफा (**गुफा क्रमांक १६**)

इस गुफा में एक विशाल पद्मासन पर देवी लक्ष्मी ध्यान लगाये बैठी हैं। उनके दोनों ओर हाथियों के दो बच्चे हैं। उनकी पीठ और गले में जंजीरें पड़ी हैं। उनके घुटने मुड़े हुए हैं और उनकी सूंडे, जल-कलशों पर स्थित हैं। पीछे दो दिग्गज जलाभिषेक कर रहे हैं। देवी के सिर पर तने हुए छत्र में मोतियों की लटकती हुई लड़ें हैं।

महाबलीपुरम् (वराह गुफा)

तमिलनाडु में चेन्नई के निकट सागर तट पर स्थित महाबलिपुरम् में अनेक कलात्मक प्राचीन मंदिर हैं, जो पल्लव कालीन करीब ७वीं/८वीं शती के हैं। इन मंदिरों में कतिपय गुफा मंदिर भी हैं। इन गुफा मंदिरों में वराह नामक गुफा में भगवान विष्णु के वराह एवं त्रिविक्रम रूप की सुंदर प्रतिमाएँ हैं। इसी गुफा मंदिर में देवी लक्ष्मी के गज-स्वरूप का बड़ा भव्य अंकन है। - (टेम्पल्स ऑफ तमिलनाडु, आर. के. दास, पृ. २३४)।

(iv) प्राचीन मुद्राओं (सिक्कों) पर देवी का अंकन

प्राचीन मूर्तियों के अतिरिक्त देवी लक्ष्मी के विविध स्वरूपों से अंकित प्राचीन मुद्राएँ और मोहरें भी कई पुरातात्विक महत्त्व के स्थलों के उत्खनन में प्राप्त हुई हैं, जिनमें कुछ सिक्के और मोहरें ईस्वी सन् के पूर्व काल की हैं, जो इस बात के साक्ष्य है कि देवी लक्ष्मी पुरातन काल से एक लोकप्रसिद्ध आराध्य देवी हैं।

(१) राजा सुजेष्ठ के एक सिक्के के पीछे के भाग पर देवी लक्ष्मी का अंकन है। इस अंकन में देवी कमलासन पर स्थानक (खड़ी) मुद्रा में दाहिने हाथ में कमल-पुष्प धारण किये हुए है एवं हाथी उनका जलाभिषेक कर रहे हैं। इस राजा सुजेष्ठ को शुंग-वंश का राजा सुज्येष्ठ या ज्येष्ठमित्र माना गया है; अतः यह सिक्का ईस्वी सन् पूर्व की द्वितीय-प्रथम शती का है। - (अजिता घोष, जर्नल ऑफ न्युमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ इंडिया, अंक १६वां, पृ. ५९)।

(२) अयोध्या के राजा वायुदेव, विशाखदेव एवं शिवदत्त के, जो सिक्के प्राप्त हुए हैं, उन पर देवी लक्ष्मी के गज-लक्ष्मी स्वरूप का अंकन कुछ विविधता के साथ हैं। इन सिक्कों को ईस्वी सन् पूर्व प्रथम शती का आँका गया है। - (अल्लान-केटेलाग ऑफ कोइन्स ऑफ एन्सीयंट इंडिया, पृ. १३० तथा डी. सी. सरकार, एज ऑफ इम्पीरियल युनीटी, पृ. १७३)।

(३) ईस्वी सन् पूर्व प्रथम शती के कतिपय सिक्के मथुरा क्षेत्र से भी प्राप्त हुए हैं, जो गोमित्र, ब्रह्ममित्र, घोषदत्त, दृधमित्र के हैं तथा जिन पर देवी लक्ष्मी का अंकन है। देवी दाहिने हाथ में कमल-पुष्प धारण किये स्थानक (खड़ी) मुद्रा में हैं। (अल्लान, उपरोक्त, पृ. १७०)।

(४) ईस्वी सन् पूर्व प्रथम शती के कुणिंद के सिक्कों पर भी देवी लक्ष्मी का अंकन पाया गया है। इन सिक्कों पर देवी का अंकन हिरण के साथ है। अंकन में देवी के विविध रूप हैं - कहीं गजों द्वारा अभिषेक कराते हुए तो कहीं दाहिने हाथ में कमल-पुष्प धारण किये कमल पर स्थानक (खड़ी) मुद्रा में। - (अल्लान, उपरोक्त, पृ. १५९)।

(५) भारतीयों में अपनी लोकप्रियता बढ़ाने के उद्देश्य से ग्रीक देवी पल्लास के स्थान पर शक राजा महाक्षत्रप रांजवुल एवं शोणदास के सिक्कों पर देवी लक्ष्मी के

स्वरूप का अंकन किया गया है — कहीं गज-लक्ष्मी स्वरूप है, तो कहीं स्थानक मुद्रा में। इसी प्रकार अजीलिसेज, अजेसर (द्वितीय) हगामास के सिक्कों पर भी देवी का अंकन है। - (जेन्किन्स, जर्नल ऑफ न्युमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, अंक १८वाँ, पृ. ९, १४ व २९)।

(६) गुप्त वंश के राजा वैष्णव धर्मावलम्बी थे। उनके सिक्कों पर देवी लक्ष्मी को प्रभा मंडल और पट्टी के साथ अंकित किया गया है, जो देवी के राज-लक्ष्मी रूप का द्योतक है। - (मोतीचंद, जर्नल ऑफ यू. पी. हिस्टोरीकल सोसाइटी-१९४८, पृ. २७)।

(७) गुप्त वंश के सम्राट चंद्रगुप्त और कुमार देवी के सिक्कों पर देवी लक्ष्मी सिंह पर विराजमान बतलायी गई है तथा देवी अपने चरण कमल पर रखे हैं तथा हाथ में परिपूर्ण शृंग पकड़े है। - (आल्तेकर, गुप्त कालीन मुद्राएँ, पृ. २३)।

प्राचीन मोहरों पर देवी का अंकन

सिक्कों के अलावा देवी लक्ष्मी की आकृति से अंकित मोहरें भी कई पुरातात्विक महत्त्व के उत्खननों से प्राप्त हुई हैं।

बसाढ़ (वैशाली), बिहार राज्य

बसाढ़ में उत्खनन में प्राप्त गुप्त कालीन मोहरों पर देवी लक्ष्मी के विविध प्रकार के अंकन हैं। उत्खनन में प्राप्त एक मोहर पर देवी लक्ष्मी को एक वृक्ष की छाया में खड़ी बतलाया गया है। उनके दोनों पार्श्वों में हाथी जल छिड़कते प्रदर्शित किये गये हैं। देवी के पास ही दो बौने कद के सेवक थैली जैसी वस्तु पकड़े खड़े हैं।

बसाढ़ के उत्खनन में ऐसी मोहर भी प्राप्त हुई, जिस पर देवी का गज-लक्ष्मी स्वरूप किंचित संशोधन-परिवर्तन के साथ अंकित है। - (एक्सकेवेशन्स एट बसाढ़, आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, एन्युअल रिपोर्ट, १९०३-४, पृ. १०७)।

बसाढ से प्राप्त एक कुषाण कालीन मोहर पर देवी लक्ष्मी एक नाव पर अंकित की गई है । देवी का एक हाथ कटि पर है और दूसरे में कमल-पुष्प है। देवी के बायीं ओर शंख और गरुड़ की आकृति का अंकन है। - (एक्सकेवेशन एट बसाढ़ आर्कियोलोजीकल सर्वे आफ इंडिया-एन्युअल रिचोर्ट १९१३-१४ फलक १३०)

भीटा

भीटा क्षेत्र में एक उत्खनन में प्राप्त एक मोहर में हाथियों के साथ देवी लक्ष्मी को कमल पर स्थानक (खड़ी) मुद्रा में दिखलाया गया है। श्री मार्शल के मतानुसार देवी का बायाँ हाथ गरुड़ पर धरा हुआ है। लेकिन जीतेन्द्रनाथ बनर्जी के मतानुसार देवी का बायाँ हाथ गरुड़ पर नहीं बल्कि इस हाथ में देवी नीचे की ओर लटकते चँवर की मूठ पकड़े है तथा मूठ का आकार पक्षी के कंठ जैसा है। - (डेवल्पमेंट ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, पृ. १९६)।

भीटा क्षेत्र से ही प्राप्त एक अन्य मोहर पर देवी लक्ष्मी को खिले हुए कमल पुष्प पर स्थानक (खड़ी) मुद्रा में दिखलाया गया है। दाहिने हाथ से देवी शंख पकड़े है तथा बायें से एक पक्षी। दोनों ओर एक-एक हाथी खड़े हैं, जो शंख और पक्षी पर जल छिड़क रहे हैं। - (दि ओरिजन एण्ड डवल्पमेंट ऑफ वैष्णवीजम्, सुवीरा जायसवाल, पृ. १०८-९)।

उपरोक्त पुरातत्त्वीय साक्ष्यों के आधार पर हम यह से कह सकते हैं कि पुरातत्त्वीय दृष्टि से देवी लक्ष्मी की मान्यता एवं उनके देवत्व की उपासना का प्रचलन उतना ही पुरातन तो निश्चित रूप से है ही, जितनी सिन्धु-सरस्वती घाटी की सभ्यता।

ललित साहित्य में देवी लक्ष्मी

वैदिक और पौराणिक संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त देवी लक्ष्मी के देवत्व एवं उसकी शक्ति का उल्लेख संस्कृत एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं में अनेकत्र मिलता है। साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं को अलंकृत करने, अपने लेखन को अर्थ-गौरव प्रदान करने एवं उसे रुचिकर बनाने के उद्देश्य से कहीं अपने पात्रों को देवी के दिव्य-भव्य दर्शन करवाये हैं, तो कहीं अपने पात्रों के सौंदर्य एवं गुणवत्ता को देवी के सगुण स्वरूप के सौंदर्य और गुणवत्ता से उपमित करने के लिये, तो कहीं देवी के चंचल स्वभाव को रेखांकित कर देवी का अनुग्रह प्राप्त करने का प्रयास किया है। इन रचनाकारों ने 'श्री' और 'लक्ष्मी' में अभेद मानकर एक ही देवी लक्ष्मी के इन्हें पर्यायवाची नाम माने हैं, परन्तु इन रचनाकारों ने 'श्री' और 'लक्ष्मी' शब्दों का प्रयोग क्रमशः 'शोभा' और 'लक्षण' के अर्थों में भी किया है।

महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों और नाटकों में देवी लक्ष्मी का श्रद्धापूर्वक उल्लेख कई प्रसंगों में किया है। 'रघुवंश' महाकाव्य में कालिदास का कथन है कि 'अपने पिता राजा दिलीप से प्राप्त सिंहासन पर विराजमान राजा रघु को देखकर देवी लक्ष्मी स्वयं अदृश्य रूप से उन्हें प्रभामय करने के उद्देश्य से कमल रूप छत्र से उनकी सेवा में तत्पर हुई।'

छायामंडल लक्ष्येण तमदृश्या किलस्वयम्।
पद्मा पद्मातपत्रेण भेजे साम्राज्यदीक्षितम्।। - (४/५)

आगे अध्याय ६ में महाकवि ने इन्दुमती के स्वयंवर का वर्णन करने के उपरान्त उसकी तुलना देवी लक्ष्मी के स्वयंवर से की है। कवि लिखता है कि राजकुमार अज और

राजकुमारी इन्दुमती के स्वयंवर का कार्य सम्पन्न होने पर जब वे राजमार्ग से गमन कर रहे थे, तब उन्हें देखने की उत्कंठा रखने वाली नगर की सुंदरियाँ परस्पर बात करती हैं कि विवाह के लिये राजाओं द्वारा बिना देखे प्रार्थना करने पर भी इन्दुमती ने स्वयंवर रचना ही अच्छा माना और यह ठीक ही हुआ। यदि स्वयंवर न रचती तो जिस प्रकार लक्ष्मीजी ने भगवान विष्णु को पति रूप में पाया, वैसे ही इन्दुमती अपने जैसे सुंदर पति को कैसे पाती अर्थात् अगर वह स्वयंवर नहीं रचती, तो अज जैसा सुंदर पति नहीं पाती।

स्थानेवृता भूपतिभिः परोक्षैः स्वयंवरं साधुममंस्त भोज्या।
पद्मेव नारायणमन्यथासौ लभेत कान्तं कथमात्म तुल्यम्।। - (७/१३)

रघुवंश के अध्याय दशम में महाकवि ने भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी के युगल स्वरूप का शब्दचित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है —

भोगिभोगासनांसीनं ददृशुस्तं दिवौकसः।
तत्फणा मंडलोदर्चिर्मणि द्योतित विग्रहम्।।
श्रियः पद्मनिषण्णायाः क्षौमान्तरित मेखले।
अंके निक्षिप्त चरणमास्तीर्ण कर पल्लवे।। - (१०/७-८)

अर्थात् स्वर्ग के देवताओं ने शेषनाग के शरीर रूपी आसन पर बैठे भगवान विष्णु को देखा, जिनका शरीर शेषनाग के फणों के समूह में चमकती हुई मणियों से देदीप्यमान हो रहा है और कमल पर बैठी हुई देवी लक्ष्मी की गोद में भगवान विष्णु ने अपने चरण रखे हैं। देवी की करधनी साड़ी से ढकी है तथा गोद पर देवी के कर-पल्लव रखे हैं। इस प्रकार देवी लक्ष्मी को भगवान विष्णु की सेवा में रत बतलाया गया है।

इसी अध्याय में कवि ने महाराजा दशरथ की तीनों रानियों की गर्भावस्था का उल्लेख करते हुए, उन्हें स्वप्न में देवी लक्ष्मी का दर्शन करवाया है। द्रष्टव्य है -

बिभ्रत्या कौस्तुभन्यासं स्तनान्तर विलम्बिनम्।
पर्युपास्यन्त लक्ष्म्या च पद्म व्यजन हस्तया।। - (१०/६२)

अर्थात् दोनों स्तनों के मध्य में लटकने वाली कौस्तुभ मणि रूपी थाती को धारण किये हुए और कमल के पंखे को हाथ में लिये लक्ष्मीजी उनकी (तीनों रानियों की) सेवा कर रही हैं, ऐसा उन्होंने स्वप्न में देखा।

विक्रमोर्वशी नाटक के अंत में महाकवि कालिदास ने भरत-वाक्य के रूप में देवी लक्ष्मी और देवी सरस्वती के समन्वयन की कामना निम्नवत की है —

परस्पर विरोधिन्योरेक संश्रय दुर्लभम्।
संगतं श्री सरस्वत्यो भूतयेऽस्तु सदा सताम्॥

अर्थात् परस्पर विरोधिनी — जिनका एकत्र संगम दुर्लभ है — लक्ष्मी और सरस्वती का संयोग सज्जनों के लाभ के लिए सदा बना रहे।

महाकवि कालिदास ने 'कुमार संभव' में कहा है कि 'लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रिया दुरावः कथमीप्सितो भवेत्' अर्थात् जो लक्ष्मी को पाना चाहता हो, उसे लक्ष्मी भले ही न मिले, पर जिसे स्वयं लक्ष्मी चाहे वह उसको न मिले, यह कैसे हो सकता है।

'हर्षचरितम्' में बाण भट्ट ने देवी लक्ष्मी का मानवीकरण कर, नाटकीय शैली में वर्धन राजवंश के आदि संस्थापक सम्राट हर्ष के पूर्वज राजा पुष्पभूति को देवी का दिव्य दर्शन करवा कर उसे वरदान दिलवाया है। राजा पुष्पभूति एक परम शिव भक्त था तथा दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध शिवोपासक भैरवाचार्य से उसकी घनिष्ठता थी। भैरवाचार्य ने राजा को 'अट्टहास' नामक एक अद्भूत तलवार भेंट स्वरूप दी थी, अतः भैरवाचार्य की साधना की सिद्धि के लिये वह प्रयत्नशील था। एक दिन अचानक उसने प्रकाशपुंज सम एक स्त्री को अपनी ओर आते देखा। वह स्त्री शरीर पर श्वेत अंशुक वस्त्र धारण किये हुए थी तथा विविध प्रकार के आभूषणों से सज्जित थी। उसके गले में पड़ी मालायें धरती तक लटक रही थी। उसके हाथ कमल सदृश्य थे तथा जिसके मृणाल के समान कोमल अंग ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे वे कमल से उत्पन्न हुए हों। जब वह दिव्य-भव्य रूप धारी स्त्री राजा पुष्पभूति के समीप आ गई तब राजा ने उससे पूछा —

"भद्रे! तुम कौन हो? क्यों सामने आई हो? (भद्रें! कासि, किमर्थं वा दर्शन पथमागतासि?) तब वह बोली — "वीर! नारायण के हृत्प्रदेश में लीला विहार करने वाली हरिणी, पृथु, भरत, भगीरथ आदि राजाओं के वंशों की पताका, खड्गों के धारा जल में कमलिनी रूप में खिलने वाली, तू मुझे लक्ष्मी जान। मैं तेरी शूरता के प्रति आकर्षित हो यहाँ आई हूँ। माँग। तुझे इच्छित वर दूँगी। (वीर! विद्धि मां नारायणोरः स्थली लीला विहार हरिणीम्, पृथु भरत भगीरथादि राजवंश पताकाम, असिधाराजलकमलिनीं श्रियम्। अपहृतास्मि तवामुना शौर्यरसेन याचस्व। ददामि ते वरमभिलषितम् इति')।

राजा ने उसे प्रणाम कर स्वार्थ से विमुख होकर भैरवाचार्य की सिद्धि के लिये याचना की। देवी लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर, विस्फारित नेत्रों से राजा को इस प्रकार देखा मानो दूध से राजा का अभिषेक कर रही हो तथा वह बोली, "ऐसा ही हो।" वह फिर बोली, "राजन्! अपने बल के इस उत्कर्ष से तथा भगवान शिव भट्टारक की असामान्य भक्ति से आप पृथ्वी पर शूरता में समर्थ पुरुषों से युक्त विशाल राजवंश के कर्त्ता होंगे। (महतो राजवंशस्य कर्त्ता भविष्यति)।

ऐसा वर देकर देवी अन्तर्धान हो गई। - (हर्षचरित, तृतीय उच्छवास)

महाकवि माघ ने 'शिशुपाल वध' काव्य के मंगलाचरण में वासुदेव को 'श्रियःपतिः' कहा है तथा सर्ग तृतीय में लक्ष्मी को 'विष्णु की उरस्थिता और आनंददायिनी (कपाट विस्तीर्णमनोरमोरः स्थल स्थित श्री ललनस्य तस्य।' - ३/१३) श्रीकृष्ण की सेना और समुद्र की श्री का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि श्रीकृष्ण की सेना सतत श्री (शोभा) को पा रही थी, जबकि समुद्र से श्री (लक्ष्मी) पहले ही निकल चुकी थी। (. . . विगत श्रियो जलनिधेः। - ३/९२)

श्रीहर्ष ने 'नैषधीय चरित' में दमयंती की उपमा सागर से उद्भूत देवी लक्ष्मी से दी है। दमयन्ती के सौंदर्य को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से कवि का कथन है —

श्रियमेव परं धराधिपाद् गुणसिन्धोरुदिताम वेहि ताम्।
व्यवधावपि यां विधो कलां मृड चूडा निलयां न वेदकः।।

अर्थात् आप उस दमयन्ती को गुण-समुद्र राजा भीम से उत्पन्न साक्षात् लक्ष्मी ही जानें। पृथक रहने पर भी शिवजी की चूडा में स्थित चन्द्रकला को कौन नहीं जानता?

श्रीहर्ष ने भगवान विष्णु की चरण-सेवा करती देवी लक्ष्मी का वर्णन भी किया है तथा विष्णु पत्नी के रूप में देवी लक्ष्मी के साथ देवी सरस्वती का भी उल्लेख किया है।

'मालती-माधव' में भवभूति ने देवी लक्ष्मी की प्राप्ति की कामना सूर्य-प्रार्थना में की है। (सकल सौख्य सम्पादन समर्थां लक्ष्मी धेहि' - १/५)। इसी में अन्यत्र भवभूति ने देवी लक्ष्मी को मंगल प्रदात्री भी कहा है। (समग्र सौभाग्य लक्ष्मी परिग्रहैकमंगलम् - ६/८)।

'स्वप्नवासव दत्तम्' नाटक में महाकवि भाष ने नान्दी के पश्चात् सुत्रधार से जो मंगल कामना का श्लोक कहलाया है, उसमें देवी लक्ष्मी को 'पद्मावती' कहा गया है।

(पद्मावतीर्ण पूर्णो . . . १/१)। इसी नाटक में अंक षष्टम में कांचुकी कहती है कि कायर या शक्तिहीन में कोई उत्साह का भाव नहीं जागता और सामान्यतः नरेन्द्रश्री (राज्यश्री) का उपभोग उत्साही ही करते हैं।

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्री सोत्साहैरेव भुज्यते।। - (६/७)

संस्कृत ललित साहित्य की परम्परा में आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी रचनाकारों ने अपनी रचनाओं को देवी लक्ष्मी के देवत्व एवं कर्तृत्व के प्रकाश से प्रसंगानुसार आलोकित किया है।

महाराष्ट्रीय संत एकनाथ महाराज रचित आदिमाया महालक्ष्मी के स्तुति-स्तोत्र वीर रसात्मक है। उनमें अध्यात्म तत्त्व है और वीर रस भी। एक बड़े ही ओजस्वी पद में उन्होंने 'द्वार खोल मैया द्वार खोल' कहकर भगवती से प्रकट होने की प्रार्थना की है। परमेश्वरी चित्-शक्ति राष्ट्र के अंग-अंग में प्रवेश करे, यही भावना उन्होंने खुले शब्दों में प्रकट की है। प्रत्येक क्षेत्र की लक्ष्मी को 'द्वार खोल मैया (मराठी में द्वार उघड़ बया) कहकर आवाहन किया है —

अलक्ष्यपुर भवानी! द्वार खोल मैया।
माहुर लक्ष्मी! द्वार खोल मैया।
कोल्हापुर लक्ष्मी! द्वार खोल मैया।
तुलजापुर लक्ष्मी! द्वार खोल मैया।
तैलंगाण लक्ष्मी! द्वार खोल मैया।
कान्नाड लक्ष्मी! द्वार खोल मैया।
पाताल लक्ष्मी! द्वार खोल मैया।
पंढरपुरवासिनी! द्वार खोल मैया।
द्वार खोल मैया! द्वार खोल मैया।।

– (महाराष्ट्र की शक्ति उपासना, पं. श्री रा. पांगारकर,
कल्याण (शक्ति अंक), १९३४, पृष्ठ ४१६)

राष्ट्र-गीत 'वन्देमातरम्' के रचयिता बंगाली भाषा के सुप्रसिद्ध कवि बंकिमचंद्र चटोपाध्याय ने हिमाद्री तुंग शृंग का मुकुट धारण किए तथा रत्नाकरों के मध्य स्थित

भारतमाता के भौगोलिक स्वरूप में संभवतः सागर से उद्भूत एवं दिग्गजों द्वारा अभिषिक्त देवी लक्ष्मी के गज-लक्ष्मी स्वरूप का प्रतिबिम्ब देखा है तथा भारतमाता को नमन करते हुए कहते हैं —

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण धारिणी,
कमला कमलदल विहारिणी,
वाणी विद्यादायिनी नमामि त्वां।
नमामि कमलां अमलां अतुलां,
सुजलां सुफलां मातरम्।
वन्दे मातरम्।
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्।
धरणीं भरणीम् मातरम्।।

तमिल भाषा के सुप्रसिद्ध महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की तमिल कविता का हिन्दी रूपान्तर 'लक्ष्मी की शरण में' शीर्षक में कवि ने देवी लक्ष्मी का वर्णन इस प्रकार किया है —

क्षीर-सागर के अन्तर से जन्मी है।
उससे निकले सद् अमृत का-सा स्वभाव है।
श्रेष्ठ अति कमल पुष्प उसमें
युगल पद्मपादधर वह विराजती है
जिसके हैं चार हाथ
नाना उनमें बहुविध वैभव से युक्त भू-मंडल
तीक्ष्ण, पैनी आँखें काली, गौर
अंग, तन की हरीतिमा लावण्यमयी।

देवी के वास स्थानों और कृपा-पात्रों का उल्लेख करने के अनन्तर कवि यह कामना करता है कि ऐसी देवी को हम जिह्वा और मन में बसा लें। द्रष्टव्य है -

मृदा में, मीठे फूलों में
पर्वत शिखरों में
अतल वारिधितल में

यज्ञ वेदी में पवित्र
अपार यश में
मति में, नव नूतनता में
शोभित नव प्रतिभा में
प्रिय गायन में
नृत्य और नवचित्र में
समस्त सुंदर सृष्टि में विराजती, उसे
जिह्वा और मन में हम बसा लें।

- (सु. भा. संकलित कविताएँ और गद्य, पृ. १००)

हिन्दी के महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी काव्य-रचना में धार्मिक एवं मिथकीय आयामों का निरूपण किया है। निराला रचित 'राम की शक्ति पूजा' शीर्षक कविता के अन्त में आद्याशक्ति के तीनों रूपों यथा सरस्वती, महालक्ष्मी एवं महाकाली (दुर्गा) का दर्शन कवि ने श्रीराम को करवाया है। जब श्रीराम देवी दुर्गा यज्ञ में एक कमल-पुष्प के कम होने पर अपने ही तूणीर से ब्रह्म-शर निकाल कर, उससे अपना दक्षिण नयन निकालने के लिये उद्यत होते हैं, तब देवी दुर्गा वहाँ अवतरित हो जाती है एवं राघव का हाथ थाम लेती है। उस समय श्रीराम ने अपने सामने देवी दुर्गा का दर्शन किया, जिसका उस समय वामपद असुर के कंधे पर था तथा दायाँ सिंह पर। देवी के दसों हाथों में विविध शस्त्रास्त्र सज्जित थे एवं दक्षिण पार्श्व में लक्ष्मी और वाम पार्श्व में सरस्वती भी थीं तथा दायीं ओर श्रीगणेश और बायीं ओर थे कार्तिकेय एवं मस्तक पर भगवान शंकर शोभायमान थे।

'देखा राम ने, सामने श्रीदुर्गा भास्वर,
वामपद असुर स्कंध पर, रहा दक्षिण हरि पर,
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दस विविध अस्त्र सज्जित,
मंद स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित,
है दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग,
दक्षिण गणेश, कार्तिक बायें रण-रंग राग,
मस्तक पर शंकर'।

- (अपरा, पृ. ४५)

धन-धान्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी एवं ज्ञान-विज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती में परस्पर वैमनस्य-भाव है, ऐसे लोक-प्रवाद को निरालाजी ने अपने काव्य में कहीं भी प्रश्रय नहीं दिया है। वे इन दोनों मातृ देवियों को एक दूसरी की पूरक एवं अभिन्न मानते हैं और उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में विशेषकर राष्ट्रीय भावना के गीतों में राष्ट्र की प्रगति के लिये दोनों के समन्वित रूप को प्रस्तुत कर, उस मिले-जुले लक्ष्मी-सरस्वती रूप को ही राष्ट्र की प्रगति के लिये श्रेयस्कर माना है।

निरालाजी ने अपने गीत 'जागो! जीवन धनिके!' में जीवन में धन-प्रदात्री को जगाने का प्रयास किया है और जहाँ एक ओर विश्व भर के व्यापार/उद्योग की वणिके (व्यापार करने वाली) से निवेदन किया है कि वह 'बहु जीवनोपाय भर दो, घर'; वहीं दूसरी ओर देवी सरस्वती से प्रार्थना की है कि 'भारती (सरस्वती) भारत को फिर दो वर, ज्ञान-विपणि खनिके' अर्थात् ज्ञान के क्षेत्र में भी भारत का वर्चस्व हो।

निरालाजी का एक दूसरा सुप्रसिद्ध गीत है — 'भारती! जय विजय करे'। इस गीत में भारत-रूपा भारती को लक्ष्मी रूपा मानकर कवि उसे 'कनक-शस्य-कमल-धरा' अर्थात् स्वर्ण-धान्य और कमल पुष्प को धारण करने वाली कहा है।

'तुलसीदास' शीर्षक काव्य रचना में निरालाजी ने युवा तुलसीदास को उनकी पत्नी रत्नावली की प्रताड़ना से जो आत्मबोध एवं विरक्ति हुई, उसे काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। रत्नावली की उस समय की भाव भंगिमा में निरालाजी को देवी लक्ष्मी एवं देवी सरस्वती दोनों का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर हुआ। वे लिखते हैं —

कुछ समय अनंतर, स्थित रहकर,
स्वर्गीयाभा वह स्वरित प्रखर,
स्वर में झर-झर जीवन भर कर ज्यों बोली;
अचपल ध्वनि की चमकी चपला
बल की महिमा बोली अबला,
जागो जल पर कमला, अमला मति डोली।

अर्थात् वह (रत्नावली) ऐसे बोली जैसे बिजली की चमक हो, किंतु उस बिजली की चमक स्थिर थी। कहलाती अबला है परन्तु है वह बल की महिमा — विश्व के बल की प्रतीक नारी। जैसे जल पर लक्ष्मी जागी हो अथवा सरस्वती ही चंचल हो उठी हो।

देवी लक्ष्मी के चंचल स्वभाव को लेकर कई कवियों ने उन पर व्यंगोक्ति की है। सम्राट अकबर के नवरत्नों में से एक सुकवि अब्दुर्रहीम खान खाना ने एक दोहे में कहा है कि लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती है, क्योंकि वह परम पुरुष की पत्नी है —

कमला थिर न रहीम कहि, यहि जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चंचला होय।।

- (रहीम दोहावली)

संस्कृत के साहित्यकार बाण भट्ट ने भी हर्ष-चरित में देवी लक्ष्मी को चंचला कहा है — (अयशः प्रमृष्टिरिव लक्ष्म्याः। - उच्छवास ४)।

राजस्थानी भाषा के सुप्रसिद्ध हास्य कवि विमलेश ने देवी लक्ष्मी को 'चाची लक्ष्मी' शब्द युग्म से संबोधित कर कई हास्य-रस प्रधान कविताओं की रचना की है। 'लिछमी चाची आज रात सुपनै में आई' (लक्ष्मी चाची आज रात्रि में स्वप्न में आई) में लक्ष्मीजी को एक हाथ में 'परमिट' की पुस्तक और दूसरे में जलती लालटैन लिये चित्रित किया है। जब जिज्ञासावश कवि उन्हें 'परमिट पुस्तक' एवं 'लालटैन' लेकर आने का तात्पर्य पूछता है तो लक्ष्मीजी 'परमिट' को धन-प्राप्ति का साधन एवं 'लालटैन' को बिजली अचानक चले जाने पर प्रकाश का साधन बतलाती है।

इस प्रकार कवि ने भारतीय शासन तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं अव्यवस्था पर देवी लक्ष्मी के माध्यम से प्रखर प्रहार किया है। देखें —

'भाई लोगो
आज रात मन्ने सुपनै में साक्षात लिछमीजी दीखी
दिब दिबाट करतो मूँ अर बैच्यार हाथ
बो मुकुट अनोखो और गळै में कंठो चोखो
एक बार मेरी भी आख्याँ खागी धोखो
एक हाथ में कोई रसीद की सी किताब थी
और दूसरै में थी चसती लालंटेण।

●●

संख चक्र अर गदा पदम की जगां आज तूं
हाथों में ये के ल्याई है?

परमिट बुक कै ऊपरलै हाथ में
आज या लालटेण है क्यां के खातर?
चाची हाँसी, बोली 'या तो बारबार में बिजली जावै
जीकै खातर सराजाम सागै राखूँ हूँ क
कठे अंधेरे में आखड़कै नीं पड ज्यावूँ।'

- (नौ रसों में रस हास्य, पृ. १९०)

सारतः देवी लक्ष्मी के देवत्व की दिव्य-भव्य सामर्थ्य एवं उनके सगुण स्वरूप के सौंदर्य एवं सौष्ठव का आश्रय लेकर ललित साहित्य के रचनाधर्मियों ने शृंगार, शांत, हास्य, व्यंग आदि रसों की वैविध्य पूर्ण रचनाओं की सर्जना की है और कर रहे हैं।

●

देवी लक्ष्मी की उपासना

उपासना के प्रारम्भ की पुराकथा

ब्रह्म वैवर्त पुराण एवं श्रीमद्देवी भागवत के अनुसार देवी लक्ष्मी की सर्वप्रथम पूजा भगवान नारायण ने वैकुंठ में की। दूसरी बार ब्रह्माजी ने भक्ति-पूर्वक इनका अर्चन किया। तृतीय श्रेणी के उपासक भगवान शिव है। भगवान विष्णु ने क्षीर-सागर में इनकी पूजा की। तदनन्तर स्वायम्भुव मनु, मानवेन्द्र, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सभ्य गृहस्थ - इन लोगों ने जगत में देवी की उपासना की। गंधर्वों और नागों ने पाताल-लोक में इनका पूजन किया।

वैकुंठे पूजिता साऽऽदौ देवी नारायणेन च।
द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीये शंकरेण च।।
विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने।
स्वायम्भुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः।
ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवं।
गंधर्वाद्यैश्च नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता।।

- (ब्र. वै. पु., प्रकृति खंड, ३५/२५-२७ एवं देवी भागवत, ९/३९/२१-२३)

इस प्रकार सभी लोगों द्वारा देवी लक्ष्मी वंदित और पूजित हुई, जो समस्त ऐश्वर्यों की अधिदेवी और निखिल सम्पत्तियों की स्वरूप हैं।

एवं सर्वत्र सर्वैश्च वंदिता पूजिता सदा।
सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्स्वरूपिणी।।

- (ब्र. वै. पु., प्रकृति खंड, ३५/३४)

उपासना का ध्येय एवं आधार

भारतीय चिन्तन एवं विचारधारा के अनुसार सभी देवी-देवताओं की उपासना, ध्यान, मनन, पूजा आदि मूलतः आध्यात्मिक सिद्धि और ज्ञान प्राप्त करने एवं उपास्य के साथ एकात्मकता स्थापित करने के लिये होता है, लेकिन सामान्यजन भौतिक सुख, सौभाग्य एवं समृद्धि की प्राप्ति एवं अपनी अभिलाषाओं की तृप्ति के लिये देवी-देवताओं की कृपा दृष्टि की प्राप्ति की आकांक्षा से विविध प्रकार की साधनाएँ करते हैं।

देवी लक्ष्मी की उपासना भी मूलतः आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करने के लिये ही करने का विधान है, परन्तु सांसारिक सुख, सौभाग्य एवं समृद्धि की प्राप्ति के लिये भी देवी की आराधना विविध प्रकार से की जाती है।

देवी लक्ष्मी की उपासनार्थ निम्नशः आधारों का आश्रय साधक लेता है —

(१) मूर्ति या प्रतिमा (मानवी देह के अनुरूप देवी की शिल्पी-कृत कलात्मक कृति।

(२) यंत्र (ज्यामितिक आकृति के रूप में देवी का प्रतीक)।

(३) मंत्र (ध्वनि-रूप या ऐसा विचार रूप, जिसका उच्चारण हो सके) के द्वारा देवी का स्मरण।

उपरोक्त आधारों का उपयोग उपासक चाहे तो एक साथ भी कर सकता है और अलग-अलग भी।

(१) मूर्ति या प्रतिमा

शास्त्रों में वर्णित ध्यान-श्लोकों एवं प्रतिमा विधान संबंधी ग्रन्थों में वर्णित देवी के सगुण स्वरूप के आधार पर शिल्पकारों / कलाकारों द्वारा निर्मित देवी की प्रतिमाएँ मुख्यतया तीन प्रकार की मिलती हैं। ये तीन प्रकार हैं — (१) स्थानक (खड़ी) (२) आसीन (बैठी) (३) हाथियों द्वारा अभिषेक कराते हुए (गज-लक्ष्मी)। स्थानक मूर्तियाँ (१) समपाद (सीधे खड़ी मुद्रा में), (२) द्विभंगी (खड़े होने की मुद्रा में तथा दो अंग टेढ़े), (३) त्रिभंगी (खड़े होने की मुद्रा में तथा तीन अंगे टेढ़े) होती हैं। आसीन मूर्तियाँ पद्मासन या ललितासन में होती है।

श्रीमद् भागवत में निम्नलिखित आठ प्रकार की देव-मूर्तियों की रचना करने का उल्लेख है —

(१) पाषाण प्रतिमा, (२) काष्ठमय प्रतिमा, (३) धातु प्रतिमा, (४) दीवारों को लीप-पोतकर बनाई गई प्रतिमा, (५) चित्र लिखित प्रतिमा, (६) रेणुकी (मृण्मय) प्रतिमा, (७) मनोमय प्रतिमा और (८) मणिभव प्रतिमा)।

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमा अष्ट विधा स्मृता।। - (११/२७/१२)

देवी लक्ष्मी की वैसे तो इन सभी प्रकार की प्रतिमाओं का निर्माण किया जाता है, परन्तु ध्यान और उपासना के लिये पाषाणमयी प्रतिमाओं की ओर विद्वानों का झुकाव अधिक है। मत्स्य पुराण के अनुसार देव प्रतिमा का निर्माण सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, रत्न, पत्थर, देवदारु, लोहा-सीसा, पीतल और काँसा मिश्रित अथवा शुभ काष्ठों की होनी चाहिये। - (२५८/२०-२१)

अग्नि पुराण के अध्याय ४५ (पिण्डिकादि लक्षणम्) में देवी लक्ष्मी की मूर्ति का क्या माप होना चाहिये एवं प्रतिमा कैसी बनानी चाहिये, के बारे में उल्लेख किया गया है। भविष्य पुराण (मध्यम पर्व अ. १२) में देव प्रतिमा निर्माण विधि का वर्णन किया गया है। उसके अनुसार प्रतिमा के निर्माण के पश्चात् उसे किसी उपयुक्त स्थान पर स्थापित कर उसका शास्त्र सम्मत विधि से पवित्रीकरण करवाना चाहिये। यदि प्रतिमा किसी मंदिर में स्थापित करनी हो तो न केवल उसका पवित्रीकरण अपितु प्राण-प्रतिष्ठा का भी अनुष्ठान करवाना चाहिये।

पूजा के लिये मूर्ति के पवित्रीकरण और प्राण प्रतिष्ठा करने से प्रतिमा में दिव्यशक्ति का समावेश हो जाता है एवं उपासक के लिये प्रतिमा पूज्य एवं श्रद्धास्पद हो जाती है।

चाणक्य नीति (७/१२) में कहा गया है —

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।
देवो हि विद्यते भावे तस्माद् भावो हि कारणम् ।।

अर्थात देवता लकड़ी में नहीं है और न पत्थर या मिट्टी में ही है, वह तो उनके अन्तर्गत रहस्यमय भाव में है इसलिये यह रहस्यमय भाव ही मूर्तिपूजा में कारण है। उपासक इसी देवत्व के भाव की पूजा प्रतिमा के माध्यम से करता है।

देवी लक्ष्मी की प्रतिमा पूजा षोडशोपचार से करनी चाहिये।

पूजा विधि

उपासक को पूजा करने के पूर्व स्नान कर, स्वच्छ वस्त्र पहन एवं आसन पर बैठकर देवी लक्ष्मी का ध्यान धरना चाहिये। हृदय में देवी के स्वरूप को स्थिर करने के लिये देवी का वर्णन करने वाले ध्यान श्लोकों का पाठ करना चाहिये और तदुपरान्त पूजा के सोलह उपचारों यथा (१) आवाहन, (२) आसन, (३) अर्ध्य-पाद्य, (४) आचमन, (५) मधुपर्क, (६) स्नान, (७) वस्त्राभरण, (८) यज्ञोपवीत, (९) गंध, (१०) पुष्प, (११) धूप, (१२) दीप (१३) नैवेद्य, (१४) ताम्बुल, (१५) परिक्रमा एवं (१६) वंदना के द्वारा देवी की पूजा अर्चा करनी चाहिये।

यंत्र - यंत्र ज्यामितिक आकृति में देवी-देवता के मूर्त या प्रतीक रूप हैं, जिन्हें बिन्दु, रेखा, त्रिकोण एवं वृत आदि के द्वारा शास्त्र सम्मत पद्धति के अनुसार बनाया जाता है तथा तत्पश्चात् विधि-विधानानुसार यंत्र की प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है, जिससे यंत्र शक्ति सम्पन्न हो जाता है। तांत्रिक उपासना में मंत्र जैसा ही महत्त्व यंत्र का भी है। देवता का मन मंत्र है तथा शरीर यंत्र।

श्रीयंत्र

देवी लक्ष्मी का प्रतीक यंत्र सुप्रसिद्ध 'श्री यंत्र' है। यह यंत्र भगवती त्रिपुरसुंदरी का यंत्र माना जाता है, परन्तु देवी लक्ष्मी की उपासना के लिये भी इसे एक सर्वश्रेष्ठ यंत्र माना गया है। इस यंत्र में समस्त ब्रह्मांड की उत्पत्ति और विकास दिखलाये गये हैं और साथ-साथ यह यंत्र साधक के मानव-शरीर का भी द्योतक है।

श्रीयंत्र नौ त्रिकोणों का यंत्र है। यंत्र के सबसे भीतरी वृत में वृत के केन्द्रस्थ बिन्दु के चारो ओर नौ त्रिकोण हैं। इनमें से पांच त्रिकोण तो ऊर्ध्वमुखी है और चार अधोमुखी। ऊर्ध्वमुखी पाँच त्रिकोण देवी के द्योतक हैं और इन्हें 'शिवयुवती' कहा जाता है। अधोमुखी चार त्रिकोण परमात्मा (शिव) के द्योतक हैं और इन्हें 'श्रीकंठ' कहा जाता है। पाँचों शक्ति-त्रिकोण ब्रह्मांड के विषय में पंच-महाभूत, पंच-तन्मात्राओं, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय तथा पंच-प्राण के द्योतक हैं। मनुष्य शरीर में यही पांच त्रिकोण त्वक, असृक, मांस, मेद और अस्थि रूप में स्थित हैं और चारों पुरुषवाची (परमात्मा / शिव) त्रिकोण ब्रह्मांड में चित्, बुद्धि, अहंकार और मन रूप में स्थित हैं और मानव शरीर (पिंडांड) में ये मज्जा, शुक्र, प्राण और जीव रूप से विद्यमान हैं।

उक्त नौ त्रिकोणों के सम्मिश्रण से तैंतालीस छोटे-छोटे त्रिकोण बनते हैं। भीतरी वृत के बाहर अष्ट-दल कमल है और उसके बाहर पोडश (सोलह) दल कमल है और इन सबके बाहर भूपुर है। इन्हीं के विषय में प. पू. आद्यशंकराचार्य कृत सौंदर्य लहरी में लिखा है —

चतुर्भि श्रीकंठैः शिवयुवतिभिः पंचभिरपि
प्रभिन्नाभिः शंभोर्नवभिरापि मूलप्रकृतिभिः।
त्रयश्चत्वारिशद्वसुदल कलाश्रत्रिवलय -
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरण कोणाः परिणताः ।। - (११)

तांत्रिक उपासना संबंधी ग्रन्थ 'रुद्रयामलतंत्र' में श्री यंत्र का वर्णन निम्नशः है —

बिन्दु त्रिकोण वसुकोण दशारयुग्मं।
मन्वस्त्रनागदल संयुत षोडशारम् ।।
वृत त्रयं च धरणी सदनत्रयं च
श्री चक्रराज मुदिंत परदवेतायाः।।

अर्थात् इस श्री यंत्र के नौ चक्र इस क्रम से हैं — (१) बिन्दु, (२) त्रिकोण, (३) आठ त्रिकोणों का समूह, (४) दस त्रिकोणों का समूह, (५) पुनः दस त्रिकोणों का समूह, (६) चौदह त्रिकोणों का समूह, (७) आठ दलों वाला कमल, (८) सोलह दलों वाला कमल और (९) भू-पुर।

श्री यंत्र का विषय अत्यन्त गहन है। उर्पयुक्त विवरण तो मात्र परिचय है। इस यंत्र के द्वारा निराकार ईश्वर की साकार-लीला का क्रम इस विशाल ब्रह्मांड में तथा इस पिंडाँड रूपी मनुष्य शरीर में दिखलाया गया है। सृष्टि और जीवात्मा के विकास-क्रम को इस यंत्र के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

मंत्र

मंत्र, वे शब्द या वाक्य हैं, जिनका इष्ट-सिद्धि या किसी देवी-देवता की प्रसन्नता के लिये जप किया जाता है। मंत्रों में गूढ़ अर्थ निहित होता है। जैसे-जैसे जपकर्त्ता मंत्र का मनन करता है, वैसे-वैसे उसके अनेक अर्थ उसे प्रतीत होते हैं। मंत्र आध्यात्मिक रचना होते हैं, परन्तु इनका साहित्यिक महत्त्व भी है। प्रत्येक मंत्र के ऋषि होते हैं, परन्तु वे उनके रचयिता नहीं, परन्तु द्रष्टा होते हैं। मंत्रों द्वारा आराधना करने से देवी-देवता

प्रसन्न होते हैं तथा वे हमारी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। अतः कहा जाता है — 'देवाधीनं जगत्सर्वं मंत्राधीनास्तु देवताः'।

मंत्र की महिमा का बखान करते हुए संत तुलसीदास ने कहा है —

मंत्र परम लघु जासु बस, विधि हरिहर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहँ, बस कर अंकुश खर्व।।

- (रामचरितमानस, बालकांड)

देवी लक्ष्मी के एक अक्षर के मंत्र से लेकर अट्ठाईस अक्षरों तक के मंत्र हैं, जिनका उपयोग उपासक भिन्न-भिन्न प्रकार की इष्ट-सिद्धियों एवं अभीष्ट प्राप्त करने के लिये करते हैं।

बीज मंत्र

एक अक्षर के मंत्र को बीज-मंत्र कहते हैं। उदहराणार्थ श्री गणेश के बीज मंत्र गँ को लेते हैं, जो ग और ँ चन्द्र बिन्दु से बना है। सभी बीज यंत्रों की परि-समाप्ति चन्द्र बिन्दु से होती है। उक्त मंत्र गँ की परिसमाप्ति म् से होती है, जो चन्द्र बिन्दु के रूप में रहता है। इसे ही नाद और बिन्दु कहा जाता है।

देवी लक्ष्मी का एकाक्षर मंत्र है - **श्रीं**

महा-लक्ष्म्यर्थकः शः स्याद् धनार्थ रेफ उच्यते।
ई तुष्ट्यर्थो परो नादो विन्दुर्दुःख हरार्थकः।।
लक्ष्मी देव्या बीजमेतत् तेन देवीं प्रपूजयेत् ।।

अर्थात् श का अर्थ है महालक्ष्मी। र का अर्थ सम्पत्ति कहा जाता है। ई का अर्थ है संतुष्टि। नाद है अपर (अपर ब्रह्म या ईश्वर)। बिन्दु का अर्थ है दुःख को दूर करनेवाला। यह देवी लक्ष्मी का बीज है। उससे देवी की पूजा करनी चाहिये।

देवी लक्ष्मी के कतिपय मंत्र

(१) चतुरक्षर श्री

देवी लक्ष्मी का चार अक्षरों का मंत्र इस प्रकार है —

ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं।

इस मंत्र के लिये कहा गया है — वाग्भवं वनिता विष्णोर्माया मकर-केतनः, चतुर्वीजात्मको मंत्रश्चतुर्वर्ग फल प्रदः। अर्थात् वाग्भव (ऐं), विष्णु वनिता (श्रीं), माया (ह्रीं) तथा मकर-केतन (क्लीं)। इन चार बीजों से देवी का दूसरा मंत्र बनता है। यह मंत्र चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) को प्रदान करने वाला कहा गया है। - (हिन्दी तंत्रसार, पृ.१२२)

(२) दशाक्षर श्री

देवी लक्ष्मी का दस अक्षरों का मंत्र इस प्रकार है —

'नमः कमल-वासिन्यै स्वाहा'

इस मंत्र के लिये कहा गया है —

दीर्घा यादि विसर्गान्तो ब्रह्मा
भानुर्वसुन्धरा, वान्ते सिन्यै प्रिया वह्नेर्मनु : प्रोक्तो दशाक्षरः।

ऋषि दक्ष, छंद विराट, देवता श्री। पंचांग-न्यास क्रमशः (१) ॐ देव्यै नमः, (२) ॐ पद्मिन्यै नमः, (३) ॐ विष्णु-पत्न्यै नमः, (४) ॐ वरदायै नमः, (५) ॐ कमल-रूपायै नमः से। करन्यास में 'कर-तल पृष्ठ' में तथा अंग-न्यास में 'नेत्र-त्रय' में न्यास नहीं होगा। - (मंत्र कोष, पृ. २१२)

(३) द्वादशाक्षर महालक्ष्मी

देवी लक्ष्मी का बारह अक्षरों (द्वदशाक्षर) मंत्र इस प्रकार है —

'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौः जगत प्रसूत्यै नमः'।

इस मंत्र के लिये कहा गया है - वाग्भवं शम्भु-वनिता, रमा, मकरकेतनः, तार्तीयं च जगत्-पार्श्वो वह्नि-बीज समुज्ज्वलः अर्धीशाढ्यो भृगुस्त्यै हृन्मन्त्रोऽय द्वादशाक्षरः। इस मंत्र के ऋषि ब्रह्मा, छंद गायत्री, देवता महालक्ष्मी हैं। षडंग-न्यास क्रमशः '(१) ऐं ज्ञानाय, (२) ह्रीं ऐश्वर्याय, (३) श्रीं शक्तये, (४) क्लीं बलाय, (५) ह्सौः वीर्याय, (६) जगत्-प्रसूत्यै नमस्तेजसे' से करना चाहिए। - (मंत्र कोष, पृ. २१३)

पूजार्थ : कवच, मंत्र और स्तोत्र

जब इन्द्र पुष्कर क्षेत्र में लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये तपस्या कर रहे थे, तब भगवान विष्णु ने स्वयं प्रकट होकर, उन्हें देवी लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिये कवच, स्तोत्र और मंत्र दिये।

(i) कवच

भगवान विष्णु द्वारा प्रदत्त कवच समस्त दु:खों का नाशक, परम ऐश्वर्यप्रद एवं सर्म्पूण शत्रुओं का मर्दन करने वाला माना जाता है। - (ब्र. वै. पु., गणपति खण्ड, अ. २२)। इस कवच को परिशिष्ट में देखें।

(ii) मंत्र

कवच के बाद भगवान विष्णु ने इन्द्र को षोडशाक्षर (सलोह अक्षरों) का मंत्र प्रदान किया, जो समस्त जगत का हित रक्षक है।

यह मंत्र निम्नवत है —

'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै स्वाहा' - (ब्र. वै. पु., (ग. खं.) २२/२०)

(iii) ध्यान

इस मंत्र के साथ उन्होंने सामवेदोक्त निम्नशः ध्यान भी बताया, जो निश्चित ही सिद्धदायक एवं शुभ है।

श्वेत चम्पक वर्णाभां शत चन्द्रसम प्रभाम्।
वह्नि शुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्।।
ईषद्धास्य प्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारिकाम् ।
कस्तूरी बिन्दु मध्यस्थं सिदूरं भूषणं तथा।।
अमूल्य रत्न रचित कुंडलोज्ज्वल शोभितम्।
बिभ्रती कबरीभारंमालती माल्य शोभितम्।।
सहस्रदल पद्मस्थां स्वस्थां च सुमनोहरम्
शांतां च श्रीहरेः कान्तां तां भजेज्जगतां प्रसूम् ।।

- (ब. वै. पु. गणपति, अ. २२/२२-२५)

(**भावार्थ** - श्वेत चम्पा के समान रूप-रंगवाली, चन्द्रमा की भाँति प्रभावाली, अग्निविशुद्ध वस्त्र से सुसज्जित, रत्नों के भूषणों से भूषित, मंद हास्य समेत प्रसन्नतापूर्ण मुखवाली, भक्तों पर कृपा करने वाली, सहस्रदल वाले कमल पर आसीन, स्वस्थ, अति मनोहर, शान्त, श्रीहरि की प्रिया तथा जगत की माता की मैं सेवा कर रहा हूँ।)

उक्त ध्यान द्वारा मनोहारिणी लक्ष्मी का ध्यान करके भक्तिपूर्वक षोडशोपचार से उनकी पूजा करनी चाहिये।

(iv) स्तोत्र

ध्यान के पश्चात् भगवान ने इन्द्र को वह सुखप्रद स्तोत्र बतलाया, जिससे स्तुति करने से देवी की कृपा प्राप्त होती है। यह स्तोत्र भावार्थ सहित परिशिष्ट में देखें। (ब्र. बै. पु. गणपति अ. २२/२९-४०) इस स्तोत्र की फलश्रुति में कहा गया है कि जो पूजा काल में इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसके घर को महालक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती है।

इदं स्तोत्र महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत् ।
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन ॥ - (ब्र. वै. पु. (ग.) अ. २२/४०)

गायत्री मंत्र

'ॐ भूर्भुवः स्वः . . .' गायत्री मंत्र की शैली में देवी लक्ष्मी-विषयक गायत्री मंत्र हैं। गायत्री का अर्थ है, जो गाने वाले की रक्षा करे (गायन्तं त्रायते इति गायत्री)। अतः यह एक रक्षिका मंत्र है। देवी लक्ष्मी-विषयक प्रमुख गायत्री मंत्र, जो श्रीसूक्त में उल्लिखित है, निम्नांकित मंत्र है —

'ॐ महालक्ष्मीं च विद्महे । विष्णुपत्नीं च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्।'

उक्त गायत्री मंत्र के अतिरिक्त देवी लक्ष्मी संबंधी गायत्री मंत्र निम्नशः हैं —

(क) ॐ भूः लक्ष्मीः भुवः लक्ष्मीः सुवः कालकर्णी तन्नो महालक्ष्मीः प्रचोदयात्।
— (श्री महानारायणोपनिषद, ४/९)

(ख) ॐ महालक्ष्मीश्च विद्महे। सर्वसिद्धिश्च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।
— (देव्युपनिषद, मंत्र सं. ७)

लक्ष्मी सहस्रनाम

'पद्मपुराण' में देवी लक्ष्मी के सहस्र नामों का 'लक्ष्मी सहस्रनाम' वर्णित है। इन विविध नामों के अर्थ एवं संदर्भ के माध्यम से हमें देवी के सगुण स्वरूप का सौष्ठव, देवी के देवत्व के विशिष्ट गुणों, अन्य देवी-देवताओं से देवी का संबंध एवं देवी की प्रिय वस्तुओं आदि का बोध होता है। उदाहरणार्थ कतिपय नामों को देखें —

(१) आदित्यवर्णा (जिनका वर्ण सूर्य के समान तेजमय हो), (२) पद्माक्षी (पद्म पत्र के समान मनोहर नेत्रों वाली), (३) धनदा (धन देने वाली), (४) महाधन (महान ऐश्वर्यशाली), (५) हरिवल्लभा (भगवान विष्णु की वल्लभा) एवं (६) सरोजहस्ता (हाथों में कमल-पुष्प धारण करने वाली)।

लक्ष्मी-सहस्रनाम एक प्रकार से देवी लक्ष्मी का चरित्रात्मक लघुकोश है। देवी लक्ष्मी की उपासना में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है और ऐसी मान्यता है कि इसका विधिपूर्वक पाठ साधक को अभिष्ट फल प्रदान करता है।

पूजा के अन्य प्रकार

मूर्ति पूजा, यंत्र पूजा और मंत्र-जाप के अतिरिक्त भी लोकाचार के रूप में निम्नश: पूजा की प्रथा भी जन सामान्य में प्रचलित है :

(१) उपला (कंडा / छाणा) (जलाने के लिये सुखाया हुआ गोबर) की पूजा

श्री सूक्त में कहा गया है — 'गंधद्वारां दुराधर्षां नित्य पुष्टां करीषिणीम्।' अर्थात् श्री देवी (लक्ष्मी देवी) गंध वाली हैं, जिसे कोई पराभव नहीं कर सकता, जो सदा अन्नादि से समृद्ध हैं। इस प्रकार भूमि की उर्वरता की वृद्धि करने वाली देवी कहा गया है। महाभारत में एक कथा है कि एक बार जब लक्ष्मीजी गायों के समूह में रहने के लिये गईं तब गायों ने देवी को उनके मूत्र एवं गोबर में रहने की अनुमति दी। यह कथा प्रतीकात्मक है, जो इस बात का द्योतक है कि गायों के मूत्र एवं गोबर से भूमि की उत्पादन शक्ति बढ़ती है तथा धान्य विपुल मात्रा में होता है तथा समृद्धि-सम्पन्नता इसके कारण बढ़ती है। देवी लक्ष्मी की इस शक्ति का गाँवों में दर्शन होता है, जहाँ ग्रामीण महिलाएँ देवी की पूजा उपलों की पूजा करके करती हैं।

(२) देहली (प्रवेश-द्वार) पूजा

कुछ परिवारों में प्रतिदिन घर के प्रवेश द्वार पर लक्ष्मीजी के चरण रेखांकित कर उसकी पूजा की जाती है। देहली को स्वच्छकर, उस पर गिली रोली (कुंकुम) से स्वस्तिक एवं लक्ष्मीजी के चरण अंकित कर अक्षत और फूल चढ़ाकर, उसे प्रणाम करते हैं।

आरती

किसी भी देवी-देवता की पूजा की समाप्ति आरती से होती है। आरती पूजा कार्य का एक विशिष्ट भाग है। 'आरती' शब्द संस्कृत के 'आरात्रिक' का हिन्दीकरण है, जिसका अर्थ है — 'अरिष्ट'। इस शब्द को दो अर्थों में प्रयोग किया जाता है। एक है उपास्य के सम्मुख सभी उपचारों के बाद दीपक घुमाना या आरती उतारना या अरिष्ट निवारण करना। इसे नीरांजन भी कहा जाता है। उपास्य के सामने दीपक की ज्योति घुमाते समय जो स्तुति गाई जाती है, उसे भी 'आरती' कहते हैं। इस दृष्टि से आरती एक पूजा गीता है तथा भक्ति रस काव्य की यह एक विशिष्ट विधा है। आरती में करीब पाँच-छह पद ध्रुवपद के साथ होते हैं। ध्रुपद वह पदांश है, जिससे आरती का प्रारम्भ होता है तथा बाद में प्रत्येक पद के गायन के पश्चात् दोहराया जाता है। आरती में

इष्टदेव के सगुण-स्वरूप का वर्णन एवं उसका यशोगान जय-जयकार के साथ किया जाता है। आरती में प्रायः नाद-युक्त भक्ति शब्दों का पद्य में संयोजन किया जाता है।

देवी लक्ष्मी-विषयक एक संस्कृत और एक हिन्दी आरती इस प्रकार है —

आरती (संस्कृत में)

इस आरती में देवी की प्रतिमा संबंधी विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा गया है कि देवी का वाहन सिंह है तथा मस्तक पर नाग-फण है तथा हाथों में पान-पात्र और खेटक है।

जय देवि जय देवि जय मातः कमले द्रुतजांबूनदविमले सुरनुतपदकमले ।।
अलिकुलकोमलवाले धृतमौक्तिक माले स्तनयुगनिर्जितताले क्षीरांबुधिवाले
काश्मीरांकितभाले नाशितभवजाले हेलामर्दितकोले शरणागतपाले ।।१।।

कमलदलायतनयन शशिनिभशुभवदने सिंहविराजितगमने हीरावलीरुदने
मुनिजनविरचितनमने कृतरसिसकदने कोकिलमंजुलगदने विष्णूरःसदने ।।२।।

नागाद्यंकितमस्तकभुवनावनसक्ते प्राशनभाजनखेटादिकयुतकरयुक्ते
कृतकरवीरनिवासे रिपुमर्दनशक्ते शुकनासासमनासे तारितनिजभक्ते ।।३।।

अधरविनिर्जितबिंबे विश्वस्तुतरूपे पृथुतरचारुनितंबे कृतदानवकोपे
भ्रू जितमन्मथचापे हतनिजजनतापे हृजिज्योतिर्वित्त्वां प्रणमति हतपापे ।।४।।

भावार्थ :

हे लक्ष्मी माता! हे द्रवित शुद्ध स्वर्ण के समान चमकने वाली! देवों के झुकते मस्तकों से युक्त चरणों वाली! भँवरों के समूह से उड़ते कोमल केशों वाली! मोतियों की मालाएँ धारण करने वाली! दोनों स्तनों से निकले दूध से क्षीरसागर को पूर्णतया हराने वाली! क्षीरसागर की पुत्री! केसर से चर्चित मस्तक वाली! संसार-जाल को नष्ट करने वाली! हुँकार से ही काल को कुचलने वाली! शरणागत की रक्षा करने वाली माता! आपकी जय हो, जय हो ।।१।।

कमल-पत्रों के समान विशाल नेत्रों वाली! चन्द्रमा के सदृश सुंदर मुखवाली! सिंह-यान पर शोभित हो कर चलने वाली! हीरों के समान चमकती दंतावली वाली! मुनियों द्वारा किये जा रहे नमस्कारों वाली! राक्षसों का संहार करने वाली! कोयल के समान मीठी वाणी वाली! तथा भगवान विष्णु के हृदय में निवास करने वाली माता! लक्ष्मी आपकी जय हो ।।२।।

सर्पादि से युक्त मस्तक वाले शिव में आसक्ति रखने वाली! भोजन-पात्र (खप्पर) व खेटक (ढ़ाल) आदि से युक्त हाथों वाली! करवीर (कोल्हापुर) में वास करने वाली! शत्रुओं को कुचलने की शक्ति वाली! शुक (तोता) नासिका के समान नासिका वाली! अपने भक्तों को संसार सागर से पार उतारने वाली हे लक्ष्मी माता! आपकी जय हो ।।३।।

ऐसे अधर वाली, जो लाल बिम्ब-फल को भी मात करे! संसार की स्तुति-रूपा! अधिक मांसल सुंदर नितंबों (जांघों) वाली! अपनी भौंओं से कामदेव के धनुष को जीतने वाली! पापों को हरने वाली हे लक्ष्मी माता! आपकी जय हो ।।४।।

आरती (हिन्दी में)

जै लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।
तुमको निशदिन ध्यावत, हर विष्णु विधाता।।

ब्रह्माणी, रुद्राणी, कमला, तू ही है जग माता।
सूर्य चन्द्रमा ध्यावत, नारद ऋषि गाता।।

दुर्गा रूप निरन्तर, सुख सम्पत्ति दाता।
जो कोई तुमको ध्यावत, ऋद्धि-सिद्धि धन पाता।।

तू ही है पाताल बसन्ती, तू ही शुभ दाता।
कर्म प्रभाव प्रकाशक, जगनिधि के त्राता।।

जिस घर में तुम रहती, सब सद्गुण आता।
कर न सके कोई, कर ले, मन नहीं घबराता।।

तुम बिन यज्ञ न होवे, वस्त्र न कोई पाता।
खान पान का वैभव, सब तुमसे ही आता।।

शुभ गुण मंदिर सुन्दर, क्षीरोदधि जाता।
रतन चतुर्दश तुम ही, कोई नहीं पाता।

आरती लक्ष्मी जी की, कोई नर गाता।
उर आनन्द उमंग अति, पाप उतर जाता।।

।। इति भावार्थ सहित आरती ।।

●

पद्मिनी विद्या और निधियों का स्वरूप एवं द्रव्य-संस्थिति

मार्कण्डेय पुराण में संदर्भित अनेक अद्‌भुत विद्याओं में से एक विद्या है 'पद्मिनी विद्या'। इस विद्या का ज्ञाता निधियों को वश में कर लेता है, जिससे उसे कभी धन की कमी नहीं होती है (या तु सा पद्मिनी नाम विद्या भोगोपपादिका - ६५/२); लेकिन इस विद्या को प्राप्त करने की विधि आदि का वर्णन इस पुराण में कहीं नहीं किया गया है।

पद्मिनी नामक इस विद्या की अधिष्ठात्री देवता लक्ष्मी हैं। निधि का शाब्दिक अर्थ है कोषागार / खजाना। देवी लक्ष्मी की आश्रित निधियाँ मार्कण्डेय पुराण के अनुसार आठ हैं। ये आठ निधियाँ हैं—(१) पद्म, (२) महापद्म, (३) मकर, (४) कच्छप, (५) मुकुन्द, (६) नंदक, (७) नील और (८) शंख।

पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याश्च देवता।
तदाधाराश्च निधयस्तन्मे निगदतः शृणु।।
यत्र पद्म महापद्मौ तथा मकर कच्छपौ।
मुकुंदो नंदकश्चैव नीलः शंखोऽष्टमो निधिः।। - (६५/४-५)

वामन पुराण में भी निधियों का उल्लेख है, लेकिन उसमें चार प्रकार की निधियाँ एवं उन्हें धारण करने वाले चार प्रकार के मनुष्यों का वर्णन है। ये चार निधियाँ हैं (१) महापद्म निधि, (२) पद्म निधि, (३) महानील निधि एवं (४) शंख निधि। निधि विद्या के वर्णन में भी थोड़ा अंतर है तथा इन चार निधियों की देवियाँ भी चार हैं।

उक्त निधियों का स्वरूप एवं द्रव्य-संस्थिति इस प्रकार हैं—

(१) पद्म निधि

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार यह निधि पहले सदा मनुष्य के और फिर क्रमानुसार उसके पुत्र तथा पौत्र और प्रपौत्र के अधीन में रहती है। इस निधि के द्वारा अधिष्ठित होने पर पुरुष चतुरता सम्पन्न, सत्त्व गुण सम्पन्न हो जाता है। यह निधि सात्त्विक मानी गई है। इस निधि से युक्त पुरुष बहुत से स्वर्ण, चाँदी, ताम्र आदि सब प्रकार के धातुओं का परिग्रह और क्रय-विक्रय करता है - (६५/८-११)।

परन्तु वामन पुराण के अनुसार पद्म निधि का संबंध आयुध एवं शस्त्रों के साथ है तथा इस निधि के आश्रित-जन यज्ञ करने वाले सुंदर, अभिमानी, विशेष दानी और जनता के सुख में प्रसन्न होने वाले होते हैं - (कल्याण, वामन पुराणांक, ७५/३२, ३७)।

(२) महापद्म निधि

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार यह निधि सत्त्वाधार के नाम से प्रसिद्ध है। इस निधि से अधिष्ठित मनुष्य पद्मराग आदि रत्नों का संचय और मोती और मूंगे का स्वामी होकर, उनका क्रय-विक्रय करता है। योगियों को उनका स्थान और साधारण व्यक्तियों को योगाभ्यास में उत्साह प्रदान करता है तथा स्वयं भी योगशील होता है। इस निधि से अधिष्ठित पुरुष के बाद के सब पुरुषों में अर्द्ध-अर्द्ध परिमाण में स्थित होकर सात पुरुषों तक नहीं त्यागती - (६५/१२-१५)।

लेकिन वामन पुराण के अनुसार इस निधि के अन्तर्गत इतिहास, पुराण, वेद, वेदांग तथा चौसठ प्रकार की कलाओं का समावेश किया गया है। इस निधि का आश्रय करने वाले मनुष्य सात्त्विक गुणों से युक्त होते हैं। वे सत्य और शौच से युक्त होते हैं तथा यज्ञ और दान के उत्सवों में सदा संलग्न रहते हैं — ('कल्याण', वामन पुराणांक, ७५/ ३१, ३६)।

(३) मकर निधि

मार्कण्डेय पुराणानुसार मकर निधि से अधिष्ठित पुरुष प्रायः तमोगुण प्रधान और सुशील होता है। ऐसा पुरुष धनुर्बाण, खंग, ढाल और आयुध-ग्राही होता है एवं अस्त्र-शस्त्रों के क्रय-विक्रय के बिना प्रसन्न नहीं होता है। यह निधि एक पीढ़ी तक प्राप्त रहती है - (६५/१६-१८)।

(४) कच्छप निधि

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार यह निधि तामस कही गई है। जिस पुरुष पर इसकी दृष्टि पड़ती है, वह तमोगुण प्रधान हो जाता है। ऐसा पुरुष सभी भोग्य पदार्थों को भोगता है तथा कछुवा जिस प्रकार अपना अंग छिपाता है, वैसे ही अपना अभिप्राय गुप्त रख अपना कार्य करता है। यह निधि एक पीढ़ी तक भू-तल में स्थित रहती है (६५/१९-२३)।

(५) मुकुन्द निधि

मार्कण्डेय पुराणानुसार यह निधि रजोगुणमयी है। इस निधि से अधिष्ठित मनुष्य वीणा, वेणु, मृदंग आदि वाद्यों का परिग्रह करता है एवं गाने-नाचने वालों को धन देता है और उनके साथ प्रीति होती है; लेकिन यह निधि उसके वंश वालों की अनुगामी नहीं होती है - (६५/२४-२७)।

(६) नंदक निधि

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार यह निधि रज और तम इन दोनों गुणों से युक्त है। जिस मनुष्य पर इसकी दृष्टि पड़ती है, वह स्तम्भित अर्थात् जड़ता को प्राप्त होता है। ऐसा नंदाधिष्ठित पुरुष समस्त धातु, रत्न और धान्यादि पवित्र द्रव्यों का परिग्रह और क्रय-विक्रय करता है। ऐसा पुरुष स्वजन-वर्ग और अभ्यागतों का आश्रय-स्थल होता है। लेकिन ऐसा पुरुष परलोक के प्रति यत्नवान नहीं होता है। यह निधि सात पीढ़ी तक अनुगामी भी होती है - (६५/२८-३५)।

(७) नील निधि

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार इस निधि से अधिष्ठित पुरुष सत्त्व और रजोगुण युक्त होता है। इस निधि से अधिष्ठित व्यक्ति वस्त्र, कपास, धान्य आदि पदार्थों को ग्रहण करता है और अपने भोगने योग्य वस्तुओं के अतिरिक्त इनका क्रय-विक्रय करता है। ऐसा व्यक्ति तालाब, उपवन, नदी आदि बनवाता है एवं वृक्ष लगवाता है। यह निधि तीन पीढ़ी तक अनुगामी होती है - (६५/३६-४०)।

लेकिन वामन पुराण के अनुसार इसे 'महानील निधि' कहा गया है, जिसके अंतर्गत गाय, महिषी, गर्दभ और ऊँट, सुवर्ण, आकाश और पृथ्वी, औषधियाँ तथा पशुओं का समावेश किया गया है। इस निधि के आश्रयभूत मनुष्य सत्य और झूठ दोनों के प्रति

आकृष्ट होते हैं। ये दान देने और वस्तुओं के संग्रह करने में निरत होते हैं - ('कल्याण', वा. पु., ७५/३३, ३८)।

(८) शंख निधि

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार यह निधि रज और तमोगुणमय है। यह निधि एक पुरुष की अनुगामी है। कभी उसके परवर्ती पुरुष में अधिष्ठित नहीं होती है। ऐसा पुरुष स्वयं उपार्जित उत्तम अन्न का भोजन और उत्तम वस्त्र पहनता है; परन्तु अपने स्वजनों के भरण-पोषण के लिये कुछ नहीं देता है - (६५/४१-४५)।

लेकिन वामन पुराण के अनुसार इस निधि के अंतर्गत सामान्य रूप से सब प्रकार के धन-सम्पत्ति का समावेश किया जाता है और इस निधि के आश्रय लेने वाले मनुष्य नास्तिक, शोक रहित, कृपण, भोग-वर्जित, चोरी तथा अनृत कथा में सदा निरत रहते हैं - ('कल्याण', वा. पु., ७५/३४, ३९)।

गरुड पुराण के अध्याय ५३ में अष्ट निधियों के स्वरूप का वर्णन भी मार्कण्डेय पुराण में उल्लिखित वर्णन जैसा ही है, परन्तु इस पुराण में एक नवीं निधि — 'मिश्र निधि' — बतलायी गयी है। मिश्र अर्थात् मिली-जुली निधि के चिह्न से युक्त होने पर मनुष्य के स्वभाव में मिश्रित फल दिखलायी देते हैं।

पद्मिनी नामक विद्या की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं; अतः उक्त निधियाँ उनके आधिपत्य में हैं, अतः देवी लक्ष्मी को निधिनाथा, निधिप्रदा, धन-नाथा, धन-देवी आदि विशेषणों से संबोधित किया जाता है - (सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद, १/३८)।

धनाध्यक्ष कुबेर को 'निधीश्वर' माना जाता है तथा निधीश्वर कुबेर को देवी लक्ष्मी का कोषाध्यक्ष माना जाता है, जो देवी लक्ष्मी एवं कुबेर के घनिष्ठ आत्मीय संबंध का द्योतक है।

उक्त निधियाँ जल-सृष्टि की परिचायक हैं और इन्हें श्री कुमार स्वामी ने 'वाटर सिम्बल्स' (जल-प्रतीक) कहा है यक्ष, भाग २, पृ. ४९)। उन्होंने उक्त आठ निधियों के साथ एक 'खर्व' नामक निधि को जोड़कर नौ निधियों का उल्लेख किया है।

•

देवी लक्ष्मी को समर्पित व्रत एवं उत्सव

व्रत शब्द का अर्थ

'व्रत' शब्द 'वृ' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है — वरण करना, संकल्प करना, रक्षण करना आदि है। व्रत एक प्रकार की प्रतिज्ञा है, जिसमें व्रती कोई धार्मिक अनुष्ठान करने का संकल्प करता है।

समृद्धि-सम्पन्नता की प्राप्ति के लिये देवी लक्ष्मी को समर्पित निम्नांकित व्रतों के पालन करने का भी निर्देश कई ग्रन्थों में दिया गया है —

(१) महालक्ष्मी व्रत (भाद्रपद शुक्ल अष्टमी)
(२) लक्ष्मीप्रद व्रत (कार्तिक कृष्ण सप्तमी से दशमी तक)
(३) लक्ष्मी व्रत (प्रत्येक शुक्ल पंचमी)
(४) श्री प्राप्ति व्रत (वैसाख पूर्णिमा के बाद पहली तिथि से एक मास तक)
(५) अन्य व्रत (गुरूवार व्रत एवं शुक्रवार व्रत)

महालक्ष्मी व्रत

यह व्रत भाद्रपद शुक्ल अष्टमी से आरम्भ होकर आश्विन कृष्ण अष्टमी तक अर्थात् पूरे सोलह दिनों तक चलता है। यह व्रत १६ वर्षों तक किया जाना चाहिये। इस व्रत में सोलह की संख्या का महत्त्व माना गया है। इसका अनुष्ठान करने वाले अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं और ऐश्वर्य तथा पुत्र-पौत्रादि ही नहीं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष — चारों पदार्थों का लाभ उठाते हैं। व्रतों में यह व्रत महालक्ष्मी का सर्वश्रेष्ठ

व्रत है। इस व्रत की फलश्रुति में कहा गया है कि व्रती को लक्ष्मी तीन जीवन तक नहीं त्यागती है। (व्रतराज, पृ. ४०१)

विधि

भाद्रपद शुक्ल अष्टमी के दिन प्रातःकाल उठकर सोलह बार हाथ और मुँह को धोकर सोलह धागों का एक सूत लेकर महालक्ष्मी को नमस्कार करते हुए, उसमें सोलह गाँठें लगावें। फिर इसको धूप, दीप, पुष्पादि से पूजित करके अपने दाहिने हाथ में धारण करें तथा लक्ष्मीजी की पुण्य-कथा सुने या सुनायें। इसी प्रकार सोलहों दिन करते हुए आश्विन कृष्ण अष्टमी को स्नान करके घर के पूजा-कक्ष में महालक्ष्मी की मूर्ति या चित्र रखकर, उसका विधिवत मंत्रों से आवाहन तथा पूजन करें और उस धारण किये हुए धागे को लक्ष्मीजी के समीप उतारकर रख देवें। बाद में लक्ष्मीजी की पुण्य कथा सुनकर, व्रत समाप्त करें। आटे की पिंडी के सोलह दीपक बनाकर दक्षिणा सहित ब्राह्मणों का दान दें और उन्हें भोजन करायें। अंतिम दिन रात्रि को जागरण करें। व्रत की अवधि में एकाहार या फलाहार करें तथा पूर्ण सत्य एवं ब्रह्मचर्य का जीवन बितायें। इस अनुष्ठान को प्रति वर्ष नियमपूर्वक करते हुए, सोलह वर्षों के बाद इसका उद्यापन करें। (हिन्दुओं के व्रत, पर्व और त्यौहार, रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री, पृ.१६३)

(२) लक्ष्मीप्रद व्रत

हेमाद्रि व्रत (२/७६९-७१) के अनुसार यह कृच्छ्र व्रतों में है।

इस व्रत के व्रती को कार्तिक कृष्ण सप्तमी से दशमी तक चार दिन क्रमशः दूध, बिल्व पत्र, कमल-पुष्प और कमल-नाल का आहार करना चाहिये। एकादशी को उपवास करना चाहिये। व्रत के दिनों में केशव की पूजा करने का भी निर्देश दिया गया है। - (हिन्दू धर्म कोश, पृ. ५६५)

(३) लक्ष्मीव्रत

इस व्रत के संबंध में निम्नशः दो प्रकार के विधान हैं —

(१) प्रत्येक शुक्ल पंचमी को एक वर्ष तक उपवास एवं लक्ष्मी पूजन करना तथा अन्त में स्वर्ण-कमल और एक गाय का दान करना चाहिये। इस व्रत की फलश्रुति यह बतलायी गई है कि इससे धन-लाभ होता है तथा विष्णु-लोक की प्राप्ति होती है। - (हेमाद्रि व्रत, १/५६८)

(२) व्रती को चैत्र शुक्ल तृतीया को घी-भात खाने, चतुर्थी को कमल पुष्पवाले सरोवर में स्नान कर कमल में ही श्री लक्ष्मी की पूजा करने, पंचमी को श्री के स्तोत्र का वाचन करते हुए, श्री लक्ष्मी को कमल अर्पण करना और स्वर्ण दान देना चाहिये। यह क्रिया लगातार एक वर्ष तक करनी चाहिये। - (हि. ध. कोश, पृ. ५६५)

(४) श्री-प्राप्ति व्रत

वैसाख पूर्णिमा के उपरान्त पहली तिथि से व्रत करना चाहिये। इस व्रत में एक मास तक पुष्प और फलों से नारायण और लक्ष्मी का पूजन, धान और बिल्व फल से होम, दूध और दूध निर्मित वस्तुओं से ब्राह्मण भोज, ज्येष्ठ मास में तीन दिनों तक उपवास और व्रत की समाप्ति पर स्वर्ण एवं वस्त्र दान करना चाहिये। - (हेमाद्रि-व्रत, २/७५१)

अन्य व्रत

उपरोक्त अमुक मास की अमुक तिथियों के व्रतों के अतिरिक्त देवी लक्ष्मी की कृपा प्राप्त करने के लिये गुरूवार और शुक्रवार देवी लक्ष्मी के प्रिय वार माने जाते हैं।

गुरूवार व्रत

पद्मपुराण (३/११/३४) के अनुसार यह व्रत मार्गशीर्ष मास के गुरूवारों को करना चाहिये। इस पुराण में वर्णित इस व्रत की विधि इस प्रकार है —

मार्गशीर्ष मास के प्रथम गुरूवार के दिन भगवान विष्णु के साथ देवी लक्ष्मी स्थापित कर पूजा करनी चाहिये तथा मिष्ठान्न और पायस का देवी को भोग लगाना चाहिये तथा उनकी कृपा के लिये प्रार्थना करनी चाहिये। ब्राह्मणों एवं परिवार के लोगों में प्रसाद बांटना चाहिये। महीने के दूसरे गुरूवार को गेहूँ के आटे की मीठी रोटी बनाकर, देवी को भोग लगाना चाहिये। तीसरे गुरूवार को दही में मिलाये भात को अर्पण करना चाहिये। चौथे गुरूवार को स्यामक एवं शालि-धान को अर्पित करना चाहिए। ब्राह्मणों को वस्त्र आदि दान में देने चाहिये।

मार्गशीर्ष मास का समय धान की फसल की कटाई होकर, उसके भंडारण का समय है, अतः धान्य की देवी लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिये इस मास के गुरूवारों को यह व्रत किया जाता है। आजकल इस व्रत का प्रचलन उड़ीसा में सर्वाधिक है। यहाँ की स्थानीय प्रथा के अनुसार नये धान की निर्धारित मात्रा को आसन पर रखकर, उसे सजाया जाता है और देवी लक्ष्मी के प्रतीक के रूप में उसकी पूजा की जाती है।

शुक्रवार व्रत

अत्रि-संहिता (४७/१६) के अनुसार देवी लक्ष्मी की पूजा शुक्रवार को करनी चाहिये। देवी लक्ष्मी की कृपा प्राप्त करने के लिये शुक्रवार को व्रत करने की भी प्रथा है। शुक्रवार को जो व्रत किया जाता है उसे वैभव लक्ष्मी व्रत कहते हैं। ये व्रत सुहागिन महिलाएँ एवं कुमारी कन्याओं द्वारा किया जाता है। वैसे पुरुष भी इसे कर सकते हैं। सात, चौदह, इक्कीस ऐसी किसी निश्चित संख्या में शुक्रवार व्रत करने के संकल्प के साथ इस व्रत को किया जाता है। इस व्रत में पूजा, उपवास, व्रत-कथा का पाठ आदि करने की प्रथा है। संकल्प के अनुरूप शुक्रवारों के कर लेने के पश्चात् अंतिम शुक्रवार को उद्यापन किया जाता है।

देवी लक्ष्मी को समर्पित उपरोक्त व्रत वस्तुतः देवी की उपासना के ही अंग हैं।

कोजागर व्रत / उत्सव

देवी लक्ष्मी की कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य जितने भी व्रत या उत्सव आदि मनाये जाते हैं, उनमें कोजागर पूर्णिमा यानि कौमुदी महोत्सव सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह व्रत / उत्सव आश्विन मास की पूर्णिमा यानि शरत्पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। शरत्पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा की शुभ्र-ज्योत्सना से धरती समुज्ज्वल रूप धारण कर निखर उठती है। इस दिन चन्द्रमा अपनी किरणों के माध्यम से पृथ्वी पर अमृत की वर्षा करता है।

कामशास्त्र में वात्सायन ने इस पूर्णिमा को 'कौमुदी जागर' कहा है। - (१/४/२७) कोजागर संभवतः 'कौमुदी-जागर' का ही संक्षिप्त रूप है। शरद ऋतु के आश्विन मास में भूमि पके हुए धान की फसल से ढकी रहती है। ऋतु संहार में महाकवि कालिदास ने इसी तथ्य को व्यक्त करते हुए कहा है - आपक्व शालि रूचिरा तनु गात्र यष्टि। - (३/१)

कौमुदी महोत्सव की तिथि के बारे में पौराणिक साहित्य में मतैक्य नहीं है। भविष्योत्तर पुराण (१४०/४/६०) तथा पद्मपुराण (६/१२४/६१) के अनुसार कौमुदी-महोत्सव को कार्तिक अमावस्या (दीपावली) के दिन मनाना चाहिये। लेकिन ब्रह्मपुराण एवं लिंग पुराण को उद्धृत करते हुए, शब्द कल्पद्रुम (भाग-२, पृ. २००-०१) ने आश्विन पूर्णिमा को ही कौमुदी पूर्णिमा माना है एवं शब्द कल्पद्रुम के इस मत से अधिकांश विद्वान सहमत हैं।

प्राचीन काल में यह कौमुदी महोत्सव का उत्सव हर्ष और उल्लास से मनाया जाता था, जिसकी चर्चा अनेक प्राचीन धार्मिक एवं काव्य-ग्रन्थों में मिलती है।

कोजागर उत्सव और व्रत का उद्देश्य धन-धान्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी एवं देवराज इन्द्र को प्रसन्न करना है। कोजागर पूर्णिमा को दिन में व्रत किया जाता है और रात्रि में जागरण कर आनन्द मनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस दिन देवी लक्ष्मी पृथ्वी पर उतरती है और पूछती है, 'को जागर्ति' अर्थात् कौन जाग रहा है। जिसे वे इस व्रत के अनुष्ठान में निरत होकर, जागते देखती है, उसे वर्ष भर के लिये धन-धान्यादि से संतुष्ट कर जाती है।

व्रत की विधि

प्रातःकाल शौचादि से निवृत होकर एवं स्नानकर इस व्रत का निश्चय करें तथा दिन-भर सदाचार के साथ व्रत रखें। संध्या के समय पुनः स्नानकर दुःख-दैन्य के विनाश एवं धन-धान्य की प्राप्ति के लिये देवी लक्ष्मी और देवराज इन्द्र की पूजा का संकल्प ग्रहण करें। तत्पश्चात् षोडशोपचार विधि से रात्रि में देवी लक्ष्मी तथा देवराज इन्द्र की प्रतिमा या चित्र का पूजन करें। रात्रि में जागरण रखें तथा जागरण काल में भजन करें या सद्-ग्रन्थों का वाचन करें।

द्युत क्रीड़ा का विधान

रात्रि में जागरण कर आनन्द मनाते समय द्युत-क्रीड़ा भी (पासों से चौपड़ या जुआ खेलना) इस उत्सव का एक अंग माना गया है। वैसे वेद में जुआ खेलने का निषेध है। (अक्षैः मा दीव्य - ऋग्वेद, १०/३४/३) तथा महाभारत में भी जूए को अनर्थ का मूल बतलाया है। (द्युतं अनर्थ मूलम् - २/५२/११) लेकिन कालान्तर में जूए को उत्सवों में मनोरंजन का एक लोकप्रिय साधन माने जाने लगा एवं यह माना जाने लगा कि जूआ खेलने से देवी लक्ष्मी प्रसन्न होती है।

'व्रतराज' में एक आख्यायिका है कि बलित नामक एक निर्धन ब्राह्मण 'कोजागर पूर्णिमा' को जूआ खेलने से धनवान बन गया। लेकिन इस व्यसन से दूर रहना ही श्रेयस्कर है।

दीपावली पर्व

दीपावली का पर्व भारतीयों का एक ऐसा राष्ट्रीय पर्व है, जो सभी मैत्री-भाव एवं आनंद-उल्लास के साथ मनाते है और यह पर्व मुख्यतया धन-धान्य की अधिष्ठात्री

देवी लक्ष्मी को समर्पित है। देवी लक्ष्मी के स्वागतार्थ दीपमालाएँ सजाकर यह पर्व ज्योतिपर्व के रूप में मनाया जाता है। इस अवसर पर दीपमालाएँ सजाने के अतिरिक्त घर-आंगन, व्यावसायिक स्थानों आदि को स्वच्छ एवं उनका नवीनीकरण कर सजाया जाता है। स्वादिष्ट पकवान बनाये, बांटे और खाये जाते हैं। नये एवं सुंदर परिधान धारण किये जाते हैं। पटाखे फोड़े एवं आतिशबाजी की जाती है। परस्पर शुभेच्छाओं एवं अभिनंदनों का आदान-प्रदान किया जाता है।

दीपोत्सवः दिनत्रयम् (तीन दिनों की दीपावली का उत्सव)

दीपावली पर्व पद्मपुराण के अनुसार पांच दिनों तक मनाना चाहिये अर्थात कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी से कार्तिक शुक्ल द्वितीया तक तथा दिये सजाने का कार्य त्रयोदशी से प्रारम्भ करना चाहिये। परन्तु निर्णय-सिन्धु (भाग-२, पृ. ७०९) इसे तीन दिन (चतुर्दशी, अमावस्य एवं प्रतिपदा) तक मनाने का ही निर्देश देता है। (दीपोत्सवः दिनत्रयम्) स्कंद-पुराण (२/४/५/४५) भी इस पर्व को तीन दिन का ही मानता है। व्रतराज (पृ. ५६३) का भी यही मत है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि यह पर्व तीन दिन का ही है, क्योंकि दैत्यराज बलि ने भगवाऩ वामन (विष्णु) को त्रि-पाद दान दिया था, जिससे प्रसन्न हो उन्होंने दैत्यराज के अनुरोध करने से उन्हें पृथ्वी पर तीन दिन तक उनके राज्य का वर दिया। ये तीन दिन कार्तिक कृष्ण, चतुर्दशी, अमावस्या एवं शुक्ल प्रतिपदा हैं। इन तीन दिनों की अवधि में पृथ्वी पर दैत्यराज बलि का राज्य रहता है एवं दीपावली का पर्व तीन दिन हर्ष उल्लास के साथ मनाया जाता है। धनतेरस एवं भैयादूज के उत्सव इन तीन दिनों के साथ संभवतः कालान्तर में जोड़े गये और दीपावली पर्व को पांच उत्सवों का समुच्चय बना दिया गया। इन पांच दिनों का प्रारम्भ कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी से होता है एवं अन्त कार्तिक शुक्ल द्वितीया को और क्रमशः (१) धनतेरस, (२) नरक चतुर्दशी, (३) लक्ष्मी पूजन (अमावस्या) (४) बलिप्रतिपदा (अन्नकूट/गोवर्धन) एवं (५) भैयादूज के उत्सव मनाये जाते हैं। लेकिन देवी लक्ष्मी से संबंधित तीन दिन (चतुर्दशी, अमावस्या एवं प्रतिपदा) ही हैं।

दीपावली के तीन दिनों के इस महोत्सव का दूसरा नाम है - कौमुदी महोत्सव। कौमुदी शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए, कहा गया है कि क यानि पृथ्वी मुद् यानि प्रसन्न होना अर्थात वह समय जब पृथ्वी प्रसन्न हो। इस शब्द का एक अर्थ यह भी किया जाता है कि राजा बलि को कुमुदों के दान देने का उत्सव।

कार्ति कृष्ण चतुर्दशी (नरक-चतुर्दशी)

तीन दिवसीय दीपावली महोत्सव का प्रथम दिवस चतुर्दशी को पड़ता है जिसे नरक चतुर्दशी या भूत चतुर्दशी या प्रेत चतुर्दशी कहा जाता है। भगवान विष्णु के वराह अवतार के समय वराह और पृथ्वी के संसर्ग से नरक नामक असुर उत्पन्न हुआ था। इसने स्वर्ग के देवताओं को त्रस्त कर दिया जिसका वध अन्ततः कृष्णावतार के समय श्रीकृष्ण ने किया था। नरकासुर पर विजय प्राप्ति के आनंद को व्यक्त करने के लिये नरक चतुर्दशी मनाई जाती है।

नरक चतुर्दशी के दिन नरक की यातना से बचने के लिये प्रातः तेल लगाकर स्नान करना चाहिये, क्योंकि ऐसी मान्यता है कि इस दिन लक्ष्मीजी तेल में तथा गंगाजी पानी में रहती है। (तैले लक्ष्मी र्जले गंगा दीपवल्यां चतुर्दश्याम्। - पद्मपुराण, ६/१२४/५) तेल लगाकर स्नान करने के बाद मृत्यु के देवता यमराज को अंजुली में जल और तिल रखकर तर्पण करना चाहिए। मंदिरों आदि को दीपकों से प्रकाशित करना चाहिये। खेतों में जहाँ फसल होती है, वहाँ किसान लोग जुलूस बनाकर जाते हैं तथा भूमि की उत्पादनशीलता बढ़ाने वाले गोबर को एकत्रितकर, उसे नमन करते हैं और कृषि-भूमि और उसके उत्पादन के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

नरकासुर पर विजय प्राप्ति के उत्सव के अतिरिक्त यह दिन देवी लक्ष्मी की बड़ी बहिन अलक्ष्मी (ज्येष्ठा देवी) की पूजा का भी दिन माना जाता है। इस दिन सायंकाल घर की बाहरी नाली पर दीपक जलाया जाता है और रात के बाद, उषाकाल होने पर घर की महिलाएँ सूप फटक-फटक कर 'इस्सर आवें दलिद्दर जाँय' कहती हुई घर के बाहर तक सूप फटकती हैं। वस्तुतः सूप फटककर वे अलक्ष्मी से घर के बाहर जाने की प्रार्थना करती हैं। अलक्ष्मी पूजा वस्तुतः दरिद्रता को बिदा करना है।

सूप फटक-फटक कर दरिद्रता को घर से निकालने वाली यह परम्परा पुरातन है। भविष्य पुराण में इस प्रथा का उल्लेख मिलता है जहाँ कहा गया है कि रात्रि बीत जाने पर जब प्रायः लोग आधी नींद में आँखें बंद किये लेटे रहते हैं, नगर की महिलाएँ सूप को डंडियों से बजाती हुई, अपने घरों से हँसी-खुशी से अलक्ष्मी को निकालती हैं।

कार्तिक अमावस्या (लक्ष्मी पूजन दिवस)

तीन दिवसीय पर्व का दूसरा दिन अर्थात् कार्तिक अमावस्या लक्ष्मी पूजन दिवस के रूप में मनाया जाता है। कामसूत्र में वात्सायन ने इस दिन को यक्ष रात्रि कहा है।

यशोधर ने कामसूत्र की 'जय मंगल' नामक टीका में इस दिन की महत्ता प्रतिपादित करते हुए इसे सुख रात्रि कहा है।

सुखरात्रिः यक्षाणां तत्र सन्निधानात् ।
तत्र प्रायशो लोकस्य द्यूत-क्रीड़ा।।

स्कंद पुराण के अनुसार यह दिन दो प्रकार से महत्त्वपूर्ण है। पहला यह कि इस दिन देवी लक्ष्मी भगवान विष्णु से पहले नींद से उठती है, क्योंकि हिन्दू पत्नी का यह कर्त्तव्य है वह पति से पहले उठे और पति की सुख-सुविधाओं की व्यवस्था करे। इसलिये इस दिन को 'सुख-सुप्तिका' कहते हैं। (२/४/८)८६) दूसरा यह कि इस दिन दैत्यराज बलि के कारागार से लक्ष्मी देवी और अन्य देवताओं को भगवान विष्णु ने मुक्ति दिलवायी थी। (२/४/९/७७)

इस प्रकार अमावस्या की यह रात सुख, आमोद-प्रमोद की रात मानी गई है।

व्रत और पूजा विधान

प्रातःकाल उठकर शौचादि एवं स्नान से निवृत होकर, पितृगण और देवताओं का पूजन करना चाहिये तथा दूध, दही, धृत आदि से पितरों का पार्वण-श्राद्ध करना चाहिये। यदि संभव हो तो दिन-भर व्रत रखकर संध्या समय देवी लक्ष्मी का अन्य देवी-देवताओं के साथ पूजन करके, तब भोजन करना चाहिये।

संध्या के समय घर-द्वार, बाग-बगीचे, मंदिर, चौराहा आदि पर तेल का दीपक जलाना चाहिये। पूज्य स्थानों पर धृत का दीपक जलाने का विधान है। दीपावली सजा लेने के बाद श्रीगणेश के साथ लक्ष्मीजी की पूजा करने का विधान है। (श्री गणेश एवं देवी लक्ष्मी की पूजा के औचित्य के बारे में 'देवी लक्ष्मी एवं अन्य देवगण' शीर्षक अध्याय देखें। विविध प्रकार के मिष्ठान्नों एवं फलों का भोग लगावें। तदनन्तर पवित्र वेदी बनाकर अक्षत एवं कुंकुम आदि से अष्टदल कमल बनावें और उस पर देवी लक्ष्मी एवं देवी के बायीं ओर श्री गणेश की मूर्ति स्थापित करके, पूजा, प्रार्थना, आरती आदि करना चाहिये।

व्यवसायी तथा व्यापारी वर्ग के लोग दीपावली के दिन लक्ष्मी-पूजन के साथ बही-खाता, लेखनी, दावात आदि का भी पूजन करते हैं। आजकल कम्प्यूटर, कलक्युलेटर आदि की भी पूजा की जाती है।

ऐसा लोक-विश्वास है कि प्रकाशित स्थानों को देखकर, देवी लक्ष्मी प्रसन्न होती है एवं वहाँ वास करती है। जो अपने घरों को इस दिन प्रकाशित नहीं करते, उन्हें वर्ष-भर सम्पन्नता और समृद्धि प्राप्त नहीं होती है। पुराणों की यह मान्यता है कि दीपावली की अमावस्या की रात्रि में विष्णु प्रिया देवी सर्वत्र घूमती है और जहाँ कहीं उन्हें अपने निवास योग्य स्थान और कृपा योग्य पात्र दिखाई पड़ता है, वहीं रम जाती हैं।

तीसरा दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा

तीन दिवसीय पर्व का अंतिम दिन है कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा जिसे बलि प्रतिपाद या बलिराज्य प्रवर्तनी कहा जाता है। इस दिन पाताल से देवी लक्ष्मी दैत्यराज बलि के साथ पृथ्वी पर आती है।

यह दिन बलि पूजा के निमित्त है। इस दिन जमीन पर पांच रंगों के चूर्ण से बलि की प्रतिमा बनानी चाहिये और उसकी पूजा करनी चाहिये। बलि की पत्नी विन्ध्यावली की प्रतिमा भी बनानी चाहिये और उसे आभूषणों से सजाना चाहिये। इनके अतिरिक्त कुष्मांड, मय, जम्मोरु आदि राक्षसों की प्रतिमा भी बनानी चाहिये। घर के आंगन में इन प्रतिमाओं को रख, उनको फूलों आदि से सजाना चाहिये। राजा बलि को मदिरा-मांस के साथ भात और दलिया भी अर्पित करना चाहिये। रात्रि नाच-गाने एवं वार्त्तालाप में बितानी चाहिये। इस दिन बलि-पूजा करने से सुख-समृद्धि पूरे परिवार को वर्ष भर मिलती है, ऐसी मान्यता है।

लेकिन सामान्य जन बलि की पूजा अलग ढंग से करते हैं। वे अपने घर में एक यान बलि के लिये बनाते हैं तथा चावल से बनी बलि की प्रतिमा को उस पर स्थापित कर, उसकी पूजा फल-फूलों से करते हैं। लेकिन जो बलि की पूजा अपने आंगन में करते हैं वे गोबर से बलि की प्रतिमा बनाकर, उस पर दही छिड़कर, अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। (स्कंदपुराण २/४/१०-१५) जो श्रद्धानुसार इस दिन दान देता है, उनकी सम्पत्ति बढ़ती है और ऐसा दान भगवान विष्णु को भी प्रसन्न करता है। जो इस दिन बलि की पूजा करते हैं वे आधि-व्याधि से मुक्त होते हैं तथा ऐश्वर्य एवं सम्पन्नता प्राप्त करते हैं तथा संकटो और विपत्तियों से मुक्त हो जाते हैं। (पद्मपुराण ६/१२४/६५-६६)

अन्नकूट (गोवर्धन पूजा)

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को अन्नकूट का महोत्सव भी मनाया जाता है। यह वैष्णवों का मुख्य पर्व है और श्री कृष्ण मंदिरों अथवा विष्णु मंदिरों में इसका आयोजन किया जाता है। इस दिन गोवर्धन पूजा भी की जाती हैं।

माट्टु पोंगल

तमिलनाडु में दीवाली से अगले दिन माट्टु पोंगल नामक त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन पशुओं (विशेषतया गाय/सांड) को नहलाते-धुलाते हैं, उनके सींगों पर पालिश करते हैं और उन्हें सजाते हैं। सूर्य देवता को चावल भेंटकर के पशुओं की खूब खातिर की जाती है एवं खेल-तमाशे आदि आयोजित किए जाते हैं।

ओणम

केरल में ओणम नामक पर्व राजा बलि के सम्मान में मनाया जाता है। यह उत्सव मानसून के अन्त में मलयालम मास चिंगम (अगस्त-सितम्बर) में हरियाली के मौसम में पड़ता है। यह फसलों की कटाई का समय है, अतः आनंद मनाया जाता है। ओणम के अवसर पर नौका दौड़ के आयोजन किये जाते हैं। इन दौड़ों में सम्मिलित होनेवाली नौकाओं की आकृति चोंचनुमा, पंतग जैसी पूंछ और घुमावदार सिर होता है। हर नाव में चप्पू ढोल-मंजीरे की ताल पर चलते जाते हैं।

दीपावली का त्रिदिवसीय पर्व एक ऐसा उत्सवों का समूह है जिसमें पितरों का श्राद्ध, गोबर की पूजा, सौभाग्य-समृद्धि की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी एवं वनस्पति के प्रतीक बलि की पूजा की जाती है। यह भारत में ऐसा समय है, जब धान्य की पकी फलस से खेत-खलियान भरे रहते है एवं वनस्पति एवं उत्पादनशीलता (उर्वरता) के देवताओं के रूप में देवी लक्ष्मी और बलि राजा का स्मरण-स्तवन किया जाता है।

श्री पंचमी

श्री पंचमी देवी लक्ष्मी की पूजा की मान्य तिथि है, परन्तु श्री पंचमी कौन से मास की पंचमी को कहना चाहिये इसके संबंध में शास्त्रों में मतैक्य नहीं है। नीलमतपुराण के अनुसार चैत्र शुक्ल पंचमी श्री पंचमी की तिथि है। भविष्य पुराण (उत्तर पर्व) के अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी श्री पंचमी की तिथि है। देवी लक्ष्मी के स्थिरीकरण हेतु श्री पंचमी तिथि को लक्ष्मी-पूजा के साथ लक्ष्मी-व्रत का भी विधान है। कालिका पुराण

(८५/११०) श्री पंचमी को लक्ष्मी-पूजा की तिथि मानता है एवं उसके अनुसार लक्ष्मी पूजा से धन-धान्य की अभिवृद्धि होती है।

पूजयित्वा श्रियंदेवी पंचम्यां नृपश्चरेत्।
श्रीयज्ञं धनधान्यस्य वृद्धये नृपसत्तम्।।

निर्णय सिन्धु के अनुसार माघ मास की शुक्ल पंचमी श्री पंचमी की तिथि है —

चतुर्थीवरदां नाम तस्यां गौरी सुपूजिता।
सौभाग्यं मंगलं कुर्यात् पंचम्यां श्रीरपि श्रियम् ।।

वस्तुतः श्री पूजा (लक्ष्मी पूजा) की मूल तिथि माघ शुक्ल पंचमी है जिसे श्री पंचमी कहते हैं। इसी कारण अन्य मासों की शुक्ल पंचमी भी देवी लक्ष्मी की पूजा से जुड़ गईं।

स्कंद पुराण के अनुसार महापीठ में महालक्ष्मी की पूजा श्री पंचमी को ही की जानी चाहिये जिससे अलक्ष्मी दूर रहती है —

तत्र पीठे स्थिता देवी महालक्ष्मीति विश्रुता।
सर्व पापप्रशमनी सर्वकार्य शुभप्रदा।।

श्री पंचम्यां नरो यस्तु पूजयेतां विधानतः।
गंध पुष्पादिभिर्भक्त्या तस्यालक्ष्मीभयं कुतः।।

- (प्रभास खंड १३२/७८)

महाभारत (आरण्यक अ. २२९ / ५०-५२) के अनुसार इन्द्र की मौसेरी बहन देवसेना जिसके षष्ठी, लक्ष्मी, आशा, सुखप्रदा, सिनीवाली, कुहू, सद्वृति और अपराजिता नाम भी है, का स्कंद के साथ माघ शुक्ल पंचमी को विवाह हुआ एवं शोभारूप स्वयं लक्ष्मी ने मूर्तिमति होकर उनका आश्रय लिया। इसलिये यह तिथि श्री पंचमी कही जाती है। बाद में जब श्री नाम देवी लक्ष्मी के साथ ही देवी सरस्वती के लिये भी मान्य हुआ, यह तिथि देवी सरस्वती की पूजा के लिये मान्य की गई। भविष्य पुराण (४/११) में निर्देश है कि माघ शुक्ल पंचमी को पहले देवी लक्ष्मी की और बाद में देवी सरस्वती की पूजा करनी चाहिये।

माघ शुक्ल पंचमी ऋतुराज वसंत के आगमन की तिथि है, जिसे वसंत पंचमी कहते हैं। इस समय प्रकृति अपने अह्लादकारी स्वरूप वसंत की ओर उन्मुख होती है जिस

ऋतु के संबंध में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है — ऋतुओं में मैं वसंत हूँ। (ऋतुनां कुसुमाकरः - गीता १०/३५) वसंत ऋतु की नैसर्गिक शोभा का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने ऋतुसंहार में कहा है - सर्वं प्रियं चारूतरं वसन्ता।

वसंत की नव पल्लवित हरी-भरी भूमि से देवी की सादृश्यता निरूपित करते हुए वामन पुराणकार ने वसंत में खिलने वाले पुष्पों, फलों एवं पक्षियों की ध्वनि की समता रूपालंकार के द्वारा देवी के विविध अंग-प्रत्यंगों एवं ध्वनि आदि से की है। वसन्त में खिलने वाले (१) रक्ताशोक, (२) पलाश (३) नीलाशोक (४) विकसित कमल (५) बिल्व-फल (६) नीलकमल (७) कुंद (८) मंजरी (९) बंधुजीव एवं (१०) सिन्दुवार की समता क्रमशः देवी के (१) हाथ (२) पद (३) केश-कलाप (४) मुख (५) नेत्र (६) स्तन (७) दन्त (८) कर (९) अधर एवं (१०) नख से की गई है। इसी प्रकार कोयल की काकली (२) अंकोल (३) मयूर समूह (४) सारस का स्वर (५) प्राग्वंश (६) मत्तहंस (७) पुत्रजीव एवं (८) भ्रमर की समता क्रमशः (१) स्वर (२) वस्त्र (३) आभरण (४) नुपूर (५) करधनी (६) गति (७) अंशुक (वस्त्र) एवं (८) रोमावली से की गई है।

वसंत-लक्ष्मी का जो साहित्यिक वर्णन किया गया, वह द्रष्टव्य है —

रक्ताशोक करा तन्वी देवर्षे किंशुकाऽङ्घ्रिका।
नीलाशोककचा श्यामा विकसिकमलानना।।
नीलेन्दीवर नेत्रा च ब्रह्मन् बिल्वफल स्तनी।
प्रफुल्ल कुंद दशना मंजरी करशोभिता।।
बंधुजीवाधारा शुभ्रा सिन्दुवार नखाद्भूता।
पुंस्कोकिलस्वना दिव्या अंकोल वसना शुभा।।
बर्हिवृंदकलापा च सार सस्वर नूपुरा।
प्राग्वंश रसना ब्रह्मन् मत्तहंस गतिस्तया।।
पुत्रजीवांशुका भृंगरोमराजि विराजिता।
वसंत लक्ष्मीः संप्राप्ता ब्रह्मन् बदरिकाश्रमे।।

- (वामन पुराण ६/१७-२१)

भविष्य पुराण (उत्तर पर्व, अ. ३७) में श्री पंचमी व्रत कथा दी गई है, जिसमें देवी लक्ष्मी से समृद्धि की कामना इस प्रकार की गई है —

क्षीराब्धिमथनोद्भूते विष्णोर्वक्षः स्थलालये।
सर्वकाम प्रदे देवि ऋद्धिं यच्छ नमोऽस्तु ते।।

- (५४)

हे देवी! आप क्षीर-सागर के मंथन से उद्भूत हैं, भगवान विष्णु का वक्षःस्थल आपका अधिष्ठान है, आप सभी कामनाओं को प्रदान करने वाली हैं, अतः मुझे भी आप समृद्धि प्रदान करें, आपको नमस्कार है।

देवी लक्ष्मी को समर्पित उपरोक्त उत्सवों का न केवल धार्मिक महत्त्व है, वरन् इनका सामाजिक महत्त्व भी कम नहीं है। ये उत्सव सामाजिक सम्पर्क के साधन हैं तथा ऐसे संपर्क से समाज में एकता एवं समता की भावना का निर्माण होता है और लोगों में परस्पर स्नेह-सौहार्द की वृद्धि होती है। इनके साथ-साथ होता है हर्ष और उल्लास के वातावरण में देवी लक्ष्मी का स्मरण और पूजन।

●

देवी लक्ष्मी के कतिपय मंदिर

(१) कोल्हापुर का महालक्ष्मी मंदिर

करवीर क्षेत्र का माहात्म्य

देवी महालक्ष्मी का अति प्राचीन एवं विशाल मंदिर महाराष्ट्र प्रदेश के कोल्हापुर नगर में स्थित है। कोल्हापुर नगर को दक्षिण की काशी (वाराणसी) कहा जाता है तथा इसका प्राचीन नाम 'करवीर क्षेत्र' है। भारत में स्थित ५१ शक्तिपीठों में से एक यह तीर्थ धाम है। ऐसी मान्यता है कि सती के तीन नेत्र यहाँ गिरे थे। 'पद्मपुराण' के करवीर माहात्म्य में इस शक्तिपीठ के विषय में उल्लेख है कि करवीर नामक यह क्षेत्र १०८ कल्प प्राचीन है एवं इसकी 'महामातृक' संज्ञा है, क्योंकि यह आद्या मातृशक्ति का मुख्य पीठ स्थान है। 'श्रीमद्देवी भागवत', 'स्कंद पुराण', 'मार्कण्डेय पुराण', 'महाभारत', 'हरिवंश पुराण' आदि ग्रंथों में इस शक्तिपीठ का गौरवपूर्ण उल्लेख है।

'स्कंद पुराण' में करवीर क्षेत्र माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है कि काराष्ट्र देश का विस्तार दस योजन है। यह देश दुर्गम है। उसी के बीच में काशी आदि से भी अधिक पवित्र श्री लक्ष्मी निर्मित करवीर क्षेत्र है। यह क्षेत्र बड़ा ही पुण्यमय क्षेत्र है तथा इसके दर्शन मात्र से पाप नाश हो जाते हैं। यहाँ वेद पारगामी ब्राह्मण एवं ऋषिगण वास करते हैं। उनके दर्शन मात्र से ही सारे पापों का क्षय हो जाता है। - (सह्याद्रि खंड, उत्तरार्ध, अ. २/२४-२७)।

कोल्हापुर की देवी महालक्ष्मी को 'करवीर सुवासिनी' या 'कोल्हापुर निवासिनी' कहा जाता है। महाराष्ट्र में देवी महालक्ष्मी को 'अम्बाबाई' भी कहते हैं।

पौराणिक पृष्ठभूमि

करवीर सुवासिनी देवी महालक्ष्मी विषयक पौराणिक कथा संक्षेप में इस प्रकार है —

प्राचीन काल में कोलासुर नामक एक महा शक्तिशाली दैत्य था। इसे यह वर मिल चुका था कि किसी स्त्री के अतिरिक्त इसका कोई वध नहीं कर सकेगा। अतः इसने अपना आतंक चारो ओर व्याप्त कर रखा था। इस असुर के अत्याचारों से संत्रस्त देवगण भगवान विष्णु की शरण में गये तथा उनसे प्रार्थना की कि इस असुर से मुक्ति दिलवायें। देवगण के ऐसा अनुरोध करने पर भगवान विष्णु ने महालक्ष्मी के रूप में अपनी ही शक्ति को प्रकट कर उसे कोलासुर के वध का निर्देश दिया। तब सिंहारूढ़ हो महालक्ष्मी करवीर क्षेत्र में आ पहुँची और कोलासुर दानव के साथ उनका घमासान युद्ध हुआ। अंत में देवी ने उसका संहार कर दिया। मरने के पूर्व उस दानव ने देवी से वर मांगा था कि इस (करवीर क्षेत्र) को मेरा नाम प्राप्त हो, जिसे देवी ने स्वीकार कर लिया। तभी से करवीर क्षेत्र 'कोल्हापुर' हो गया और देवी ने भी यहीं प्रतिष्ठित होना उचित समझा।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पौराणिक पृष्ठभूमि के अतिरिक्त इस शक्तिपीठ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी पर्याप्त प्राचीन है। १७वीं शताब्दी में मराठाओं के राज्यकाल में शक संवत १६३७ के विजया दशमी के दिन (ई. सन् के अनुसार २६ सितम्बर १७१५) इस शक्तिपीठ का जीर्णोद्धार हुआ एवं देवी महालक्ष्मी के श्रीविग्रह की भव्य पुनः प्रतिष्ठा प्राचीन मंदिर परिसर में हुई। तब से अब तक देवी महालक्ष्मी की उपासना यहाँ सतत हो रही है एवं असंख्य भक्त एवं साधकगण देवी के दर्शनार्थ आते हैं।

१७वीं शताब्दी पूर्व के भी कतिपय अभिलेख मिले हैं, जिनसे यह पता चलता है कि यह शक्तिपीठ ई. सन् ८१७ में था, जब इस क्षेत्र पर राष्ट्रकूट वंश का राज्य था। इसके बाद के कदम्ब और सिलाहार वंश के राजाओं की भी करवीरवासिनी महालक्ष्मी कुलदेवी थी। लेकिन जब इस क्षेत्र पर मुस्लिम आक्रान्तों का राज्य हुआ, देवी का प्राचीन धाम उजड़ गया। परन्तु देवी का श्रीविग्रह देवी उपासकों ने बचा लिया था, जिसकी पुनः प्रतिष्ठा मराठा शासन काल में हुई।

वर्तमान मंदिर परिसर

सम्प्रति यह पुराण प्रसिद्ध शक्तिपीठ कोल्हापुर नगर में पुराने राजमहल के पास स्थित खजाना घर के पीछे स्थित है। मंदिर परिसर का घेरा बहुत बड़ा है, जिसमें देवी के प्रमुख मंदिर के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं के मंदिर भी हैं। प्रमुख मंदिर पाँच शिखरों और तीन मंडपों से सुशोभित है। गर्भगृह मंडप, मध्य मंडप एवं गरुड़ मंडप - ये मंडप-त्रय हैं। प्रमुख एवं विशाल मध्य मंडप में बड़े-बड़े और ऊँचे स्तम्भ हैं। यह मंदिर परिसर पंच गंगा नामक नदी के तट के समीप है। पंच गंगा नदी का स्रोत पांच नदियों का संगम है। यह नदी कोल्हापुर से आगे जाकर कृष्णा नदी में मिल जाती है।

मंदिर परिसर के प्रमुख मंदिर के गर्भगृह में देवी महालक्ष्मी की भव्य-दिव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है तथा इस गर्भगृह के दाहिनी और बायीं ओर के उप-गर्भगृहों में क्रमशः देवी महासरस्वती और देवी महाकाली की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। मुख्य सभा मंडप के सामने के सभा मंडप में श्री सिद्धि विनायक की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसी मंदिर भवन में आद्य शंकराचार्यजी द्वारा स्थापित विशाल भू पृष्ठ चक्रराज 'श्रीयंत्र' है। देवी महालक्ष्मी का यह मंदिर सुदर्शनीय एवं शिल्पकला का आदर्श है।

देवी का श्रीविग्रह

देवी महालक्ष्मी का श्रीविग्रह वज्र-मिश्रित (हीरे से मिश्रित) रत्नशिला का स्वयंभू और चमकीला है। प्रतिमा अत्यन्त पुरातन होने से बहुत घिस गयी थी और अतः सन् १९५४ में कल्पोक्त विधि से मूर्ति में वज्रलेप-अष्टबंधादि संस्कार किये गये। उसके पश्चात् अब श्रीविग्रह सुस्पष्ट दिखायी पड़ता है।

देवी का ध्यान 'मार्कण्डेय पुराण' में वर्णित 'देवी माहात्म्य' के 'प्राधानिक रहस्य' में जैसा वर्णित है, वैसा ही है। प्राधानिक रहस्योक्त ध्यान इस प्रकार है —

मातुलिंग गदं खेटं पानपात्रं च बिभ्रती।
नागं लिंगं च योनिं च बिभ्रती नृप मूर्धनि।।

अर्थात् : चतुर्भुजा जगन्माता के हाथों में मातुलिंग (अनार / बिजौरा / बीज वाला फल), गदा, ढ़ाल और अमृत पात्र विराजित हैं। मस्तक पर नाग वेष्टित शिवलिंग और योनि है। स्वयंभू मूर्ति में ही सिर पर किरीट उत्कीर्ण होकर शेष फणों ने उस पर छाया

की है। साढ़े तीन फुट ऊँची यह प्रतिमा आकर्षक एवं सुंदर है। देवी के चरणों के पास उनका वाहन 'सिंह' प्रतिष्ठित है।

देवी के श्रीविग्रह के मुकुट पर शिवलिंग है तथा शिवलिंग पर शेष फण भी है। ऐसी मान्यता है कि देवी महालक्ष्मी के इस रूप में त्रि-देव समाविष्ट हैं। विष्णु उनके सर्वांग में व्याप्तहैं, शिव मस्तक पर विराजते हैं। ब्रह्मदेव नाग रूप में देवी के सिर पर छत्र धारण किये हुए हैं।

उपासना

यहाँ देवी की उपासना व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों रूपों में होती है। पाद्य पूजा, षोडशोपचार और महापूजा जैसे विविध प्रकार के अर्चन प्रतिदिन चलते रहते हैं। अभिषेक के समय 'श्रीसूक्त' का अधिकाधिक पाठ किया जाता है। प्रातःकाल के दर्शन एवं आरती (मराठी में इसे 'काकड आरती कहते हैं) से लेकर मध्यरात्रि की शय्यारती (मराठी में इसे 'सेज आरती' कहते हैं) तक अखंड रूप में पूजन-अर्चन, शहनाई, सनई, चौघडा, स्तोत्र पाठ, आरतियाँ, गायन-वादन, भजन-कीर्तन आदि कुछ-न-कुछ कार्यक्रम चलते ही रहते हैं। नित्य उपासना भी अत्यन्त वैभव के साथ शास्त्रोक्त पद्धति से की जाती है।

नगर में कोई भी विवाहादि मंगल कार्य होता है, तो पहला निमंत्रण-पत्र देवी के चरणों में समर्पित किया जाता है और मंगल कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् प्रत्येक भक्त परिवार देवी का दर्शन-पूजन करता है।

(२) श्री महालक्ष्मी मंदिर, मुंबई

मुंबई महानगरी के भूलाभाई देसाई रोड नामक संभ्रांत क्षेत्र में समुद्र के किनारे मुंबई की भाग्य विधाता आदिशक्ति महालक्ष्मी का एक ऐसा अनुपम मंदिर है, जहाँ एक ही शिखर के नीचे और एक ही आसन पर आदिशक्ति के तीनों रूप — यथा (१) महासरस्वती, (२) महालक्ष्मी एवं (३) महाकाली — विराजमान हैं।

ईस्वी सन् १७६० में वरली काजवे का निर्माण

आज का बृहद् मुंबई महानगर एक समय सात समुद्री टापुओं का समूह था। एक टापु से दूसरे टापु पर नावों द्वारा आना-जाना होता था। ईस्वी सन् १६६५ में ये टापु

अंग्रेजों की इस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन हुए। कम्पनी के अधिकारियों ने इन सात टापुओं के विकास की एक योजना ईस्वी सन् १७६० में बनाई। इस योजना के अन्तर्गत वर्तमान गिरगाम क्षेत्र और वरली क्षेत्र को जोड़ने के महामार्ग का कार्य तत्कालीन गवर्नर मि. हार्नबी ने प्रारम्भ किया और महामार्ग बनाने का ठेका श्रीरामजी शिवजी प्रभु नामक कान्ट्रेक्टर को सौंपा गया। महामार्ग का थोड़ा काम होने के बाद ऐसी घटना हुई कि दिन में किया गया कार्य रात्रि में समुद्र के ज्वार के कारण समुद्र में ही बह जाता था। यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा।

देवी महालक्ष्मी का दृष्टांत

ऐसा कहा जाता है कि एक रात्रि को महालक्ष्मी माता ने श्रीरामजी शिवजी प्रभु को स्वप्न में आकर दृष्टांत दिया कि उनकी मूर्ति समुद्र में पड़ी है, अतः तुम उसे खोजो और मूर्ति को समुद्र से निकालकर, उसे प्रतिष्ठापित करो तथा बाद में तुम्हारा महामार्ग निर्माण का कार्य सफलतापूर्वक पूरा होगा। श्रीरामजी शिवजी ने इस दृष्टांत का विवरण तत्कालीन कम्पनी के अधिकारियों को दिया। सारी परिस्थिति पर विचार कर उन अधिकारियों ने श्रीरामजी भाई को मूर्ति को खोजने की अनुमति दे दी।

ई. सन् १७६१ में मंदिर की स्थापना

आज जिस पहाड़ी पर मंदिर स्थित है, उसके नीचे के समुद्र में मूर्ति की खोज प्रारम्भ की गई तथा वहाँ से तीन पाषाण मूर्तियाँ (महासरस्वती, महालक्ष्मी एवं महाकाली) मिलीं, जिन्हें श्रीरामजी भाई ने इसीपहाड़ी पर एक छोटे से घुमटीनुमा मंदिर में प्रतिष्ठित किया। इसके बाद देवी की कृपा से तत्कालीन 'वरली काजवे' (दूसरा नाम हॉर्नबी बेलार्ड एवं वर्तमान नाम भूलाभाई देसाई रोड) का निर्माण कार्य सफलतापूर्वक पूरा हुआ। तत्पश्चात् सरकार ने मंदिर के लिये पहाड़ी के समीप की जमीन श्रीरामजी भाई को बतौर इनाम प्रदान की तथा मंदिर की व्यवस्था भी उसे ही सौंपी। इस प्रकार इस महालक्ष्मी मंदिर की स्थापना ई. सन् १७६१ में हुई।

सिलहार कालीन मूर्तियाँ

प्राप्त पाषाण प्रतिमाओं की परीक्षा के पश्चात् प्रतिमा-विशेषज्ञों के मतानुसार ये मूर्तियाँ आठवीं शताब्दी की आँकी गई, जब इस क्षेत्र पर सिलहार वंशीय राजाओं का

आधिपत्य था। संभवतः इन तीनों देवियों का जो मंदिर उन्होंने बनवाया था, वह विधर्मियों के आक्रमण के कारण नष्ट हो गया और मूर्तियाँ समुद्र में समा गयीं। ऐसा अनुमानतः १४वीं या १५वीं सदी में होना चाहिये।

मंदिर के लिये ट्रस्ट का गठन

कालान्तर में श्रीरामजी शिवजी प्रभु के वंशजों में मंदिर की आय के बटवारे को लेकर विवाद छिड़ गया। अतः सन् १९१२ में मुंबई उच्च न्यायालय में मंदिर की सुव्यवस्था के लिये एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया, जिसके फलस्वरूप इस मंदिर की व्यवस्था के लिये एक 'स्कीम' (संविधान) बनाकर मंदिर का एक सार्वजनिक ट्रस्ट बना दिया गया। सम्प्रति मंदिर का स्वामित्व ट्रस्ट का है, जो बम्बई पब्लिक ट्रस्ट एक्ट १९५२ के अन्तर्गत पंजीकृत है।

जीर्णोद्धार

प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार सन् १९८० में प्रारम्भ होकर सन् १९८८ में पूरा हुआ तथा इस जीर्णोद्धार के कार्य पर करीब तीस लाख रुपये व्यय हुए। जीर्णोद्धार के पश्चात् सम्प्रति मंदिर भव्य एवं सुदर्शनीय प्रतीत होता है।

देवियों के श्रीविग्रह

मंदिर के गर्भगृह में सिंहासन के मध्य भाग में देवी महालक्ष्मी की प्रतिमा है और उसके एक ओर देवी महासरस्वती एवं दूसरी ओर देवी महाकाली की प्रतिमाएँ हैं। आदिशक्ति के तीन स्वरूप एक ही आसन पर विराजमान हैं, अर्थात् तीनों देवियाँ मंदिर की संयुक्त रूप से मुख्य देवता हैं। देवी महालक्ष्मी की प्रतिमा की ऊँचाई ३ फुट है, महासरस्वती की प्रतिमा की ऊँचाई २.५० फुट है तथा देवी महाकाली की प्रतिमा की ऊँचाई २ फुट है। तीनों प्रतिमाओं का केवल मुख दिखलायी देता है, जिस पर सोने का मुख-पट लगाया हुआ है।

पूजा-अर्चा-उत्सव

वस्तुतः यह मंदिर एक शक्ति पीठ है। यहाँ आने वाले दर्शनार्थी भक्तगण तीनों देवियों के लिये तीन साड़ी, तीन हार, तीन वेणी, चोली के लिये कपड़े के तीन टुकड़े एवं तीन नारियल अर्पण कर देवियों की पूजा-अर्चा करते हैं।

इस मंदिर में प्रतिष्ठित सभी देवियों की पूजा-अर्चा नियमित शास्त्रोक्त पद्धति से होती है। चैत्र की नवरात्रि, शरद की नवरात्रि एवं दीपावली आदि उत्सव प्रति वर्ष आयोजित होते हैं, जिनमें बड़ी संख्या में दर्शनार्थी भाग लेते हैं।

(३) अष्ट लक्ष्मी मंदिर, पुन्नैनल्लुर (तमिलनाडु)

तमिलनाडु में तंजोर से ६ मील की दूरी पर स्थित पुन्नैनल्लुर में देवी मरियम्मा का एक मंदिर है। 'स्थलपुराणम्' के अनुसार भगवान शिव ने तंज नामक असुर से युद्ध करने के पूर्व आठों दिशाओं में एक-एक शक्ति को स्थापित किया। इन अष्ट शक्तियों में एक शक्ति, जिसे पूर्व दिशा में स्थापित किया था, आजकल मंदिर की प्रमुख देवता है।

सन् १६८० में महाराष्ट्र के वेंकोजी महाराज छत्रपति तीर्थ यात्रा के समय समयापुरम् में थे, जहाँ देवी काली का प्रसिद्ध मंदिर है, उन्हें स्वप्न में देवी मरियम्मा ने दर्शन दिये और कहा कि तंजोर से तीन मील की दूरी पर पुन्ना वृक्षों के जंगल में उनकी एक प्रतिमा पड़ी है। राजा तुरन्त निर्देशित स्थल पर गये तथा प्रतिमा को खोज निकाला। उसी स्थल पर एक मंदिर का निर्माण करवा कर उस प्रतिमा को उसमें प्रतिष्ठित कर दिया गया। इस मंदिर के देवता को 'पुन्नैनल्लुर मरियम्मा' कहा जाता है।

ऐसी मान्यता है कि तंजोर के तुलजा राजा (१७२९-३५) की सुपुत्री की नेत्र-ज्योति चली गई थी, वह देवी की आराधना से पुनः प्राप्त हो गई।

तंजोर के राजाओं ने मंदिर के विकास में पर्याप्त ध्यान दिया तथा गोपुरम् मंडपम् एवं प्रवेश द्वार आदि का निर्माण करवाया।

देवी की पूजा करने के लिये रविवार का दिन शुभ माना जाता है, जब दर्शनार्थियों विशेषतया स्त्रियों और बच्चों की भीड़ लगी रहती है।

मंडप के भीतर अष्ट-शक्ति के निम्नांकित आठ स्वरूप का है—

(१) गजलक्ष्मी, (२) वीरलक्ष्मी, (३) सौभाग्य लक्ष्मी, (४) संतान लक्ष्मी, (५) धन लक्ष्मी, (६) धान्य लक्ष्मी, (७) विद्या लक्ष्मी एवं (८) कारुण्य लक्ष्मी।

स्थानीय लोगों में देवी की बड़ी मान्यता है एवं ऐसा विश्वास है कि देवी उपासकों की मनोकामना पूरी करती है। - (टेम्पल्स ऑफ तमिलनाडु, आर. के. दास, पृष्ठ १२४)।

(४) 'लक्ष्मी नृसिंह' मंदिर, अहोबिल (आंध्र प्रदेश)

भगवान नृसिंह (श्री विष्णु) तथा उनकी शक्तिरूपा माता लक्ष्मी के युगल-रूप की पूजा-उपासना दक्षिण भारत में अधिक प्रचलित है। दक्षिण भारत में भगवान नृसिंह के कहीं स्वतंत्र मंदिर हैं, तो कहीं 'लक्ष्मी-नृसिंह' के युगल श्री विग्रह के मंदिर हैं। ऐसा ही एक 'लक्ष्मी-नृसिंह' के युगल श्री विग्रह का मंदिर है — अहोबिल स्थित 'मलोल-नृसिंह मंदिर'।

अहोबिल आंध्र प्रदेश में कडप्पा के समीप स्थित है, जहाँ श्री रामानुज सम्प्रदाय की आचार्य-पीठों में से एक मुख्य पीठ है। यह क्षेत्र 'नव-नृसिंह' क्षेत्र कहा जाता है। यहाँ भगवान नृसिंह के भिन्न-भिन्न मुद्राओं के नौ श्री विग्रह हैं — यथा (१) ज्वाला-नृसिंह, (२) अहोबिल-नृसिंह, (३) मलोल नृसिंह, (४) क्रोडाकार नृसिंह, (५) कारंज-नृसिंह, (६) भार्गव नृसिंह, (७) योगानन्द नृसिंह, (८) छत्रवट नृसिंह तथा (९) पावन नृसिंह।

नल्लामाला पर्वत के प्राकृतिक सौंदर्य के मध्य स्थित अहोबिल अल्लागड्डा शहर से लगभग २४ किलोमीटर दूर है। इस क्षेत्र को वेदाद्रि, गरुडाचलम् एवं नृसिंह तीर्थ भी कहते हैं।

मलोल नृसिंह मंदिर वेदाद्रि पर्वत के शिखर पर है। मलोल का अर्थ है - माँ लक्ष्मी के प्रिय (म यानि लक्ष्मी और लोल यानि प्रिय) अतः यहाँ पर भगवान नृसिंह सुखासन में बैठे हैं तथा उनकी गोद में देवी लक्ष्मी बैठी हैं। इस श्री विग्रह में भगवान नृसिंह सौम्य रूप में दिखलाये गये हैं।

(५) श्री महालक्ष्मी माता का मंदिर, दहाणु (महाराष्ट्र)

मुंबई-अहमदाबाद हाइवे पर मुंबई से उत्तर में एवं बलसाड से दक्षिण में स्थित दहाणु में महालक्ष्मी माता का एक प्राचीन एवं ऐतिहासिक मंदिर है। इस मंदिर का निर्माण हुआ उस समय दहाणु के पास का क्षेत्र वन-प्रदेश था। जव्हार रियासत के आदिवासी राजा ने इसे बनवाया था। स्थानीय आदिवासी इस मंदिर में प्रतिष्ठित महालक्ष्मी माता को 'रानी माता' कहते हैं। इस मंदिर का निर्माण जिस गाँव में हुआ है, उसका नाम विवलवेढा है, परन्तु आजकल यह क्षेत्र 'महालक्ष्मी दहाणु' के नाम से प्रख्यात है।

दहाणु के समीस्थ वन प्रदेश में एक पहाड़ी के शिखर पर जिसकी ऊँचाई करीब १४०० मीटर है, महालक्ष्मी माता का ऐतिहासिक स्थान है तथा इस पहाड़ी की तलहटी पर महालक्ष्मी माता का भव्य एवं विशाल मंदिर है। मंदिर के प्रांगण में दो दीप स्तम्भ एवं तुलसी का वृन्दावन है। मुख्य सभा मंडप के सामने सिंहासन पर लक्ष्मी माताजी की भव्य प्रतिमा है तथा उसके सामने सिंह की प्रतिकृति है।

चैत्र मास की पूर्णिमा को पहाड़ी के उच्चतम शिखर पर ध्वज फहराने की विधि की जाती है तथा नीचे मंदिर परिसर में बड़ा भारी मेला भरता है। इसके अतिरिक्त भाद्रपद मास की कृष्ण १२ (द्वादशी) के दिन उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव मुख्यतया आदिवासियों द्वारा ही मनाया जाता है, लेकिन अन्य लोगों द्वारा इसमें भाग लेने का कोई निषेध नहीं है। उत्सव में भाग लेने वाले अपने खेतों में जो पैदावार हुई है, उसका अमुक हिस्सा महालक्ष्मी माता को भेंट स्वरूप चढ़ाते हैं। माताजी के दर्शनों के बाद आदिवासी महिलायें और पुरुष वर्ग मिलकर नाच-गाना करते हैं तथा आनन्दोत्सव मनाते हैं।

●

चित्रावली

सिन्धु सरस्वती घाटी की एक मोहर पर देवी लक्ष्मी का अंकन

भारहुत के पाषाण खंड पर अंकित गजलक्ष्मी

सांची से प्राप्त गजलक्ष्मी की मूर्ति

बसाढ़ से प्राप्त एक मोहर पर नाव पर खड़ी लक्ष्मी की मूर्ति

ई. पूर्व दूसरी शती की मृण्मय मूर्ति (मथुरा संग्रहालय)

कौशाम्बी से प्राप्त ईसा की प्रथम शताब्दी की एक
गजलक्ष्मी की मृणमय मूर्ति गज-मुकुट पर अंकित

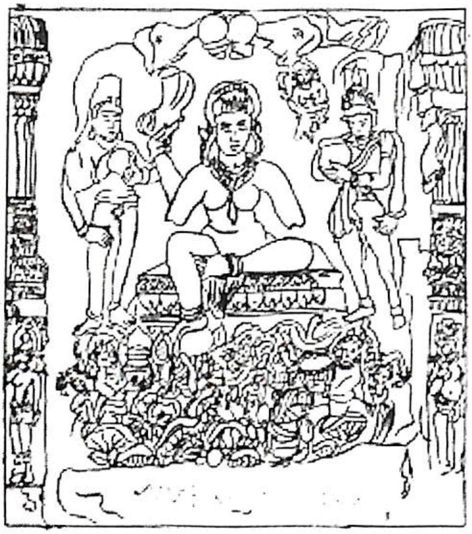

इलोरा में अंकित गजलक्ष्मी की मूर्ति

खिचींग (उड़ीसा) से प्राप्त गज-लक्ष्मी का अंकन

स्तोत्रादि की सूची

क्र. सं.		प्रथम पंक्ति	पृ.
१.	लक्ष्मी वंदना	सिद्ध लक्ष्मीर्मोक्ष लक्ष्मी . . .	२५३
२.	श्री सूक्त	हरिण्यवर्णां हरिणीं . . .	२५५
३.	श्री लक्ष्मी सूक्त	पद्मासने पद्मविपद्मपत्रे . . .	२६१
४.	श्री सूक्त (हिन्दी पद्यानुवाद)	जो स्वर्ण-सी कान्तिमय है . . .	२६४
५.	श्री सिद्धि स्तोत्र	ॐ नमः कमलवासिन्यै . . .	२६८
६.	श्री लक्ष्मी स्तोत्र	नमस्ये सर्व लोकानाम् . . .	२७३
७.	श्री लक्ष्मी स्तोत्र	मातर्नमामि कमले ! . . .	२७७
८.	श्री लक्ष्मी स्तोत्र	देवि त्वां स्तोतुम् . . .	२८०
९.	देवकृत लक्ष्मी स्तोत्र	क्षमस्व भगवत्यम्ब . . .	२८३
१०.	श्री महालक्ष्मी स्तोत्र	जय पद्मपलाशाक्षि . . .	२८६
११.	श्री महालक्ष्मी अष्टक	नमस्तेऽस्तु महामाये . . .	२९३
१२.	देवी लक्ष्मी का कवच	आविर्भूय हरिस्तस्मै . . .	२९६
१३.	श्री महालक्ष्मी कवच	सर्व सम्पत्प्रदायस्य . . .	२९९

१४. अष्ट-लक्ष्मी स्तोत्र	सुमन सवंदित सुंदरि . . .	३०३
१५. कनकधारा स्तव	अंगं हरेः पुलक . . .	३०७
१६. श्री लक्ष्मी और भगवान विष्णु की एकरूपता	नित्यैवैषा जगन्माता . . .	३१२
१७. नाम स्तोत्र	ॐकार रूपिणी लक्ष्मी . . .	३१५
१८. द्वादश नाम स्तोत्र	त्रैलोक्य पूजिते देवि . . .	३१७
१९. अष्टोत्तर नाम स्तोत्र	शतमष्टोत्तर . . .	३१८
२०. श्री महालक्ष्मी की स्तुति	महादेवी महालक्ष्मी नमस्ते . . .	३२०
२१. स्तवन	सर्वे षामेव भूतानां	३२२

●

श्री लक्ष्मी वंदना

सिद्ध-लक्ष्मीर्मोक्ष-लक्ष्मीजय-लक्ष्मीः सरस्वती।
श्रीलक्ष्मीर्वर - लक्ष्मीश्च, प्रसन्ना भव सर्वदा।।

(**भावार्थ** : रस-सिद्ध पुरुषों को रस-सिद्धि प्राप्त कराने वाली सिद्ध-लक्ष्मी, ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाली ब्रह्म-लक्ष्मी, भगवान् शंकर से एकता प्राप्त कराने वाली मोक्ष-लक्ष्मी, शत्रुओं पर विजय देने वाली जय-लक्ष्मी, वचन-सिद्धि देने वाली श्री सरस्वती, ऐश्वर्य, समृद्धि, कान्ति, आयुष्य, आरोग्य देने वाली वर-लक्ष्मी — इस प्रकार विभिन्न स्वरूपों से विद्यमान भगवती जगदम्बा! मुझ पर सदा प्रसन्न रहो।)

लक्ष्मीं क्षीर-समुद्र-राज-तनयां श्रीरङ्ग - वामेश्वरीम्।
दासी-भूत-समस्त-देव-वनितां त्रैलोक्य - दीपांकुरास्।।
श्रीमन्-मन्द-कटाक्ष-लब्ध-विभव-ब्रह्मेन्द्र-गङ्गाधराम्।
स्वां त्रैलोक्य-कुटुम्बिनीं सरसिजां वन्दे मुकुन्द-प्रियाम्।।

(**भावार्थ** : क्षीर-समुद्र से जो उत्पन्न हुई हैं, जो श्रीरंङ्ग-धाम की अधिष्ठात्री हैं, सब देवताओं की पत्नियाँ जिनकी दासी बनकर सेवा करती हैं, तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाली प्रकाश-रूप जो हैं, जिनके कृपा-कटाक्ष मात्र से ब्रह्मा, इन्द्र और शङ्कर ने मनवाञ्छित वैभव प्राप्त किए हैं, जो तीनों ही लोकों में स्त्रियों और बालकों के स्वरूप से प्रत्यक्ष निवास कर रही हैं, कमल से जो उत्पन्न हुई हैं, जो विष्णु को अत्यन्त प्रिय हैं — ऐसी भगवती को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।)

देवि प्रपन्नार्ति - हरे! प्रसीद,
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि! पाहि विश्वम्,
त्वमीश्वरी देवि! चराचरस्य।।

(**भावार्थ** : शरण आए हुए लोगों के दु:ख-कष्ट को मिटाने वाली, अखिल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाली, जगत् पर आधिपत्य चलाने वाली हे देवि! प्रसन्न हो, प्रसन्न हो, प्रसन्न हो। हे भगवति! तुम इस स्थावर-जङ्गम जगत् की मालिक हो। अतः कष्ट भोगते हुए इस जगत् का रक्षण करो, रक्षण करो।)

या रक्ताम्बुज वासिनी विलसिनी, चण्डांशु तेजस्विनी।
या रक्ता रुधिराम्बरा हरिसखी, या श्री मनोल्हादिनी।।
या रत्नाकर मन्थनात् प्रगटिता, विष्णोस्वया गोहिनी।
सा मां पातु मनोरमा भगवती, लक्ष्मीश्च पद्मावती।।

(**भावार्थ** : जो लाल कमल में रहती है, जो मनोहर शोभा देने वाली है, जो प्रचंड तेजयुक्त किरणों को धारण करती है, जो पूर्णतया लाल वर्ण की है, जो लाल रंग के वस्त्रों को धारण करती है, जो भगवान विष्णु को अति प्रिय है, जो लक्ष्मी हृदय को आनंदित करती है, जो समुद्र-मंथन में प्रकट हुई है, जो स्वयं विष्णु-पत्नी है, जो कमल से उत्पन्न हुई है एवं जो सदा पूजित है, ऐसी हे महालक्ष्मी देवी! मेरी रक्षा करो।)

।। इति लक्ष्मी वंदना भावार्थ सहित ।।

श्री सूक्त

श्री सूक्त ऋग्वेद संहिता के पंचम मंडल के खिल सूक्तों (परिशिष्ट सूक्तों) में से एक है, जिसका क्रमांक १८ है। ऋषिगण हैं — आनन्द, कर्दम, श्रीद, चिक्लित यानि जिन्हें सूक्त के मंत्रों का प्रथम साक्षात्कार हुआ था। आधुनिक भाषा में ऋषि वे थे, जिन्होंने इस सूक्त की रचना की या परम्परा से ग्रहण किया था एवं देवता हैं — श्री और अग्नि अर्थात वर्णनीय विषय है श्री एवं अग्नि। पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर द्वारा सम्पादित ऋग्वेद संहिता (पृष्ठ ७७२) के अनुसार इस सूक्त की २९ ऋचाएँ हैं, जिन्हें यहाँ 'श्री सूक्त' एवं 'श्रीलक्ष्मी सूक्त' शीर्षकों के अन्तर्गत उद्धृत किया है।

।। हरिः ॐ ।।

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।।१।।

हे अग्नि देव! सोने के जैसी कान्तिवाली, हरे रंगवाली (हरा रंग जीवन और ऊर्जा का द्योतक है) या हरिणी की आँखों सदृश्य आँखोंवाली या हरिणी का रूप धारण करने वाली (श्रीमद् देवी भागवत में कहा गया है कि श्री (लक्ष्मी) ने हरिणी का रूप धारण कर वन में विचरण किया (श्री धृत्वा हरिणी रूपमरण्ये संचचारह)। सोने और चाँदी के हार धारण करने वाली, चन्द्रवत प्रसन्न कान्ति-युक्त एवं स्वर्णमयी लक्ष्मी देवी को मेरे लिये पधारने की प्रार्थना कीजिये अर्थात् मेरी अभीष्ट सिद्धि के लिये मुझे सम्पन्नता प्राप्त हो। प्रार्थी अग्नि देवता से याचना इसलिये करता है, क्योंकि देवी-देवताओं को जो हविष्य आदि अर्पण किये जाते हैं, उनके वाहक अग्नि देव ही हैं। 'अग्रे नयति इति अग्नि'

अर्थात जो आगे ले जाय, वह अग्नि और इसी कारण अग्नि को गतिका मूर्त रूप माना जाता है। वस्तुतः सारा जीवन अग्नि तत्त्व पर ही निर्भर है।

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।।२।।

हे अग्नि देव! उन लक्ष्मी देवी को, जो 'अनपगामिनी' (अन्यत्र गमन न करें यानि स्थिर रहें) हो तथा जिनके आगमन से मैं सोना, गौएँ, घोड़े तथा पुत्रादि को प्राप्त कर सकूँ, ऐसी देवी को आप मेरे लिये आवाहित कीजिये।

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवीर्जुषताम् ।।३।।

जिस सेना के अग्र भाग में घोड़े हैं तथा उनके पीछे मध्य में रथ हैं, ऐसी सेना के सेनानी, जो हाथियों की चिंग्घाड़ सुनकर प्रमुदित होती हैं तथा जो देखने वालों को अपने राजसी वैभव से प्रभावित करती हैं, को मैं सम्मानपूर्वक आमंत्रित करता हूँ तथा मेरी यही कामना है कि ऐसे भव्य रूप वाली देवी सदा मेरे पास रहें; अर्थात् मेरे पास सदा ऐसी सेना रहे, जिसमें घोड़े, रथ एवं हाथी हों।

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारा मार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम् ।।४।।

जो साक्षात् ब्रह्म-रूपा, मंद-मंद मुसकराने वाली, सोने के आवरण से आवृत, दयार्द्र, तेजोमयी, पूर्णकामा, भक्तानुग्रहकारिणी, कमल के आसन पर विराजमान तथा पद्म वर्णा है, उन श्रीदेवी का मैं यहाँ आवाहन करता हूँ यानि पधारने के लिये प्रार्थना करता हूँ।

टिप्पणी : आद्रा का शाब्दिक अर्थ है — वह जो भीगा हुआ है। यहाँ यह शब्द सारगर्भित है। २७ नक्षत्रों में से एक नक्षत्र का नाम 'आद्रा' है, अतः इसका यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि लक्ष्मी का जन्म आद्रा नक्षत्र में हुआ। दूसरी एक ऐसी पुराकथा है कि क्षीरसागर से लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई, अतः उसे जल से भीगी हुई कहा जाता है। गजलक्ष्मी के रूप में देवी को दो हाथी अपनी सूंडों में जल से भरे कलश पकड़े देवी का अभिषेक करते हैं, अतः वह सदा आद्र रहती है। इसका एक अर्थ यह भी किया जाता है कि वह दयार्द्र या उदार स्वभाव वाली है। ऋचा संख्या १३ व १४ में भी यह शब्द लक्ष्मी के विशेषण के रूप में उपयोग किया गया है।

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ।।५।।

मैं चन्द्रमा के सदृश्य शुभ्र कान्तिवाली, सुंदर द्युतिशालिनी, यश में दीप्तिमती, स्वर्गलोक में देवताओं द्वारा पूजित, उदारशीला, पद्महस्ता श्रीदेवी की शरण ग्रहण करता हूँ। मेरा दारिद्र्य (अलक्ष्मी) दूर हो जाय। हे देवी! आप शरण प्रदान करने योग्य हैं, अतः मैं आपकी शरण में आता हूँ।

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ।।६।।

हे सूर्य के समान प्रकाश स्वरूपे श्री देवी! तुम्हारे ही तप (कृपा) से वृक्षों में श्रेष्ठ मंगलमय बिल्व-वृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके फल हमारी बाहरी और भीतरी दरिद्रता (अलक्ष्मी) को दूर करें।

टिप्पणी : इस ऋचा के द्वारा श्रीदेवी का वनस्पति और बिल्व-फल या बेल से सम्बद्धता बतलाई गई है। बिल्व-फल को श्रीफल भी कहते हैं। बिल्व-वृक्ष का उल्लेख वामन पुराण एवं स्कंद पुराण में मिलता है। स्कंद पुराण के अनुसार, जब विष्णु शिवलिंग के रूप में महादेवजी की पूजा कर रहे थे, तब अचानक पूजा के लिये बिल्वपत्र कम पड़ गये, अतः उनकी पत्नी लक्ष्मी ने अपने तप के बल से बिल्व-वृक्ष उत्पन्न किया, जिसके पत्तों से भगवान विष्णु ने महादेवजी की पूजा पूरी की। आयुर्वेद की दृष्टि से भी बिल्व वृक्ष के पत्ते एवं फल स्वास्थ्यप्रद होते हैं तथा मानसिक एवं शारीरिक रोगों को दूर करते हैं। वामन पुराण के अनुसार 'बिल्वो लक्ष्म्याः करेऽभवत्' अर्थात् बिल्व लक्ष्मी के हाथ में प्रकट हुआ या पाया गया।

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ।।७।।

हे श्रीदेवी! देवसखा कुबेर और उनके मित्र मणिभद्र तथा दक्ष प्रजापति की कन्या कीर्ति मुझे प्राप्त हो यानि मुझे धन और यश की प्राप्ति हो। मैं इस राष्ट्र में, देश में उत्पन्न हुआ हूँ, मुझे कीर्ति और ऋद्धि प्रदान करें।

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ।।८।।

लक्ष्मी की ज्येष्ठ बहिन अलक्ष्मी (दरिद्रता की अधिष्ठात्री देवी) का, जो क्षुधा और पिपासा से मलिन-क्षीणकाय रहती हैं, मैं उसका नाश चाहता हूँ। हे श्रीदेवी! मेरे घर से सब प्रकार के दारिद्रय और अमंगल को दूर करें।

टिप्पणी : "अलक्ष्मी को लक्ष्मी की बड़ी बहिन माना जाता है, क्योंकि समुद्र-मंथन के समय लक्ष्मी से पहले अलक्ष्मी उत्पन्न हुई थी। इसलिये अलक्ष्मी को ज्येष्ठा कहा जाता है। जहाँ लक्ष्मी तेज से प्रकाशित है, वहाँ अलक्ष्मी मल से मलिन है। भूख और प्यास उसके मल हैं।" — (भारतीय धर्म मीमांसा, वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. ७८)

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।९।।

जो गंधवाली हैं, जिसे कोई भी पराभव नहीं कर सकता, जो सदा अन्नादि से समृद्ध हैं, जो गौ आदि अनेक पशुओं से सम्पन्न हैं, जो सभी प्राणियों को नियम में रखने वाली हैं तथा जो सभी प्राणियों की आधार रूप भी हैं, ऐसी भू-रूपा श्री को मैं यहाँ, अपने घर में, आवाहित करता हूँ।

टिप्पणी : इस ऋचा में श्री का वर्णन भू-रूपा के रूप में किया गया है, क्योंकि भू यानि पृथ्वी ही सभी सम्पन्नता की दात्री है और इस प्रकार सभी प्राणियों की पालनहार है।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ।।१०।।

मन की कामनायें, संकल्प की सिद्धि एवं वाणी की सत्यता मुझे प्राप्त हों। गौ आदि पशुओं, भोग्य पदार्थों के रूप में विभिन्न अन्नों तथा यश के रूप में हे श्रीदेवी! हमारे यहाँ आगमन करें यानि हमें सभी प्रकार की सम्पत्ति एवं कीर्ति प्रदान कीजिये।

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ।।११।।

हे श्रीदेवी! आप कर्दम नामक पुत्र के कारण पुत्रवती हो। हे श्रीदेवी के पुत्र कर्दम! आप हमारे घर में प्रसन्नतापूर्वक निवास करें तथा कमलों की माला धारण करने वाली आपकी माता श्रीदेवी को हमारे कुल में निवास करवायें।

टिप्पणी : कर्दम और देवी लक्ष्मी की कथा श्रीमद् भागवत में है। कुछ विद्वानों ने कर्दम का अर्थ कीचड़ के स्थान पर मृतिका किया है। तदनुसार 'कर्दमेन प्रजाः भूताः मयि

संभव कर्दम' का अर्थ हुआ। मृतिका से सारे जीवों की उत्पत्ति हुई है। हे मृतिके! मेरे स्थान को सुफलित करो।

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।।१२।।

हे जल-देवता (आपः) स्नेहयुक्त पदार्थों को उत्पन्न करें; अर्थात् हमारे लिये लाभदायक कार्य करें। आप भी मेरे घर में वास कीजिये तथा आपकी माता श्रीदेवी को मेरे कुल में वास करवायें।

टिप्पणी : संभवतः सूक्तकार यहाँ लक्ष्मी के अतिरिक्त जल-देवता का आवाहन करना चाहता है, क्योंकि समुद्र-मंथन के समय समुद्र ने लक्ष्मी के अतिरिक्त अन्य तेरह रत्न यथा कौष्टुभ, पारिजात, ऐरावत आदि भी उत्पन्न किये थे। अतः प्रार्थी उस प्रसंग को दृष्टि में रखकर ऐसे मूल्यवान पदार्थों के प्राप्त करने की अभिलाषा से जल-देवता का भी आवाहन करता है।

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।।१३।।

हे अग्नि देव! आर्द्र स्वभाव वाली (जल में भीगी या उपासकों के लिये दयार्द्र हृदय वाली), पुष्टि-रूपा, पीत वर्णा, पद्मों की माला धारण करने वाली, चंद्रमा के समान शुभ्र कान्ति से युक्त, स्वर्णमयी लक्ष्मी देवी को मेरे यहाँ पधारने के लिये आवाहन करें।

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।।१४।।

हे अग्नि देव! जो दुष्टों का निग्रह करने वाली होकर भी कोमल स्वभाव की है, जो मंगलदायिनी है, जो अवलम्बन प्रदान करने वाली है, जो यष्टि रूपा है, जो सुंदर वर्ण वाली है, जो स्वर्ण-माला धारिणी है, जो सूर्य-स्वरूपा है तथा जो हिरण्यमयी है, ऐसी लक्ष्मी देवी को मेरे लिये आवाहित करें।

टिप्पणी : यः करिणीम् : यष्टि करिणीम् अर्थात् वह जिसके हाथ में दंड है। दंड सत्ता का प्रतीक है। यः करिणीम् का एक अर्थ यह भी हो सकता है — वह जो प्रयत्न करे। इस तरह यः करिणीम् यष्टिम् का अर्थ हुआ — वह जो सभी भौतिक गतिविधियों की सहारा उसी प्रकार है, जिस प्रकार से एक निर्बल एवं वृद्ध का सहारा लाठी होती है।

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ।।१५।।

हे अग्नि देव! कभी नष्ट न होने वाली ऐसी लक्ष्मी देवी को मेरे लिये आवाहित करें, जिनके पधारने से बहुत-सा धन, गौएँ,दासियाँ, अश्व और पुत्रादि हमें प्राप्त हों।

टिप्पणी : श्री सूक्त का यह अंतिम मंत्र है। जो कुछ पहले के मंत्रों में कहा गया है, इस मंत्र में उसका सार है। श्री लक्ष्मी की उपासना का उद्देश्य एवं उसकी प्राप्ति के साधक के संकल्प के साथ यह सूक्त समाप्त होता है।

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ।।१६।।

।। फलश्रुति ।।

जिसे श्रीदेवी की कामना हो, वह प्रतिदिन पवित्र और संयमशील होकर, अग्नि में घी की आहूतियाँ दे तथा पंद्रह ऋचाओं वाले श्री सूक्त का निरन्तर पाठ करे।

।। इति श्री सूक्त भावार्थ सहित ।।

●

श्री लक्ष्मी सूक्त (श्री सूक्त की वर्धित ऋचाएँ)

श्री सूक्त की मुख्य १६ ऋचाओं के बाद में इस सूक्त को बढ़ा दिया गया है और कुछ ग्रन्थों में ऋचाओं की संख्या २७ है, तो कुछ में २९। श्री सूक्त की इन बढ़ी हुई ऋचाओं के ११ या १३ के समूह को 'श्री लक्ष्मी सूक्त' भी कहते हैं।

पद्मासने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ।
विश्व प्रिये विष्णुमनोऽनुकूले त्व त्यादपद्मं मयि संनिधस्व ।।१।।

हे पद्म (कमल) के आसनवाली! हे पार्थिव तथा स्वर्गिक कमल-लता जैसे अंगों वाली! हे कमलप्रिये! हे कमल-पुष्प सम विशाल नेत्रों वाली! हे विश्व-प्रिये! हे भगवान विष्णु के मन के अनुकूल आचरण करने वाली देवी! अपने चरण-कमल मेरे सिर पर रखिये।

पद्मानने पद्मऊरु पद्माक्षि पद्मसंभवे।
त्वं मां भजस्व पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम् ।।२।।

हे पद्म (कमल) सम मुखवाली! हे पद्म सम जंघाओं वाली! हे पद्म सम आँखों वाली! हे कमल से उत्पन्न होने वाली! मेरी आप से प्रार्थना है कि मुझे सम्पन्नता देवें, जिससे मुझे सुख मिले।

अश्वदायि च गोदायि धनदायि महाधने!
धनं मे जुषतां देवि सर्व कामांश्च देहि मे ।।३।।

हे देवी! आप घोड़े, गौएँ एवं धन देने वाली देवी हैं। आप धन सम्पन्न करने वाली देवी हैं। आप हमें धन देकर हमारी सभी मनोकामनाओं को पूर्ण कीजिये।

पुत्र पौत्र धनं धान्यं हस्त्यश्वजावि गो रथम् ।
प्रजानां भवसि माता आयुष् मंतं करोतु माम् ।।४।।

अपने भक्तों को पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, हाथी-घोड़े, गाय-बैल एवं रथ आदि देने वाली हे जगन्माते! आप हमें दीर्घ आयुष्य प्रदान कीजिये।

धनमग्नि र्धनं वायु र्धनं सूर्यो धनं वसुः ।
धनमिन्द्रो बृहस्पति र्वरुणो धनमश्विनौ ।।५।।

धन अग्नि-स्वरूप है, धन वायु-स्वरूप है, धन वसु देवता-स्वरूप है, धन इन्द्र-स्वरूप है, धन बृहस्पति-स्वरूप है, धन वरुण-स्वरूप है एवं धन अश्विनी कुमारों के स्वरूप सम है।

टिप्पणी : इस श्लोक में धन के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है।

वेनतेय सोमं पिब सोमं पबितु वृत्रहा ।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्य ददातु सोमिनीं ।।६।।

हे गुरुड़! आप अमृत-सम सोम-पान कीजिये। हे इन्द्र! आप अमृत-सम सोमपान कीजिये और आप सोम अर्पण करने वाले भक्तों को सोम और धन दीजिये।

न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृत पुण्यानां भक्त्या श्रीसूक्त जपेत्सदा ।।७।।

श्री सूक्त का जप करने वाले पुण्यात्मा भक्त क्रोध, ईर्ष्या, लोभ आदि दुर्गुणों से मुक्त होते हैं। इन मनोविकारों से मुक्त होकर लक्ष्मी की प्राप्ति हो, यही देवी लक्ष्मी के पूजन का महत्त्व है।

सरसिज निलये सरोजहस्ते धवल तमांशुक गंधमाल्य शोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूति करि प्रसीद मह्यम् ।।८।।

हे कमल के उद्यान की निवासिनी! हे हाथ में कमल-पुष्प धारण करने वाली! हे श्वेत वस्त्र, श्वेत चंदन एवं श्वेत पुष्पों की माला से शोभित! हे तीनों लोकों को ऐश्वर्य, ऋद्धि-सिद्धि एवं सम्पन्नता दात्री! हे भगवती! हे विष्णु की प्रिय पत्नी! प्रत्येक भक्त पर कृपा करने वाली हे माता! मुझ पर प्रसन्न होइये।

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधव प्रियाम् ।
लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युत वल्लभाम् ।।९।।

हे भगवान विष्णु की पत्नी! हे क्षमाशीले! हे माधवप्रिये! हे विष्णुसखी! एवं हे अच्युत वल्लभा! हे लक्ष्मी देवी! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

ॐ महालक्ष्मीं च विद्महे विष्णु पत्नीं च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।।१०।।

हम महालक्ष्मी के स्वरूप को पहचानते हैं। हम विष्णु-पत्नी भगवती का ध्यान करते हैं। अतः हे लक्ष्मी देवी! हमारी बुद्धि को कल्याण के मार्ग पर प्रवृत कीजिये।

टिप्पणी : यह देवी लक्ष्मी का गायत्री मंत्र है।

आनंदः कर्दमः श्रीदश्चिक्लीत इति विश्रुता ।
ऋषयः श्रियः पुत्राश्च श्रीर्देवीर्देवता मताः ।।११।।

हे माता! आनन्द, कर्दम और ऐश्वर्य देने वाले चिक्लीत नामक सुप्रसिद्ध ऋषिगण आपके पुत्र हैं और हे लक्ष्मी मैया! आप साक्षात् देवता-स्वरूपा हो।

ऋणरोगादि दारिद्रिय पापक्षुदपमृत्यवः ।
भय शोक मनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ।।१२।।

हमारे ऋण, रोग, मन एवं शरीर की पीड़ा, दरिद्रता, पाप, विविध प्रकार की अकाल मृत्यु एवं हम पर आने वाले भय-शोक और संताप — ये सब हे माता! आपकी कृपा से नष्ट होवें, यही प्रार्थना है।

श्रीवर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधा च्छोभमानं महीयते ।
धान्यं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायु ।।१३।।

श्री, तेजस्विता, कान्ति, आयुष्य, आरोग्य, महा-प्राणत्व, बल, प्रतापी शरीर, मन की दृढ़ता, धन-धान्य, पशु, अनेक पुत्र-पौत्र आदि संताने और शतायु — ये सब हे माता! हमें प्रदान कीजिये।

।। इति श्री लक्ष्मी सूक्त भावार्थ सहित ।।

●

श्री सूक्त

हिन्दी में पद्यानुवाद : वैद्यराज कन्हैयालाल भेड़ा, मुंबई

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।।१।।

जो सुवर्ण-सी कान्तिमती हैं, दरिद्रता जन की हरतीं,
स्वर्ण-रजत की मालाओं को हैं सदैव धारण करतीं।
आह्लादिनी हिरण्मयी जो दिव्य छटाएँ छिटकायें,
वे लक्ष्मी हे अग्निरूप हरि मेरे घर-आँगन आयें।।१।।

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।।२।।

हे सर्वज्ञ हरे मेरे हित आप वही लक्ष्मी लायें,
जो सुस्थिर हो रहें, न तजकर और कहीं मुझको जायें।
जिनके होने पर मैं वाञ्छित कनक, रत्न, धन सब पाऊँ,
गौओं, अश्वों, भृत्य-बन्धुओं से भी पूजित हो जाऊँ।।२।।

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ।।३।।

अश्व जुरे जहँ अग्रिम भाग में वा रथ के बसि बीच जु राजैं,
जागृति-सी जग में जगि जाय मतंग-घटा जिनकी जब गाजै।
देवि दयामयी इन्दिरा को तेहि पास बुलावत हौं निज आजैं,
माँ सुत-ज्यौं अपनाइ सनेह सों मोहिं सदा मम गेह विराजैं।।३।।

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारा मार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम् ।।४।।

अकथ कहानी मन-बानी सों अतीत जाको मुख अरबिंद मंद-मंद मुसकावै है,
चहर-दिवारी जाके दुर्ग की सुवर्नमयी दीपति दयार्द्र तृप्त तृप्ति बरसावै है।
आसन लखात कमला को कमलासन पै कमल-वरन रूप-रासि सरसावै है,
आवै रमा सोइ ताहि सादर पुकारौं धरि - आस-बिसवास रास निकट बुलावै है।।४।।

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्ये ऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ।।५।।

चन्द से अधिक अमन्द द्युति देती मोद राशि से सुयश की प्रकाशित उदारा हैं,
लोक में ललामा अधिरामा इन्दिरा की सदा सेवा में निरत देवता हैं, देवदारा हैं।
लेता हूँ शरण उन पद्मा की जिन्होंने निज कर-अरविन्द में पयोज मंजु धारा है
सदन हमारे से अलक्ष्मी की अमा हो दूर वरणीय मेरा रमा-चरण तुम्हारा है।।५।।

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ।।६।।

रवि के समान छवि-पुञ्ज से भरी हे रमे तप से तुम्हारे वन्य पादप प्रकट हैं,
कमले तुम्हारे कर-कन्जसे प्रसूत हुआ सुन्दर सुरभि बिल्ववृक्ष अविकट है।
उस के सुफल उस माया का निरास करें अन्तर में वास करती जो सकपट है,
दूर करें त्यों ही उस दारुण दरिद्रता को बाहर जो रहती मचाये खट-पट है।।६।।

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ।।७।।

वे धन के अधिदेव रमे महादेव सदा मम पास पधारे,
काञ्चन आदि महामनि रत्न के साथ सुकीर्ति भी पाँव पसारे।
जन्म मिला मुझे मंजु महीतल में इस भारत राष्ट्र के प्यारे,
कीर्ति समृद्धि प्रदान करें धृति नेह धनाधिप गेह हमारे।।७।।

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ।।८।।

होता सदा उपवास जहाँ लगि भूख-पिआस की मैल जहाँ है,
नाश करूँ उस दीनता का भगिनी बड़ी जो कमला की यहाँ है।

वैभव-हीनता ऋद्धि-विहीनता का जो बड़ा हुआ दुःख महा है,
दूर करो सबको मम सद्म से पद्म-निवासिनी देर कहाँ है।।८।।

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम् ।।९।।

गन्ध-पुष्पहार उपहार द्वार इन्दिरा का भूत पराभूत कोई कर नहीं पाता है,
पूर्ण अन्न-धन से सदैव तुष्ट-पुष्ट रमा पशु-वृन्द-कूट-सा करीष का सुहाता है।
ईश्वरी चराचर समस्त भूत-प्राणियों की वैभव अपार पारावार-सा लखाता है,
श्री हैं वे ही राधिका हैं, सकल गुणाधिका हैं सेवक उन्हीं को यह निकट बुलाता है।।९।।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ।।१०।।

इन्दिरा आपके दिव्य प्रभाव से मैं मन की शुभ-कामना पाऊँ,
कल्पना चित्त की पूर्ण हो वाक् में सत्यता की अनुभूति कराऊँ।
दूध दही नवनीत सुरूप का लाभ सदा पशुओं के उठाऊँ,
अन्न के नाना प्रकार मिले सदा सम्पदा भूरि सुकीर्ति कमाऊँ।।१०।।

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ।।११।।

कर्दम हो कमला के सुपुत्र प्रज्ञा तुम से, तुम सन्निधि आओ,
वास करो नित मेरे निवास में और यहाँ रमा को भी बुलाओ।
पंकज-मालिका से परिमण्डित सिन्धुजा का शुभ दर्श कराओ,
देव सदा मम विस्तृत वंश में आप बसो जननी को बसाओ।।११।।

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।।१२।।

ए हो सुनो जल के शुभ-देवता स्निग्ध पदारथ यहाँ उपजाओ,
हे चिक्लीत रमा-सुत सुन्दर मेरे निकेतन में बस जाओ।
देवी दयामयी माता रमा यहाँ दर्शन दें, जिस भाँति बुलाओ,
और सदा उनका मम वंश - परम्परा में शुभ-वास कराओ।।१२।।

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।।१३।।

ए हो अग्निदेव आप ज्ञाता तीन काल के हैं प्रार्थना विनम्र, पद्मनाभ-संगवाली जो,
गज-शुण्ड-दण्ड में अवस्थित कलश-जल द्वारा हैं, नहाती आर्द्र-अंगवाली जो।
पुष्टि-दायिनी हैं पद्मामाला से अलंकृत हैं, स्वर्णमयी और रक्त-पीत रंगवाली जो,
लक्ष्मी को बुलाओ उन्हीं वास मन वास-हेतु चारु चन्द्रिका-सी दिव्य रंग-ढंग वाली जो।।१३।।

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।।१४।।

सज्जनों की रक्षा में निरत जो दयार्द्र सदा दुष्ट दृप्त दानवों को दण्ड दिया करतीं,
यष्टि के समान सृष्टि की जो अवलम्बनीय धारण सुवर्ण हेम-माला किया करतीं।
रवि के समान छबिशालिनी हिरण्मयी विश्व को प्रसू-सी पाल-पोष लिया करतीं,
माता लक्ष्मी को जातवेदा हे बुलाओ उन्हीं सेवकों को जो हैं सदा तोष दिया करतीं।।१४।।

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ।।१५।।

हे जातवेदा अग्नि मेरी प्रार्थना सुन लीजिये,
सुस्थिर रहे मम गेह जो लक्ष्मी मुझे वह दीजिये।
जिसके शुभागम पर कनक, बहु गाय, घोड़े आ सकें,
हम दास-दासी, बन्धु-बान्धव आदि सब कुछ पा सकें।।१५।।

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ।।१६।।

श्रीकाम नर नित शुद्ध, संयत घृत-हवन करता रहे।
श्रीसूक्त की पंद्रह ऋचाएँ भी सतत जपता रहे।।१६।।

।। इति श्री सूक्त हिन्दी पद्यानुवाद सहित ।।

ब्रह्म-वैवर्त पुराण में वर्णित

श्री सिद्धि-स्तोत्र

श्री नारायण के मुख से भगवती महालक्ष्मी की महिमा सुनने के पश्चात् जब श्री नारद ने उनसे पूछा कि देवराज इन्द्र ने भगवती महालक्ष्मी की स्तुति किस स्तोत्र से की, तब श्री नारायण ने 'सिद्धि-स्तोत्र' और उसकी फल-श्रुति को श्री नारद को बतलाया। देवराज इन्द्र ने 'सिद्धि-स्तोत्र' के द्वारा भगवती की स्तुति की थी, अतः इस स्तोत्र को 'इन्द्र कृत लक्ष्मी-स्तोत्र' भी कहते हैं। निम्नांकित २९ ऋचाओं के इस स्तोत्र को तीन समूहों में बांटा जा सकता है। मूल स्तोत्र की २२ (१-२२) समापन की ४ (२३-२६) तथा फल-श्रुति संबंधी ३ (२७-२९) ऋचाएँ हैं। स्तोत्र इस प्रकार है —

इन्द्र उवाच :

ॐ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः।
कृष्णप्रियायै सारायै पद्मायै च नमो नमः।।१।।

पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः।
पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः।।२।।

सर्वसंपत्स्वरूपायै सर्वदात्र्यै नमो नमः।
सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै नमो नमः।।३।।

हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः।
कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः।।४।।

कृष्णशोभास्वरूपायै रत्नाढ्यायै नमो नमः।
संपत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः।।५।।

सस्याधिष्ठातृदेव्यै च सस्यलक्ष्म्यै नमो नमः।
नमो बुद्धिस्वरूपायै बुद्धिदायै नमो नमः।।६।।

वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्लक्ष्मीः क्षीरोदसागरे।
स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये।।७।।

गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता।
सुरभिः सा गवां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी।।८।।

अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालये।
स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता।।९।।

त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुंधरा।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा।।१०।।

क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा च शुभानना।
परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा।।११।।

यया विना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम्।
जीवन्मृतं च विश्वं च शवतुल्यं यया विना।।१२।।

सर्वेषां च परा त्वं हि सर्वबान्धवरूपिणी।
यया विना न संभाष्यो बान्धवैर्बान्धवः सदा।।१३।।

त्वया हीनो बन्धुहीनस्त्वया युक्तः सबान्धवः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी।।१४।।

स्तनंधयानां त्वं माता शिशूनां शैशवे यथा।
तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वविश्वतः।।१५।।

त्यक्तस्तनो मातृहीनः स चेज्जीवति दैवतः।
त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्।१६।।

सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मे प्रसन्ना भवाम्बिके।
वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि।।१७।।

वयं यावत्त्वया हीना बन्धुहीनाश्च भिक्षुकाः।
सर्वसंपद्विहीनाश्च तावदेव हरिप्रिये।।१८।।

राज्यं देहि श्रियं देहि बलं देहि सुरेश्वरि।
कीर्तिं देहि धनं देहि पुत्रान्मह्यं च देहि वै।।१९।।

कामं देहि मतिं देहि भोगान्देहि हरिप्रिये।
ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्।।२०।।

सर्वाधिकारमेवं वै प्रभावं च प्रतापकम्।
जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च।।२१।।

इत्युक्त्वा तु महेन्द्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह।
ननाम साश्रुनेत्रोऽयं मूर्ध्ना चैव पुनः पुनः।।२२।।

ब्रह्मा च शङ्करश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः।
सर्वे चक्रुः परीहारं सुरार्थे च पुनः पुनः।।२३।।

देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम्।
केशवाय ददौ लक्ष्मीः संतुष्टा सुरसंसदि।।२४।।

ययुर्देवाश्चय संतुष्टाः स्वं स्वं स्थानं च नारद।
देवी ययौ हरेः क्रोडं हृष्टा क्षीरोदशायिनः।।२५।।

ययतुस्तौ स्वस्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद।
दत्त्वा शुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम्।।२६।।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
कुबेरतुल्यः स भवेद्राजराजेश्वरो महान्।।२७।।

सिद्धस्तोत्रं यदि पठेत्सोऽपि कल्पतरुर्नरः।
पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्।।२८।।

सिद्धं स्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं च संयतः।
महासुखी च राजेन्द्रो भविष्यति न संशयः।।२९।।

भावार्थ :

इन्द्र बोले — कमलवासिनी को नमस्कार है, नारायणी को बार-बार नमस्कार है। भगवान् कृष्ण की प्रिया तत्त्वस्वरूपा पद्मा को बार-बार नमस्कार है।।१।। कमल के पत्ते के समान नेत्रवाली और कमलमुखी को बार-बार नमस्कार है। कमलासनवाली तथा कमलनयनी वैष्णवी को बार-बार नमस्कार है।।२।। समस्त सम्पत्तिस्वरूप और सभी कुछ देने वाली को नमस्कार है। सुखप्रद, मोक्षदायिनी तथा सिद्धि देने वाली को बार-बार नमस्कार है।।३।। भगवान की भक्ति देने वाली एवं हर्षदायिनी को नमस्कार है। भगवान् कृष्ण के वक्षःस्थल पर रहने वाली एवं कृष्णस्वामिनी को नमस्कार है।।४।। भगवान् कृष्ण की शोभास्वरूप और रत्नभूषिता को नमस्कार है। सम्पत्ति की अधिष्ठात्री महादेवी को नमस्कार है।।५।। फूले-फले क्षेत्रों की अधिष्ठात्री देवी तथा सस्य-लक्ष्मी को नमस्कार है। बुद्धि स्वरूपवाली तथा बुद्धिदायिनी को नमस्कार है।६।। वैकुण्ठ में तुम महालक्ष्मी हो एवं क्षीरसागर में लक्ष्मी, इन्द्र के घर में स्वर्गलक्ष्मी, राजघरों में राजलक्ष्मी, गृहस्थों के घर में गृहलक्ष्मी, उनके घर की देवता, गौओं की माता सुरभि, यज्ञ-पत्नी दक्षिणा, देवमाता अदिति और कमलगृह में तुम कमला हो। तुम हवि प्रदान करते समय स्वाहा एवं कव्य दान में स्वधा हो।।७-९।। तुम ही विष्णुस्वरूप और समस्त की आधार वसुन्धरा हो। शुद्ध सत्त्ववाली तुम नारायणपरायण रहती हो। तुम क्रोध, हिंसा से रहित, वरदायिनी, शुभमुखी, परमार्थ देने वाली एवं हरिदास्य देने वाली सर्वश्रेष्ठ हो।।१०-११।। जिसके बिना समस्त संसार भस्मीभूत और सारहीन मालूम होता है तथा जिसके बिना यह समस्त विश्व जीवित रहते हुए भी मृतक एवं शव के समान हो जाता है।।१२।। वही तुम सब में श्रेष्ठ और समस्त बान्धव रूप हो। तुम्हारे बिना भाई-भाई में भी सदा बोल-चाल नहीं होती है।।१३।। एवं तुमसे हीन रहने पर (मनुष्य) बन्धुहीन और तुमसे युक्त रहने पर बन्धुओं से युक्त रहता है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की तुम कारण रूप हो।।१४।। शैशवावस्था में दूध पीने वाले बच्चों की माता की भाँति तुम सारे विश्व की सर्वदा माता हो।।१५।। क्योंकि माता का स्तन छूट जाये, मातृहीन हो जाये, तो भी कदाचित् दैवयोग से जीवित रह सकता है, किन्तु तुमसे रहित होकर कोई भी मनुष्य निश्चित ही जीवित नहीं रह सकता है।।१६।। अतः हे अम्बिके! अत्यन्त प्रसन्नस्वरूप होने के कारण तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। हे सनातनि! वैरियों के अधीन हुए मेरे विषयों (वस्तुओं) को मुझे पुनः दिलाने की कृपा करो।।१७।। हे हरिप्रिये! हम लोग जब तक तुमसे रहित हैं, तब तक बन्धुओं से भी हीन, भिक्षुक तथा

सभी सम्पत्तियों से हीन हैं।।१८।। अतः हे सुरेश्वरि! हमें राज्य समेत श्री और बल प्रदान करो। कीर्ति और धन समेत मुझे अनेक पुत्र भी प्रदान करो।।१९।। हे हरिप्रिये! हमारी कामनाएँ पूरी करो। हमें मति (बुद्धि) प्रदान करो। भोगों को दो तथा ज्ञान-धर्म के साथ अभिलषित समस्त सौभाग्य प्रदान करो।।२०।। इसी प्रकार समस्त अधिकार, प्रभाव, प्रताप, युद्ध में जय-पराक्रम और परमैश्वर्य हमें प्रदान करो।।२१।।

इतना कहकर महेन्द्र ने समस्त देवों समेत आँखों में आँसू भरे सिर से उन्हें बार-बार नमस्कार किया।।२२।। ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्मराज और केशव आदि सभी ने देवों के हितार्थ बार-बार अपराध क्षमा करने के लिए आग्रह किया।।२३।। उपरान्त उस देव के हितार्थ लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर देवताओं को वरदान और भगवान केशव को मनोहर पुष्पमाला प्रदान की।।२४।। हे नारद! अनन्तर देवता लोग उसी समय हर्षित होकर अपने-अपने स्थान को चले गये और उसी समय से देवी (लक्ष्मी) भी क्षीरसागरशायी भगवान् की गोद में सन्तुष्ट होकर निवास करने लगी।।२५।। हे नारद! ब्रह्मा और शिव भी देवों को प्रीतिपूर्वक शुभ आशिष प्रदान कर अपने-अपने स्थान को चले गये।।२६।।

जो मनुष्य महापुण्यस्वरूप इस स्तोत्र का पाठ तीनों संध्याओं में करेगा, वह कुबेर की भाँति महान् राजराजेश्वर होगा।।२७।। यदि वह पुरुष सिद्ध-स्तोत्र का पाठ करेगा, तो कल्पवृक्ष (की भाँति सर्वश्रेष्ठ) होगा। इसका पाँच लाख जप करने से मनुष्यों को स्तोत्र-सिद्धि हो जाती है।।२८।। यदि एक मास तक इस सिद्धि स्तोत्र का पाठ संयमपूर्वक करेगा तो वह महासुखी राजेन्द्र होगा, इसमें संशय नहीं।।२९।।

- ब्र. वै. पुराण, प्रकृति खंड, अ. ३९/५३-८१

।। इति श्री सिद्धि स्तोत्र भावार्थ सहित ।।

•

श्रीविष्णु पुराण में वर्णित

श्रीलक्ष्मी स्तोत्र

क्षीर-सागर के मंथन के समय जब विकसित कमल पर विराजमान श्रीलक्ष्मी देवी हाथों में कमल-पुष्प धारण किये प्रकट हुई, तब तीनों लोक श्री सम्पन्न हो गये तथा देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र ने स्वर्गलोक में जाकर फिर देव-राज्य पर अधिकार पाया और राजसिंहासन पर आरूढ़ हो पद्महस्ता श्रीलक्ष्मीजी की स्तुति की। जिस स्तोत्र से देवराज इन्द्र ने श्रीलक्ष्मीजी की स्तुति की, वह इस प्रकार है। यह स्तोत्र सभी सिद्धियों को देने वाला माना जाता है।

इन्द्र उवाच :

नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्जसम्भवाम्।
श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थिताम् ।।१।।

पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम्।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम् ।।२।।

त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनी।
सन्ध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ।।३।।

यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने ।
आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी ।।४।।

आन्वीक्षिकी त्रयीवार्त्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च ।
सौम्यासौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयैत्तद्देवि पूरितम् ।।५।।

का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः ।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः ॥६॥

त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम् ।
विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानीं समेधितम् ॥७॥

दाराः पुत्रास्तथागारसुहृद्धान्यधनादिकम् ।
भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम् ॥८॥

शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम् ।
देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम् ॥९॥

त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम् ॥१०॥

मा नः कोशं तथा गोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम् ।
मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि ॥११॥

मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गं मा पशून्मा विभूषणम् ।
त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षः-स्थलालये ॥१२॥

सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः ।
त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले ॥१३॥

त्वया विलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः ।
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥१४॥

श श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान ।
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः ॥१५॥

सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः ।
पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ॥१६॥

न ते वर्णयितुं शक्ता गुणाञ्जिह्वापि वेधसः ।
प्रसीद देवि पद्माक्षि मास्मांस्त्याक्षीः कदाचन ॥१७॥

भावार्थ :

इन्द्र बोले — सम्पूर्ण लोकों की जननी, विकसित कमल के सदृश नेत्रों वाली, भगवान विष्णु के वक्षःस्थल में विराजमान कमलोद्भवा श्रीलक्ष्मी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ।।१।।

कमल ही जिनका निवास स्थान है, कमल ही जिनके कर-कमलों में सुशोभित है तथा कमल-दल के समान ही जिनके नेत्र हैं, उन कमलमुखी कमलनाभ-प्रिया श्रीकमला देवी की मैं वन्दना करता हूँ।।२।।

हे देवि! तुम सिद्धि हो, स्वधा हो, स्वाहा हो, सुधा हो और त्रिलोकी को पवित्र करने वाली हो तथा तुम ही सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, विभूति, मेधा, श्रद्धा और सरस्वती हो।।३।।

हे शोभने! यज्ञ-विद्या (कर्म-काण्ड), महाविद्या (उपासना) और गुह्यविद्या (इन्द्रजाल) तुम्हीं हो तथा हे देवि! तुम्हीं मुक्ति-फल-दायिनी आत्मविद्या हो।।४।।

हे देवि! आन्वीक्षिकी (तर्क-विद्या), वेदत्रयी, वार्ता (शिल्पवाणिज्यादि) और दण्डनीति (राजनीति) भी तुम्हीं हो। तुम्हीं ने अपने शान्त और उग्र रूपों से यह समस्त संसार व्याप्त किया हुआ है।।५।।

हे देवि! तुम्हारे बिना और ऐसी कौन स्त्री है, जो देवदेव भगवान् गदाधर के योगिजन-चिन्तित सर्वयज्ञमय शरीर का आश्रय पा सके।।६।।

हे देवि! तुम्हारे छोड़ देने पर सम्पूर्ण त्रिलोकी नष्टप्राय हो गयी थी; अब तुम्हीं ने उसे पुनः जीवन-दान दिया है।।७।।

हे महाभागे! स्त्री, पुत्र, गृह, धन, धान्य तथा सुहृद् ये सब सदा तुम्हारे ही दृष्टिपात से मनुष्यों को मिलते हैं।।८।।

हे देवि! तुम्हारी कृपा-दृष्टि के पात्र पुरुषों के लिये शारीरिक आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रु-पक्ष का नाश और सुख आदि कुछ भी दुर्लभ नहीं है।।९।।

तुम सम्पूर्ण लोकों की माता हो और देवदेव भगवान हरि पिता हैं। हे मातः! तुमसे और श्रीविष्णु भगवान से यह सकल चराचर जगत व्याप्त है।।१०।।

हे सर्वपावनि मातेश्वरि! हमारे कोश (खजाना), गोष्ठ (पशु-शाला), गृह, भोग-सामग्री, शरीर और स्त्री आदि को तुम कभी न त्यागो अर्थात् इनमें भरपूर रहें।।११।।

अयि विष्णु वक्षःस्थल निवासिनि! हमारे पुत्र, सुहृद, पशु और भूषण आदि को तुम कभी न छोड़ो।।१२।।

हे अमले! जिन मनुष्यों को तुम छोड़ देती हो, उन्हें सत्त्व (मानसिक बल), सत्य, शौच और शील आदि गुण भी शीघ्र ही त्याग देते हैं।।१३।।

और तुम्हारी कृपा-दृष्टि होने पर तो गुणहीन पुरुष भी शीघ्र ही शील आदि सम्पूर्ण गुण और कुलीनता तथा ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न हो जाते हैं।।१४।।

हे देवि! जिस पर तुम्हारी कृपा-दृष्टि है वही प्रशंसनीय है, वही गुणी है, वही धन्य-भाग्य है, वही कुलीन और बुद्धिमान है तथा वही शूरवीर और पराक्रमी है।।१५।।

हे विष्णु-प्रिये! हे जगज्जननि! तुम जिससे विमुख हो उसके तो शील आदि सभी गुण तुरन्त अवगुण रूप हो जाते हैं।।१६।।

हे देवि! तुम्हारे गुणों का वर्णन करने में तो श्री ब्रह्माजी की रसना भी समर्थ नहीं है। अतः हे कमलनयने! अब मुझ पर प्रसन्न हो और मुझे कभी न छोड़ो।।१७।।

- श्रीविष्णु पुराण, १/९/११७-१३३

टिप्पणी : विष्णु पुराण के उक्त स्तोत्र जैसा ही स्तोत्र अग्नि पुराण के अ. २३७ में वर्णित है। इस पुराण में इस स्तोत्र की महिमा एवं फलश्रुति बतलाते हुए कहा गया है कि जो व्यक्ति इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है (स्वस्तोत्र पाठ श्रवण कतृणं भुक्ति मुक्तिदम्। श्री स्तोत्रं सततं तस्मात् पठेच्च शृणुयान्नरः।। - २३७/१९)।

।। इति श्रीलक्ष्मी स्तोत्र भावार्थ सहित ।।

●

श्री लक्ष्मी स्तोत्र

जब मुनिवर अगस्तजी गोदावरी के रमणीय तट पर विचरते हुए, पत्नी लोपामुद्रा सहित कोल्हापुर वासिनी महालक्ष्मी के समीप गये, उन्होंने महालक्ष्मी की स्तुति इस प्रकार की। वे बोले —

अगस्ति उवाच —

मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि,
श्री विष्णु हृत्कमलवासिनी विश्वमातः।
क्षीरोदजे कमल कोमलगर्भ गौरि,
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये।।१।।

त्वं श्रीरूपेन्द्र सदने मदनैकमात
ज्योंत्स्नासि चन्द्रमसि चन्द्रमनो हरास्ये।
सूर्ये प्रभासि च जगत् त्रियते प्रभासि,
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये।।२।।

त्वं जातवेदसि सदा दहनांत्मशक्ति
र्वेधास्त्वया जगदिदं विविधं विदध्यात्।
विश्वम्भरोऽपि बिभृयादखिलं भवत्या,
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये।।३।।

त्वत्त्यक्तमेतदमभलै हरते हरोऽपि,
त्वं पासि हंसि बिदधासि परावरासि।

ईड्यो बभूव हरिरण्यमले त्वदाप्त्या,
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये।।४।।

शूरः स एव स गुणी स बुधः स धन्यो,
मान्यः स एव कुलशीलकला कलायैः।
एकः शुचिः स हि पुमान् सकलेऽपि लोके,
यत्रापतेत्तव शुभे करुणा कटाक्षः।।५।।

यस्मिन्वसेः क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे
स्त्रैणे तृने सरसिदेवकुले गृहेऽन्ने।
रत्ने पतत्रिणि पशौ शयने धराया सश्रीकमेव
सकले तदिहास्ति नान्यत्।।६।।

त्वत् स्पृष्टमेव सकलं शुचितां लभेत
त्वत्त्यक्तेमेव सकलं त्वशुचीह लक्ष्मि।
त्वन्नाम यत्र च सुमंगलमेव तत्र
श्री विष्णु पत्नि कमले कमलालयेऽपि।।७।।

लक्ष्मीं श्रीयं च कमलां कमलालयां च. पद्मा रमां
नलिनयुग्मकरांच मां च।
क्षीरोदजाममृत कुम्भकरामिरां च,
विष्णुप्रियामिति सदा जपतां क दुःखम्।।८।।

- स्कंद पुराण, काशी खंड पूर्वार्ध, ५/८०-८७

भावार्थ :

कमल के समान विशाल नेत्रों वाली माता कमले! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप भगवान विष्णु के हृदय-कमल में निवास करने वाली तथा सम्पूर्ण विश्व की जननी हैं। कमल के कोमल गर्भ के सदृश गौर वर्ण वाली क्षीर-सागर की पुत्री महालक्ष्मी! आप अपनी शरण में आये हुये प्रणतजनों का पालन करने वाली हैं। आप सदा मुझ पर प्रसन्न हों। मदन की एकमात्र जननी रुक्मिणी रूप धारिणी लक्ष्मी! आप भगवान विष्णु के वैकुंठधाम में 'श्री' नाम से प्रसिद्ध हैं। चन्द्रमा के समान मनोहर मुख वाली देवी! आप ही चन्द्रमा में चाँदनी हैं, सूर्य में प्रभा हैं और तीनों लोकों में आप ही प्रभासित होती

हैं। प्रणतजनों को आश्रय देने वाली माता लक्ष्मी! आप सदा मुझ पर प्रसन्न हों। आप ही अग्नि में दाहिका शक्ति हैं। ब्रह्माजी आपकी ही सहायता से विविध प्रकार के जगत् की रचना करते हैं। सम्पूर्ण विश्व का भरण-पोषण करने वाले भगवान विष्णु भी आप के ही भरोसे सब का पालन करते हैं। शरण में आकर चरण में मस्तक झुकाने वाले पुरुषों की निरन्तर रक्षा करने वाली माता महालक्ष्मी! आप मुझ पर प्रसन्न हों। निर्मल स्वरूप वाली देवी! जिनको आपने त्याग दिया है, उन्हीं का भगवान रुद्र संहार करते हैं। वास्तव में आप ही जगत् का संहार, पालन और सृष्टि करने वाली हैं। आप ही कार्य-कारण रूप जगत् हैं। निर्मल स्वरूपा लक्ष्मी! आपको प्राप्त करके ही भगवान श्रीहरि सबके पूज्य बन गये। माँ! आप प्रणत जनों का सदैव पालन करने वाली हैं। मुझ पर प्रसन्न हों। शुभे! जिस पुरुष पर आपका करुणापूर्ण कटाक्षपात होता है, संसार में एकमात्र वही शूरवीर, गुणवान, विद्वान, धन्य, मान्य, कुलीन, शीलवान, अनेक कलाओं का ज्ञाता एवं परम पवित्र माना जाता है। देवी! आप जिस किसी पुरुष, हाथी, घोड़ा, नपुंसक, तिनका, सरोवर, देव मंदिर, गृह, अन्न, रत्न, पशु-पक्षी, शय्या और भूमि में क्षण भर भी निवास करती हैं, समस्त संसार में केवल वही शोभा सम्पन्न होता है, दूसरा नहीं। हे श्री विष्णु पत्नी! हे कमले! हे कमलालये! हे माता लक्ष्मी! आपने जिसका स्पर्श किया है, वह पवित्र हो जाता है और आपने जिसे त्याग दिया है, वही सब इस जगत में अपवित्र हैं। जहाँ आपका नाम है, वहीं उत्तम मंगल है। जो लक्ष्मी, श्री, कमला, कमलालय, पद्मा, रमा, नलिनयुग्मकरा (दोनों हाथों में कमल धारण करने वाली) माँ, क्षीरोदजा, अमृतकुंभकरा (हाथों में अमृत का कलश धारण करने वाली), इरा और विष्णुप्रिया — इन नामों का सदा जप करते हैं, उनके लिये कहाँ दुःख है?

।। इति श्री लक्ष्मी स्तोत्र भावार्थ सहित ।।

●

श्रीलक्ष्मी स्तोत्र

नारायण उवाच :

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि न क्षमाः स्तोतुमीश्वराः।
बुद्धेरगोचरां सूक्ष्मां तेजोरूपां सनातनीम् -
अत्यनिर्वचनीयां च को वा निर्वक्तुमीश्वरः।।१।।

स्वेच्छामयीं निराकारां भक्तानुग्रहविग्रहाम्।
स्तौमि वाङ्मनसोः पारां किंवाऽहं जगदम्बिके।।२।।

परां चतुर्णां वेदानां पारबीजं भवार्णवे।
सर्वस्याधिदेवीं च सर्वासामपि संपदाम्।।३।।

योगिनां चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनां तथा।
वेदानां वै वेदविदां जननीं वर्णयामि किम्।।४।।

यया विना जगत्सर्वमबीजं निष्फलं ध्रुवम्।
यथा स्तनंधयानां च विना मात्रा सुखं भवेत्।।५।।

प्रसीद जगतां माता रक्षास्मानतिकातरान्।
वयं त्वच्चरणाम्भोजे प्रपन्नाः शरणं गताः।।६।।

नमः शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः।
ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः।।७।।

हरिभक्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः।
सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्म्यै नमो नमः।।८।।

कुपुत्राः कुत्रचित्सन्ति न कुत्रापि कुमातरः।
कुत्र माता पुत्रदोषं तं विहाय च गच्छति।।९।।

स्तनंधयेभ्य इव मे हे मातर्देहि दर्शनम्।
कृपां कुरु कृपासिन्धो त्वमस्मान्भक्तवत्सले।।१०।।

इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम्।
सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं संपदः प्रदम्।।११।।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत्।
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन।।१२।।

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तं च तत्रैवान्तरधीयत।
देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्धं तदाज्ञया।।१३।।

भावार्थ :

नारायण बोले — हे देवि! मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ, यद्यपि ईश्वर भी तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि तुम बुद्धि से अगोचर, सूक्ष्म, तेजोरूप, सनातनी और अत्यंत अनिवर्चनीय हो, अतः तुम्हारी निरुक्ति कौन कर सकता है? ।।१।। किन्तु हे जगदम्बिके! स्वेच्छामयी, निराकार, भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाली और वाणी-मन से परे तुम्हारी स्तुति मैं क्या कर सकता हूँ? चारों वेदों से परे, संसार सागर को पार करने की एकमात्र कारण, सभी प्रकार के सस्यों और समस्त सम्पदाओं की अधीश्वरी, योगी, योग, ज्ञान, ज्ञानी, वेद और वेदवेत्ताओं की तुम जननी हो, तुम्हारा मैं क्या वर्णन करूँ?।।२-४।। क्योंकि जिसके बिना सारा जगत् निर्बीज एवं निष्फल रहता है, जैसे बिना माता के दुधमुंहे बच्चों को सुख नहीं मिलता है।।५।। तुम जगत् की माता हो, प्रसन्न हो जाओ, हम कातरों की रक्षा करो, हम लोग तुम्हारे चरण-कमल के शरणागत हैं।।६।। शक्तिस्वरूप जगन्माता को बार-बार नमस्कार है, ज्ञान देने वाली, बुद्धि देने वाली और सब कुछ देने वाली को नमस्कार है।।७।। भगवान् की भक्ति देने वाली, मुक्ति देने वाली को नमस्कार है। सर्वज्ञान रखने वाली एवं सब कुछ देने वाली महालक्ष्मी को बार-बार नमस्कार है।।८।। कुपुत्र कहीं है भी, किन्तु कुमाता कहीं

नहीं होती हैं और क्या अपराधी पुत्र को छोड़कर माता कहीं चली जाती है?।।९।। अतः हे मातः! दुधमुँहे बच्चे की भाँति मुझे भी तुम दर्शन देने की कृपा करो। हे कृपा-सिन्धो! हे भक्तवत्सले! तुम हम पर कृपा करो।।१०।।

हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें पद्मा का शुभावह स्तोत्र बता दिया, जो सुखप्रद, मोक्षदायक सार-रूप, शुभप्रद और सम्पत्तिदायक है।।११।। इस प्रकार इस महापुण्य स्तोत्र का जो पूजाकाल में पाठ करता है, उसके घर को महालक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती है।।१२।। इतना कहकर श्री भगवान् उसी स्थान पर अन्तर्निहित हो गये और उनकी आज्ञा से इन्द्रदेव भी देवों के साथ क्षीरसागर चले गये।।१३।।

- ब्रह्म वैवर्त पुराण, गणपति खंड, अ. २२

।। इति भावार्थ सहित श्री लक्ष्मी स्तोत्र ।।

●

देवकृतं लक्ष्मीस्तोत्रम्

देवा ऊचुः

क्षमस्व भगवत्यम्ब क्षमाशीले परात्परे ।
शुद्धसत्त्वस्वरूपे च कोपादिपरिवर्जिते ॥१॥

उपमे सर्वसाध्वीनां देवानां देवपूजिते ।
त्वया विना जगत्सर्वं मृततुल्यं च निष्फलम् ॥२॥

सर्वसम्पत्स्वरूपा त्वं सर्वेषां सर्वरूपिणी ।
रासेश्वर्यधिदेवी त्वं त्वत्कलाः सर्वयोषितः ॥३॥

कैलासे पार्वती त्वं च क्षीरोदे सिन्धुकन्यका ।
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं मर्त्यलक्ष्मीश्च भूतले ॥४॥

वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्देवदेवी सरस्वती ।
गङ्गा च तुलसी त्वं च सावित्री ब्रह्मलोकतः ॥५॥

कृष्णप्राणाधिदेवी त्वं गोलोके राधिका स्वयम् ।
रासे रासेश्वरी त्वं च वृन्दा वृन्दावने वने ॥६॥

कृष्णप्रिया त्वं भाण्डीरे चन्द्रा चन्दनकानने ।
विरजा चम्पकवने शतशृङ्गे च सुन्दरी ॥७॥

पद्मावती पद्मवने मालती मालतीवने ।
कुन्ददन्ती कुन्दवने सुशीला केतकीवने ॥८॥

कदम्बमाला त्वं देवि कदम्बकाननेऽपि च ।
राजलक्ष्मी राजगेहे गृहलक्ष्मीर्गगृहे गृहे ।।९।।

इत्युक्त्वा देवताः सर्वे मुनयो मनवस्तथा।
रुरुदुर्नम्रवदनाः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ।।१०।।

इति लक्ष्मीस्तवं पुण्यं सर्वदेवैः कृतं शुभम् ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स वै सर्वे लभेद् ध्रुवम् ।।११।।

अभार्यो लभते भार्यां विनीतां च सुतां सतीम् ।
सुशीलां सुन्दरीं रम्यामतिसुप्रियवादिनीम् ।।१२।।

पुत्रपौत्रवतीं शुद्धां कुलजां कोमलां वराम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं वैष्णवं चिरजीविनम् ।।१३।।

परमैश्वर्ययुक्तं च विद्यावन्तं यशस्विनम् ।
भ्रष्टराज्यो लभेद् राज्यं भ्रष्टश्रीर्लभते श्रियम् ।।१४।।

हतबन्धुर्लभेद् बन्धुं धनभ्रष्टो धनं लभेत् ।
कीर्तिहीनो लभेत् कीर्तिं प्रतिष्ठां च लभेद् ध्रुवम् ।।१५।।

सर्वमङ्गलदं स्तोत्रं शोकसंतापनाशनम् ।
हर्षानन्दकरं शश्वद्धर्ममोक्षसुहृत्प्रदम् ।।१६।।

- ब्रह्म वैवर्त पुराण, श्रीकृष्णजन्म खण्ड, ५६/७६-९१

भावार्थ :

देववृन्द बोले — हे क्षमाशीले! अम्ब! भगवति! हे परात्परे! शुद्धसत्त्वस्वरूप वाली! क्रोध आदि से शून्य! क्षमा करो ।।१।। हे समस्त पतिव्रता देवियों की उपमा स्वरूप! हे देवपूजिते! तुम्हारे बिना यह समस्त जगत् मृततुल्य एवं निष्फल है ।।२।। तुम समस्त सम्पत्स्वरूपा हो, सभी प्राणियों के सर्वरूप हो, तुम्हीं रासेश्वरी और अधष्ठित्री देवी हो और (संसार की) समस्त स्त्रियाँ तुम्हारी कला हैं ।।३।। तुम कैलाश में पार्वती, क्षीरसागर में सिन्धुपुत्री (महालक्ष्मी), स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी एवं भूतल पर मर्त्य-लक्ष्मी हो ।।४।। उसी भाँति वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, देवदेवी, सरस्वती, गंगा, तुलसी और ब्रह्मलोक की सावित्री देवी हो ।।५।। तुम गोलोक में भगवान कृष्ण के प्राणों की

अधीश्वरी राधा हो, रास में स्वयं रासेश्वरी और वृन्दावन की वृन्दा हो ।।६।। तुम भाण्डीरवन में कृष्णप्रिया, चन्दनवन में चन्द्रा, चम्पकवन में विरजा और शतशृङ्ग (सौ शिखर वाले पर्वत) की सुन्दरी हो ।।७।। तुम पद्मावन की पद्मावती, मालती वन की मालती, कुन्दनवन की कुन्ददन्ती (कुन्द पुष्प के समान दाँतों वाली) एवं केतकी-वन की सुशीला हो ।।८।। कदम्बवन की तुम कदम्बमाला देवी हो, राजघर की राजलक्ष्मी और घर-घर की गृहलक्ष्मी स्वरूप हो ।।९।। इतना कहकर सभी देववृन्द, मुनिगण और मनु लोग नीचे मुख करके रोदन करने लगे, जिनके कण्ठ, ओंठ और तालु सूखे हुए थे ।।१०।। इस प्रकार समस्त देवकृत इस पुण्य एवं शुभ लक्ष्मी-स्तोत्र को जो प्रातःकाल उठकर पढ़ता है, उसे निश्चित ही सब कुछ प्राप्त होता है ।।११।। स्त्री रहित को विनीता, पतिव्रता, सुशीला, सुन्दरी, रम्या, अति मधुर बोलने वाली, पुत्र-पौत्र-सम्पन्न, शुद्धकुलीना एवं अति कोमलाङ्गी स्त्री की प्राप्ति होती है। पुत्रहीन को वैष्णव, चिरजीवी परम ऐश्वर्य सम्पन्न, विद्यावान एवं यशस्वी पुत्र प्राप्त होता है। राज्यच्युत को पुनः राज्यप्राप्ति, भ्रष्टश्री को श्री की प्राप्ति, नष्ट बन्धु को बन्धु की प्राप्ति, धनहीन को धन और कीर्ति रहित को कीर्ति समेत प्रतिष्ठा की निश्चित प्राप्ति होती है ।।१२-१५।। इस प्रकार यह स्तोत्र सम्पूर्ण मङ्गलदायक, शोखसंतापक-नाशक, हर्ष-आनंदकारी और निरन्तर धर्म, मोक्ष एवं मित्र प्रदान करने वाला है ।।१६।।

।। इति भावार्थ सहित स्तोत्र ।।

●

श्री महालक्ष्मी स्तोत्र

जय पद्मपलाशाक्षि जय त्वं श्रीपतिप्रिये।
जय मातर्महालक्ष्मी संसारार्णवतारिणी ॥१॥

महालक्ष्मी नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं सुरेश्वरि।
हरिप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं दयानिधे ॥२॥

पद्मालये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं च सर्वदे।
सर्व भूतहितार्थाय वसुवृष्टिं सदा कुरु ॥३॥

जगन्मातर्नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं दयानिधे।
दयावति नमस्तुभ्यं विश्वेश्वरि नमोऽस्तुते ॥४॥

नमः क्षीरार्णवसुते नमस्त्रैलोक्य धारिणि।
वसुवृष्टे नमस्तुभ्यं रक्ष मां शरणागतम् ॥५॥

रक्षत्वं देवदेवेशि देवदेवस्य वल्लभे।
दारिधात्राहि मां लक्ष्मी कृपां कुरु ममोपरि ॥६॥

नमस्त्रैलोक्य जननी नमस्त्रैलोक्य पावनि।
ब्रह्मादयो नमन्ति त्वां जगदानन्ददायिनि ॥७॥

विष्णुप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं जगद्धिते।
आर्तिहन्त्रि नमस्तुभ्यं समृद्धिं कुरु मे सदा ॥८॥

अब्जवासे नमस्तुभ्यं चपलायै नमोनमः ।
चंचलायै नमस्तुभ्यं ललितायै नमोनमः ॥९॥

नमः प्रद्युम्न जननि मातस्तुभ्यं नमोनमः ।
परिपालय मां मातर्देवि त्वं शरणागतम् ॥१०॥

शरण्ये त्वां प्रपन्नोऽस्मि कमले कमलालये ।
त्राहि त्राहि महालक्ष्मी परित्राणपरायणे ॥११॥

पाण्डित्यं शोभते नैव न शोभन्ते गुणा नरे ।
शीलित्वं नैव शोभेत महालक्ष्मी त्वया विना ॥१२॥

तावद्विराजतै रूपं तावच्छीलं विराजते ।
तावदगुणा नराणां च यावल्लक्ष्मीः प्रसीदति ॥१३॥

लक्ष्मि त्वयाऽलंकृत मानवा ये पापैर्विमुक्ता नृपलोक मान्याः।
गुणैर्विहीना गुणिनो भवन्ति दुःशीलिनः शीलवंता वरिष्ठाः ॥१४॥

लक्ष्मीभूषयते रूपं लक्ष्मीर्भूषयते कुलम् ।
लक्ष्मीर्भूषयतेविद्यां सर्वालक्ष्मीर्विशिष्यते ॥१५॥

लक्ष्मीत्वद्गुण कीर्तनेन सकला भूर्यात्यल जिह्यतां ।
द्राद्या रविचन्द्रदेवपतयो वकतुं च नैव क्षमाः ।
अस्माभस्तव रुप लक्षण गुणान् वकतुं कथं शक्यते।
मातर्मा परिपाहि विश्व जनके कृत्वा ममेष्ट ध्रुवम् ॥१६॥

दीनार्तिभीतं भवपात पीडितं धनैर्विहीन तवपार्श्वमागतम् ।
कृपानिधि त्वान्मम लक्ष्मी सत्वरं धनप्रदानाद्ध ननायकं कुरु ॥१७॥

मां विलोक्य जननी हरिप्रिये निर्धनं तव समीपमागतम ।
देहि मे झटिति लक्ष्मीः कराग्रं वस्त्रकांचनवरान्न मद्भुतम् ॥१८॥

त्वमेव जननि लक्ष्मीः पिता लक्ष्मीस्तवमेव च।
भ्राता त्वं च सखा लक्ष्मीविद्यालक्ष्मीस्त्वमेव च ॥१९॥

त्राहि त्राहि महालक्ष्मी त्राहि त्राहि सुरेश्वरि ।
त्राहि त्राहि जगन्मातर्दारिधात्राहि वेगत ॥२०॥

नमस्तुभ्यं जगद्धात्रि नमस्तुभ्यं नमोनमः ।
धर्माधारे नमस्तुभ्यं नमः सम्पत्तिदायिनी ॥२१॥

दारिद्रयार्णवमग्नोऽहं निग्रोऽहं रसातले।
मजजन्तंमां करे धृतवा तूद्धर त्वं रमे द्रुतम् ॥२२॥

किं लक्ष्मि बहु नोकेतन जल्पितेन पुनः पुनः।
अन्यथा शरण नास्ति सत्यं सत्यं हरिप्रिये ॥२३॥

ऐतच्छ्रत्वाऽगस्तिवाक्यं हृष्यमाणा हरिप्रिया ।
उवाच मधुरां वाणी तुष्टाऽहं तव सर्वदा ॥२४॥

॥ लक्ष्मी उवाच ॥

यत्वयोक्तमिदं स्तोत्रं यः पठिष्यति मानवः।
श्रुणोति च महाभागस्तस्याहं वंशवर्तिनी ॥२५॥

नित्यं पठति यो भक्त्यात्वलक्ष्मीस्तस्य नश्यति ।
ऋणं च नश्यत तीव्रं वियोगं नैव पश्यति ॥२६॥

यः पठेत्प्रातरुत्थाय श्रद्धा भक्ति समन्वितः ।
गृहे तस्य सदा तुष्टा नित्यं श्रीः पतिना सह ॥२७॥

सुखसौभाग्य संपन्नौ मनस्यो बुद्धिमान् भवेत् ।
पुत्रवान् गुणवान श्रेष्ठोभोगभाक्ता च मानवः ॥२८॥

इदस्तोत्रं महापुण्यं लक्ष्म्यागस्ति प्रकीर्ति नम् ।
विष्णुप्रसाद जननं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥२९॥

राजद्वारे जयश्चैव शत्रोश्चैव पराजयः ।
भूतप्रेत पिशाच्चानां व्याधाणां न भयं तथा ॥३०॥

न शस्त्रानलतोयौधाद्द भयं तस्य प्रजायते ।
दुर्वृत्तानां च पापानां बहुहानिकरं परम् ॥३१॥

मन्दुराकरिशालासु गवां गोष्ठे समाहितः ।
पठेत्तद्रोषशांत्यर्थे महापातक नाशनम् ॥३२॥

सर्वसौख्यकरं नृणामायुरारोग्यदं तथा।
अगस्तिमुनिनाप्रोक्तं प्रजानां हितकाम्यय ॥३३॥

भावार्थ :

हे कमल-पत्रों के समान विशाल नेत्रों वाली तथा विष्णु भगवान् की प्रियतमा लक्ष्मी आपकी जय हो। हे संसार-सागर से पार उतारने वाली महालक्ष्मी माता आपकी जय हो ॥१॥

हे महालक्ष्मी! आपको नमस्कार है। हे देवताओं की स्वामिनी! आपको नमस्कार है। हे विष्णु की प्रिया तथा दया की सागर माता आपको पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ॥२॥

हे पद्मों में निवास करने वाली आपको नमस्कार है। हे सब कुछ देने वाली आपको नमस्कार है। आप सभी प्राणियों की भलाई के लिए सदा ही धन की वर्षा करती रहें ॥३॥

हे संसार की माता आपको नमस्कार है। हे दया की सागर आपको नमस्कार है। हे दयावती आपको नमस्कार है तथा हे संसार की स्वामिनी आपको नमस्कार है ॥४॥

हे क्षीरसागर की पुत्री आपको नमस्कार है। हे तीनों लोकों को धारण करने वाली माता आपको नमस्कार है। हे धन की वर्षा करने वाली आपको नमस्कार है। आप मुझ शरणागत की रक्षा करें ॥५॥

हे देवों के देव की स्वामिनी आप हमारी रक्षा करें। हे देवों के देव की परमप्रिया आप हमारी रक्षा करें। हे देवी! मेरे ऊपर कृपा करें और दरिद्रता से मेरी रक्षा करें ॥६॥

हे तीनों लोकों की जननी! तीनों लोकों को पवित्र करने वाली माता! आपको पुनः पुनः नमस्कार है। हे संसार को आनंद प्रदान करने वाली माता! ब्रह्मा आदि सभी देव आपको नमस्कार करते हैं ॥७॥

हे विष्णु की प्रिया! हे जगत् के हित में लगी रहने वाली माता! सभी पीड़ाओं को हरने वाली हे माता आपको नमस्कार है। आप मेरी सदा समृद्धि करें ॥८॥

हे कमल पर निवास करने वाली! हे चपला! हे चंचला! हे ललिता! आपको मेरा नमस्कार है ॥९॥

हे प्रद्युम्न की जननी लक्ष्मी माता! आपको पुनः पुनः नमस्कार है। हे लक्ष्मी देवी! आप मुझ शरणागत की रक्षा करें ॥१०॥

हे कमल के आसन पर विराजमान कमला! आप शरण देने वाली हो और मैं आपकी शरण में आया हूँ। हे सभी की रक्षा में लगी रहने वाली माता महालक्ष्मी! मेरी रक्षा करें। मेरी रक्षा करें ॥११॥

हे महालक्ष्मी! मनुष्य में न तो विद्वता और न ही दूसरा कोई गुण आपके बिना शोभा नहीं देते तथा शीलवान व्यक्ति भी आपके बिना शोभ नहीं पाता है ॥१२॥

हे लक्ष्मी माता! जब तक आप प्रसन्न रहती हो, तभी तक मनुष्यों में रूप शोभा देता है तथा तभी तक शील भी शोभा देता है। तभी तक अन्य सभी गुण भी शोभा देते हैं ॥१३॥

हे लक्ष्मी माता! जो मनुष्य आप से सुशोभित है, वे ही पापों से रहित तथा राजाओं के समूह से मान पाते हैं। आपके होने से गुणहीन लोग गुणी तथा दुश्चरित्र लोग भी सदाचारी तथा वरेण्य हो जाते हैं ॥१४॥

लक्ष्मी ही रूप की शोभा बढ़ाती है तथा लक्ष्मी ही कुल को सुशोभित करती है। लक्ष्मी ही विद्या की शोभा बढ़ाती है और लक्ष्मी ही सभी विशेषताएँ प्रदान करती है। अर्थात् लक्ष्मी से मनुष्य विशिष्ट हो जाता है ॥१५॥

हे माँ लक्ष्मी! हम तुम्हारे रूप के लक्षणों व गुणों का वर्णन कैसे कर सकते हैं? हे विश्व-जननी माता! मेरे अभीष्ट को स्थायी करके हे माता! मेरी रक्षा करो ॥१६॥

हे दया की सागर माता! कष्टों से भयभीत दीन, सांसारिक दुःखों से पीड़ित, मुझ शरणागत निर्धन को शीघ्र ही धन प्रदान करके धनाढ्य कर दो ॥१७॥

हे लक्ष्मी माता! हे विष्णुप्रिया! तुम्हारे समीप शरण में आये हुए मुझ निर्धन को देखकर तत्काल मेरी हथेली में लक्ष्मी (धन) दे दो तथा वस्त्र, स्वर्ण तथा अद्भुत नये-नये अन्न भी दे दो ॥१८॥

हे लक्ष्मी! आप ही मेरी माता हो और आप ही मेरे पिता हो तथा हे लक्ष्मी आप ही भ्राता, सखा और विद्या भी आप ही हो ॥१९॥

हे महालक्ष्मी! मेरी रक्षा करो। हे देवताओं की स्वामिनी मेरी रक्षा करो। हे जगतमाता! बचाओ, बचाओ। शीघ्र दरिद्रता से बचाओ ॥२०॥

हे जगत का पालन करने वाली! आपको नमस्कार हो। बार-बार प्रणाम हो। हे धर्म को सहारा देने वाली और सम्पत्ति देने वाली माता! मेरा नमन स्वीकार करो ॥२१॥

मैं दरिद्रता के सागर में डूबा हुआ हूँ और रसातल में पहुँचा हुआ हूँ। हे रमा (लक्ष्मी)! मुझे डूबते हुए को शीघ्र ही हाथ से पकड़कर बचाओ। मेरा उद्धार करो ॥२२॥

हे लक्ष्मी माँ! मेरे बहुत कहने से या बार-बार विलाप करने से क्या लाभ होगा? हे विष्णु की प्रिया! मैं बार-बार सत्य कह रहा हूँ कि और कहीं कोई मुझे शरण देने वाला नहीं है ॥२३॥

तब अगस्ति के इन वचनों को सुनकर प्रसन्न हुई विष्णु की प्रिया (लक्ष्मी) मीठी वाणी से बोली — मैं तुम पर सदा ही प्रसन्न हूँ ॥२४॥

लक्ष्मी माता ने कहा —

यह तुम्हारे द्वारा कहा गया स्तोत्र जो भी मनुष्य पढ़ेगा और जो महाभाग्यशाली इसे सुनेगा, उसके मैं वशीभूत हो जाऊँगी ॥२५॥

जो इस स्तोत्र को नित्य भक्तिपूर्वक पढ़ेगा, उसकी अलक्ष्मी (दरिद्रता) नष्ट हो जाएगी। उसका ऋण भी समाप्त हो जाएगा तथा वह कोई भयानक वियोग नहीं देखेगा ॥२६॥

जो व्यक्ति प्रातः उठकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र को पढ़ेगा, मैं उसके घर में विष्णु भगवान् के साथ प्रसन्नतापूर्वक निवास करूँगी ॥२७॥

इस स्तोत्र का पाठक सुख व सौभाग्य से परिपूर्ण और बुद्धिमान, पुत्रवान, गुणवान, श्रेष्ठ तथा सभी भोगों का भोगने वाला हो जाएगा। अर्थात् सभी भोगों को भोग सकेगा ॥२८॥

अगस्ति द्वारा गाया गया यह महापवित्र स्तोत्र भगवान विष्णु को प्रसन्नता देने वाला तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थों का फलदाता है ॥२९॥

इस स्तोत्र के पाठक की राजसभा में जीत होगी और शत्रु उससे पराजित हो जोगा तथा भूत, प्रेत, पिशाच एवं व्याधों का भी उसे भय नहीं होगा ।।३०।।

पाठक को शस्त्र, अग्नि, जल-समूह आदि से कोई भय नहीं होगा। दुराचारियों व पापियों के लिए इस स्तोत्र का पाठ बहुत हानिकारक होगा - अर्थात् पाठक की इनसे सुरक्षा होगी ।।३१।।

घोड़ो, हाथियों के प्रकोष्ठों तथा गायों की शालाओं में इसका पाठ उनके दोषों की शान्ति क़े लिए तथा बड़े-बड़े पापों को नष्ट करने वाला होगा ।।३२।।

अगस्ति मुनि के द्वारा यह स्तोत्र प्रजाओं की हितकामना से कहा गया है तथा यह मनुष्यों को दीर्घायु, आरोग्य देने के साथ सभी सुखों को प्रदान करने वाला भी होगा ।।३३।।

।। इति भावार्थ सहित श्री महालक्ष्मी स्तोत्र ।।

●

श्रीमहालक्ष्मी अष्टक

इन्द्र उवाच :

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते ।
शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।१।।

नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयङ्करि ।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।२।।

सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयङ्करि ।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।३।।

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि ।
मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।४।।

आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्तिमहेश्वरि ।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।५।।

स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्तिमहोदरे ।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।६।।

पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि ।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।७।।

श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्कारभूषिते ।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ।।८।।

महालक्ष्म्यष्टकं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तियान्नरः ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति राज्यं प्राप्नोति सर्वदा ।।९।।

एककाले पठेन्नित्यं महापापविनाशनम् ।
द्विकालं यः पठेन्नित्यं धनधान्यसमन्वितः ।।१०।।

त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम् ।
महालक्ष्मीर्भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा ।।११।।

।। इति श्री महालक्ष्मी अष्टक ।।

हिन्दी अनुवाद :

इन्द्र बोले — श्रीपीठ पर स्थित और देवताओं से पूजित होने वाली हे महामाये! तुम्हें नमस्कार है। हाथ में शंख, चक्र और गदा धारण करने वाली हे महालक्ष्मि! तुम्हें प्रणाम है ।।१।।

गरुड़ पर आरूढ़ हो कोलासुर को भय देने वाली और समस्त पापों को हरने वाली हे भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें प्रणाम है ।।२।।

सब कुछ जानने वाली, सबको वर देने वाली, समस्त दुष्टों को भय देने वाली और सबके दुःखों को दूर करने वाली, हे देवि महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है ।।३।।

सिद्धि, बुद्धि, भोग और मोक्ष देने वाली हे मन्त्रपूत भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें सदा प्रणाम है ।।४।।

हे देवि! हे आदि-अन्त-रहित आदिशक्ते! हे महेश्वरि! हे योग से प्रकट हुई भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है ।।५।।

हे देवि! तुम स्थूल, सूक्ष्म एवं महारौद्ररूपिणी हो, महाशक्ति हो, महोदरा हो और बड़े-बड़े पापों का नाश करने वाली हो। हे देवि महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है ।।६।।

हे कमल के आसन पर विराजमान परब्रह्म-स्वरूपिणी देवि! हे परमेश्वरि! हे जगदम्ब! हे महालक्ष्मि! तुम्हें मेरा प्रणाम है ।।७।।

हे देवि तुम श्वेत वस्त्र धारण करने वाली और नाना प्रकार के आभूषणों से विभूषिता हो। सम्पूर्ण जगत में व्याप्त एवं अखिल लोक को जन्म देने वाली हो। हे महालक्ष्मि! तुम्हें मेरा प्रणाम है ।।८।।

जो मनुष्य-युक्त होकर इस महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्र का सदा पाठ करता है, वह सारी सिद्धियों और राज्य-वैभव को प्राप्त कर सकता है ।।९।।

जो प्रतिदिन एक समय पाठ करता है, उसके बड़े-बड़े पापों का नाश हो जाता है। जो दो समय पाठ करता है, वह धन-धान्य से सम्पन्न होता है ।।१०।।

जो प्रतिदिन तीन काल पाठ करता है, उसके महान् शत्रुओं का नाश हो जाता है और उसके ऊपर कल्याण-कारिणी वरदायिनी महालक्ष्मी सदा ही प्रसन्न होती हैं ।।११।।

।। इति हिन्दी भावार्थ ।।

●

देवी महालक्ष्मी का कवच

नारद उवाच :

आविर्भूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ।
महालक्ष्म्याश्च लक्ष्मीशस्तन्मे ब्रूहि तपोधन।।१।।

नारायण उवाच :

पुष्करे च तपस्तप्त्वा विरराम सुरेश्वरः।
आविर्बभूव तत्रैव क्लिष्टं दृष्ट्वा हरिः स्वयम् ।।२।।

तमुवाच हृषीकेशो वरं वृणु यथेप्सितम्।
स च वव्रे वरं लक्ष्मीमीशस्तस्मै ददौ मुदा।।३।।

वरं दत्त्वा हृषीकेशः प्रवक्तुमुपचक्रमे।
हितं सत्यं च सारं च परिणामसुखावहम्।।४।।

मधुसूदन उवाच :

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम्।
परमैश्वर्यजनकं सर्वशत्रुविमर्दनम्।।५।।

ब्रह्मणे च पुरा दत्तं विष्टपे च जलप्लुते।
यद्धृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्ययुतो विधिः।।६।।

बभवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्ययुता यतः।
सर्वैश्वर्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः।।७।।

पङ्क्तिश्छन्दश्च सा देवी स्वयं पद्मालया वरा।
सिद्ध्यैश्वर्यसुखेष्वेव विनियोगः प्रकीर्तितः।।८।।

यद्धृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी भवेत्।
मस्तकं पातुं मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया।।९।।

नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचने।
केशान्केशवकान्ता च कपालं कमलालया।।१०।।

जगत्प्रसूर्गण्डयुग्मं स्कन्धं संपत्प्रदा सदा।
ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु।।११।।

ॐ ह्रीं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु।
पातु श्रीर्मम कङ्कालं बाहुयुग्मं च ते नमः।।१२।।

ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः पादौ पातु मे संततं चिरम्।
ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम्।।१३।।

ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वांग पातु मे सदा।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः।।१४।।

इति ते कथितं वत्स सर्वसंपत्करं परम्।
सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम्।।१५।।

गुरुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स सर्वविजयी भवेत्।।१६।।

महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन।
तस्य च्छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि।।१७।।

इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीं स मन्दधीः।
शतलक्षप्रजापेऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः।।१८।।

- ब्रह्म वैवर्त पुराण, गणपति खंड, अ. २२

भावार्थ :

नारद बोले — हे तोपधन! लक्ष्मी के अधीश्वर भगवान् विष्णु ने वहाँ प्रकट होकर उन्हें महालक्ष्मी का कौन स्तोत्र और कवच प्रदान किया, बताने की कृपा करें।।१।।

नारायण बोले — इन्द्र पुष्कर क्षेत्र में भगवान् की तपस्या कर रहे थे, उन्हें अति दुःखी देखकर भगवान् स्वयं वहाँ प्रकट हो गये।।२।। भगवान् हृषिकेश ने उनसे कहा — यथेच्छ वरदान मांगो। उन्होंने लक्ष्मी की याचना की। भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रदान किया।।३।। वर प्रदान करके भगवान् हृषिकेश ने उनसे कुछ कहना भी आरम्भ किया, जो हित, सत्य, सारभाग और परिणाम में सुखप्रद था।।४।।

मधुसूदन बोले — हे शक्र! इस कवच को ग्रहण करो, जो समस्त दुःखों का नाशक, परम ऐश्वर्यप्रद एवं सम्पूर्ण शत्रुओं का मर्दन करने वाला है।।५।। समस्त जगत् के जलमग्न होने पर मैंने पहले समय में इसे ब्रह्मा को दिया, जिसे धारण कर ब्रह्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से सम्पन्न होकर संसार में श्रेष्ठ हो गये।।६।। सभी मनुगण समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न हो गये। सकल ऐश्वर्य के प्रदायक इस कवच के ब्रह्मा ऋषि, पंक्ति छंद तथा स्वयं कमला श्रेष्ठ देवता हैं और सिद्धि, ऐश्वर्य तथा सुख के लिए इसका विनियोग होता है। इस कवच को धारण कर लोग सर्वत्र विजयी होते हैं। पद्मा मेरे मस्तक की रक्षा करें, हरिप्रिया कण्ठ की रक्षा करें, लक्ष्मी मेरी नासिका की रक्षा करें, कमला दोनों नेत्रों की रक्षा करें, केशवकान्ता केशों की, कमलालया कपाल की, जगत्प्रसू युगल गण्डस्थल की और सम्पत्प्रदा दोनों कन्धों की सदा रक्षा करें। 'ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' सदा पीठ की, 'ॐ ह्रीं श्रीं पद्मालया स्वाहा' सदा वक्षःस्थल की और श्री मेरे कंकाल तथा दोनों बाहुओं की रक्षा करें, तुम्हें नमस्कार है।।७-१२।। 'ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः' निरन्तर मेरे चरण की रक्षा करे, 'ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा' नितम्ब की और 'ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरे सर्वांग की रक्षा करें। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरी चारों ओर से रक्षा करे।।१३-१४।। हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें अद्भुत कवच सुना दिया, जो समस्त सम्पत्ति समेत सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करता है।।१५।। सविधि गुरु की अर्चना करके जो इस कवच को कण्ठ या दाहिने बाहु में धारण करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है। महालक्ष्मी उसके घर का त्याग कभी नहीं करती है और प्रत्येक जन्म में छाया की भाँति उसके साथ रहती है।।१६-१७।। किन्तु जो मूर्ख बिना कवच जाने लक्ष्मी की आराधना करेगा, उसके लिए, लाख जप करने पर भी मंत्र सिद्धिप्रद नहीं होगा।।१८।।

।। इति भावार्थ सहित देवी लक्ष्मी का कवच ।।

●

ब्रह्म-वैवर्त पुराण में वर्णित

श्री महालक्ष्मी कवच

नारायण उवाच :

सर्वसम्पत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः
ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवी पद्मालया स्वयम् ।।१।।

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः।
पुण्यबीजं च महतां कवचं परमाद्भुतम् ।।२।।

ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम् ।
श्रीं मे पातु कपालं च लोचने श्रीं श्रियै नमः ।।३।।

ॐ श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदावतु।
ॐ श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम् ।।४।।

ॐ श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तान् सदावतु।
ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदावतु ।।५।।

ॐ श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदावतु।
ॐ श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदावतु ।।६।।

ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदावतु।
ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदावतु ।।७।।

ॐ श्रीं मों कृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदावतु।
ॐ ह्रीं श्रीं श्रीयै स्वाहा च मम हस्तौ सदावतु ॥८॥

ॐ श्रीनिवासकान्तायै मम पादौ सदावतु।
ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥९॥

प्राच्यां पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया।
पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया ॥१०॥

पद्मालया पश्चिमे मां वायव्यां पातु सा स्वयम्।
उत्तरे कमला पातु चैशान्यां सिन्धुकन्यका ॥११॥

नारायणी च पातूर्ध्वमधो विष्णुप्रियावतु।
संततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम ॥१२॥

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्।
सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥१३॥

सुवर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये।
यत् फलं लभते धर्मी कवचेन ततोऽधिकम् ॥१४॥

गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत् तु यः।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान् प्रतिजन्मनि ॥१५॥

अस्ति लक्ष्मीर्गृहे तस्य निश्चला शतपुरुषम्।
देवेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत् ॥१६॥

स सर्वपुण्यवान् धीमान् सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले ॥१७॥

यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोहभयैरपि।
गुरुभक्ताय शिष्याय शरण्याय प्रकाशयेत् ॥१८॥

इदं कवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मीं जगत्प्रसूम्।
कोटिसंख्यं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥१९॥

- श्रीब्रह्मवैवर्त पुराण (गणपतिखण्ड ३८/६४-८२)

भावार्थ :

श्रीनारायण बोले — (विप्रवर! भगवान पद्मनाभ ने अपने नाभि-कमल पर स्थित ब्रह्मा को लक्ष्मी का जो परम शुभकारक कवच प्रदान किया था, उसे सुनो। उस कवच को पाकर ब्रह्मा ने कमल पर बैठे-बैठे जगत की सृष्टि की और महालक्ष्मी की कृपा से वे लक्ष्मीवान हो गये। फिर पद्मालया से वरदान प्राप्त कर ब्रह्मा लोकों के अधीश्वर हो गये। उन्हीं ब्रह्मा ने पद्मकल्प में अपने प्रिय पुत्र बुद्धिमान सनत्कुमार को यह परम अद्‌भुत कवच दिया था। नारद! सनत्कुमार ने वह कवच पुष्कराक्ष को प्रदान किया था, जिसके पढ़ने एवं धारण करने से ब्रह्मा समस्त सिद्धों के स्वामी, महान, परमैश्वर्य से सम्पन्न और सम्पूर्ण सम्पदाओं से युक्त हो गये।)

समस्त-सम्पत्ति-प्रदायक इस कवच के प्रजापति ऋषि, बृहती छन्द, स्वयं पद्मालया देवी, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थ की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है, यह कवच परम अद्‌भुत और महान् होने का एकमात्र पुण्य बीज है।।१-२।। 'ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' मेरे मस्तक की रक्षा करे, 'श्रीं' मेरे कपाल की रक्षा करे, 'श्रीं श्रियै नमः' दोनों नेत्रों की रक्षा करे।।३।। 'ॐ श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा मेरे कानों की रक्षा करे। 'ॐ श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरी नासिका की रक्षा करे।।४।। 'ॐ श्रीं पद्मालयायै स्वाहा' सदा दाँतों की रक्षा करे। 'ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै' सदा दाँतों के छिद्रों की रक्षा करे।।५।। 'ॐ श्रीं नारायणेशायै' मेरे कण्ठ की सदा रक्षा करे। 'ॐ श्रीं केशवकान्तायै' सदा मेरे कन्धों की रक्षा करे।।६।। 'ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा' सदा नाभि की रक्षा करे, 'ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे' सदा मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करे।।७।। 'ॐ श्रीं मों कृष्णकान्तायै स्वाहा' सदा पृष्ठ की रक्षा करे, 'ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा' मेरे हाथों की सदा रक्षा करे।।८।। 'ॐ श्रीनिवासकान्तायै' सदा मेरे चरणों की रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करे।।९।। पूर्व दिशा में महालक्ष्मी, अग्निकोण में कमलालया, दक्षिण में पद्मा, नैर्ऋत्य में श्रीहरिप्रिया, पश्चिम में पद्मालया, वायव्य में वह स्वयं, उत्तर में कमला और ईशान में सिन्धुकन्यका मेरी रक्षा करे।।१०-११।। ऊपर की ओर नारायणी रक्षा करें, नीचे विष्णुप्रिया और मेरे चारों ओर विष्णुप्राणाधिका निरन्तर रक्षा करें।।१२।।

हे वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें सर्वेश्वर्यप्रद नामक कवच, जो समस्त मन्त्र-समुदाय का स्वरूप तथा परम अद्‌भुत है, बता दिया।।१३।। मेरु के समान सुवर्ण का पर्वत ब्राह्मणों

को दान करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है, उससे अधिक फल धर्मी को इस कवच द्वारा प्राप्त होता है।।१४।। सविधि गुरु की पूजा करके जो इस कवच को कण्ठ या दाहिने बाहु में धारण करता है, वह प्रतिजन्म में श्रीमान् होता है।।१५।। लक्ष्मी उसके घर सौ पीढ़ी तक निश्चल निवास करती हैं और वह देवेन्द्रों एवं असुरराजों से निश्चित अवध्य रहता है।।१६।। जिसके गले में यह कवच वर्तमान रहता है, वह समस्त पुण्यवान्, विद्वान, समस्त यज्ञों में दीक्षित और समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका हुआ होता है।।१७।। अतः लोभ, मोह एवं भय वश भी इसे जिस किसी को न प्रदान करे, गुरु-भक्त शिष्य को, जो शरण योग्य हो, बताये।।१८।। इस कवच का ज्ञान प्राप्त किये बिना जो जगज्जननी लक्ष्मी का जप करता है, उसके लिये करोड़ों की संख्या में जप करने पर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।।१९।।

।। इति महालक्ष्मी कवच भावार्थ सहित ।।

श्री आदिशंकराचार्यजी द्वारा रचित
अष्टलक्ष्मी स्तोत्रम्

आदि लक्ष्मी

सुमनसवंदित सुंदरि माधवि चंद्र सहोदरि हेममये
मुनिगण वंदित मोक्षप्रदायिनि मंजुळभाषिणि वेदनुते।
पंकजवासिनि देवसुपूजित सद्गुणवर्षिणि शांतियुते
जय जय हे मधुसूदन कामिनि आदिलक्ष्मि जय पालय माम् ।।१।।

धान्य लक्ष्मी

अयिकलि कल्मषनाशिनि कामिनि वैदिकरूपिणि वेदमये
क्षीरसमुद्भव मंगलरूपिणि मंत्रनिवासिनि मंत्रनुते।
मंगलदायिनि अंबुजवासिनि देवगणाश्रित पादयुते
जय जय हे मधुसूदन कामिनि धान्यलक्ष्मि जय पालय माम् ।।२।।

धैर्य लक्ष्मी

जयवर वर्णिनि वैष्णविभार्गवि मंत्रस्वरूपिणि मंत्रमये
सुरगण पूजित शीघ्र फलप्रद ज्ञानविकासिनि शास्त्रनुते।
भवभयहारिणि पापविमोचनि साधुजनाश्रित पादयुते
जय जय हे मधुसूदन कामिनि धैर्यलक्ष्मि जय पालय माम् ।।३।।

गज लक्ष्मी

जय जय दुर्गतिनाशिनि कामिनि सर्वफलप्रद शास्त्रमये
रथगज तुरग पदादिसमानुत परिजनमंडित लोकनुते।
हरि-हर ब्रह्म सुपूजित सेवित तापनिवारिणि पादयुते
जय जय हे मधुसूदन कामिनि श्री गजलक्ष्मि जय पालय माम् ।।४।।

संतान लक्ष्मी

अयि खगवाहिनि मोहिनि चक्रिणि राग विवर्धिनि ज्ञानमये
गुणगणवारिदि लोकहितैषिणि सप्तस्वरवर गाननुते।
सकल सुरासुर देव मुनीश्वर मानववंदित पादयुते
जय जय हे मधुसूदन कामिनि संतानलक्ष्मि पालय माम् ।।५।।

विजय लक्ष्मी

जय कमलासनि सद्गतिदायिनि ज्ञान विकासिनि गानमये
अनुदिममर्चित कुकुंमधूसर भूषितवासित वाद्यनुते।
कनक धारा स्तुति वैभववंदित शंकर देशिक मान्यपते
जय जय हे मधुसूदन कामिनि विजयलक्ष्मि जय पालय माम् ।।६।।

विद्या लक्ष्मी

प्रणत सुरेश्वरि भारति भार्गवि शोकविनाशिनि रत्नमये
मणिमय भूषित कर्णविभूषण शांतिसमावृत हास्यमुखे।
नवनिधि दायिनि कलिमलहारिणि काम्य फलप्रद हस्तयुते
जय जय हे मधुसूदन कामिनि विजयलक्ष्मि पालय माम् ।।७।।

धन लक्ष्मी

धिमि धिमि धिम् धिमि धिंधिमि धिंधिमि दुंदुभिनाद सुपूर्णमये
घुमघुम घुंघुम घुंघुम घुंघुम शंखनिनाद सुवाद्यनुते।
वेदपुराणेति हास सुपूजित वैदिकमार्ग प्रदर्शयुते
जय जय हे मधुसूदन कामिनि श्रीधनलक्ष्मि पालय माम् ।।८।।

भावार्थ :

(१) **आदिलक्ष्मी**

(हे देवी!) आप सज्जनों द्वारा वंदित, सौंदर्यशाली, माधवी, चन्द्रमा की भगिनि, स्वर्णमयी, मुनियों के द्वारा पूजित, मोक्ष प्रदायिनी, मंजुल-भाषिणि, वेदों की स्रोत हो। आपकी जय हो! जय हो! हे मधुसूदन कामिनी! हे आदिलक्ष्मी! मेरी रक्षा करो ।।१।।

(२) **धान्य लक्ष्मी**

(हे देवी!) आप कलियुग के अनिष्टों को नाश करने वाली, स्नेहमयी, वेदरूपिणी, वेदमर्मज्ञ, क्षीरसागर से प्रकट होने वाली मंगलरूपा, मंत्र-निवासिनी, मंत्रों द्वारा पूजित, मंगल-प्रदात्री, कमल में वास करने वाली, देवगण के आश्रय-स्थल ऐसे चरणों वाली हो। आपकी जय हो! जय हो! हे मधुसूदन कामिनी! हे धान्य लक्ष्मी! मेरी रक्षा करो ।।२।।

(३) **धैर्य लक्ष्मी**

(हे देवी!) आप श्रेष्ठ जय वर्णा, वैष्णवी, भार्गवी, मंत्रमयी, मंत्र-स्वरूपिणी, सुरगण पूज्या, शीघ्र फलप्रदा, ज्ञान का विकास करने वाली, शास्त्रों द्वारा पूजित, भवभय को हरण करने वाली, पाप विमोचन करने वाली, साधुजन के आश्रय-स्थल ऐसे चरणों वाली हो। आपकी जय हो! जय हो! हे मधुसूदन कामिनी! हे धैर्य लक्ष्मी! मेरी रक्षा करो ।।३।।

(४) **गज लक्ष्मी**

(हे देवी!) आप दुर्गति नाशक, स्नेही, सर्वफल प्रदान करने वाली, शास्त्रों का सार, रथों, गजों एवं अश्वों से घिरी, विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा द्वारा सुपूजित, ताप निवारक ऐसे चरणों वाली हो। आपकी जय हो! जय हो! हे मधुसूदन कामिनी! हे गज लक्ष्मी! मेरी रक्षा करो ।।४।।

(५) **संतान लक्ष्मी**

(हे देवी!) आप पक्षी को वाहन बनाने वाली, मोहिनी, चक्र धारण करने वाली, अनुरागिणी, ज्ञानमयी, गुणों का समुद्र, लोक-हितैषिणी, सप्त-स्वरों से युक्त गीतों

द्वारा पूजित, समस्त देवगण, दानवगण, मुनीगण एवं मानवों द्वारा पूजित ऐसे चरणों वाली हो। आपकी जय हो! जय हो! हे मुधसूदन कामिनी! हे संतान लक्ष्मी! मेरी रक्षा करो ॥५॥

(६) विजय लक्ष्मी

हे कमलवासिनी! आप की जय हो। आप सद्गति दात्री, ज्ञान को विकसित करने वाली, ज्ञानमयी, प्रतिदिन पूजित, कुंकुम से आच्छादित स्थानों में वास करने वाली, वाद्यों से वंदित, शंकर जैसे गुरुओं द्वारा 'कनकधारा' जैसी वैभव सम्पन्न स्तुति से जिसकी आराधना की गई हो, ऐसी हे मधुसूदन कामिनी! आपकी जय हो! जय हो! हे विजय लक्ष्मी! मेरी रक्षा करो ॥६॥

(७) विद्या लक्ष्मी

(हे देवी!) आप देवताओं की देवी हैं, जिनकी पूजा विनम्रता के साथ वे करते हैं। आप भारती, भार्गवी, शोकविनाशिनी, रत्नमयी, मणियुक्त क़र्णाभूषण से भूषित, स्मितयुक्त प्रसन्न मुखी, नवनिधि देने वाली, कलिमल का नाश करने वाली, वांछित फल प्रदान करे ऐसे हाथों वाली हे मधुसूदन कामिनी! आपकी जय हो! जय हो! हे विद्या लक्ष्मी! मेरी रक्षा करो ॥७॥

(८) धन लक्ष्मी

(हे देवी!) आप दुंदुभि नाद में सम्पूर्णतया लीन हैं, जिसकी मधुर ध्वनि है धिमि, धिमि, धिम्, धिमि, धिंधिमि, धिंधिमि। आप शंख के द्वारा पूजित हैं, जिसकी निनाद है घुमघुम घुंघुम घुंघुम घुंघुम। आप वेद पुराण इतिहास द्वारा सुपूजित, वैदिक मार्ग प्रदर्शिका हो। आपकी जय हो! जय हो! हे मधुसूदन कामिनी! हे धन लक्ष्मी! मेरी रक्षा करो ॥८॥

॥ इति भावार्थ सहित अष्ट-लक्ष्मी स्तोत्र ॥

श्रीकनक-धारा स्तोत्र

(श्री शंकराचार्यजी रचित)

अङ्गं हरेः पुलक-भूषणमाश्रयन्ती, भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम्।
अङ्गीकृताखिल-विभूतिरपाङ्ग-लीला, माङ्गल्यदाऽस्तु मम मङ्गल-देवतायाः ।।१।।

जैसे भँवरी अधखिले फूलों से संचित तमाल के वृक्ष का आश्रय लेती है, वैसे ही कल्याण-कारिणी लक्ष्मी की जो कटाक्ष-लीला विष्णु भगवान के रोमांच से विभूषित शरीर से सम्बद्ध है और जो सभी विभूतियों से युक्त है, वह मुझे मङ्गल-दायिनी हो ।।१।।

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः, प्रेम-त्रपा - प्रणिहितानि गतागतानि।
माला दृशोर्मधुकरीव महोत्पले या, सा मे श्रियं दिशतु सागर - सम्भवायाः ।।२।।

जैसे भँवरी विशाल कमल पर बार-बार आती-जाती रहती है, वैसे ही मुरारि विष्णु के मुख की ओर समुद्र-जन्मा लक्ष्मी की जो दृष्टि-माला प्रेमवश बारम्बार जाती है और लज्जा-वश लौट जाती है, वह मुझे 'श्री' (ऐश्वर्य) प्रदान करे ।।२।।

विश्वामरेन्द्र - पद-विभ्रम-दान-दक्ष - मानन्द - हेतुरधिकं मुर-विद्विषोऽपि,
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्द्ध-मिन्दीवरोदर - सहोदरमिन्दिरायाः ।।३।।

जो सभी देवों के स्वामी इन्द्र के पद का वैभव देने में समर्थ है; मुरारि विष्णु को भी जो अति आनन्द-कारिणी है; जो नील कमल के भीतरी भाग जैसी मनोरम है — वह लक्ष्मी जी की अधखुली आँखों की दृष्टि पल भर के लिए कुछ मुझ पर पड़े ।।३।।

आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा मुकुन्द - मानन्द - कन्दमनिमेषमनङ्ग - तन्त्रम्।
आकेकर-स्थित-कनीनिक-पक्ष्म-नेत्रम्, भूत्यै भवेन्मम भुजङ्ग - शयाङ्गनायाः ।।४।।

शेषनाग पर सोनेवाले विष्णु की पत्नी लक्ष्मी जी का नेत्र मुझे ऐश्वर्य-दायक हो, जिसकी पुतली और बरौनियाँ काम-वश हो अधखुली किन्तु एकटक दृष्टि से देखने वाले आनन्द-मूल श्री मुकुन्द को अपने पास पाकर तिरछी हो जाती हैं ।।४।।

बाह्वन्तरे मधु-जितः श्रित - कौस्तुभे या, हारावलीव हरि - नील - मयी विभाति।
काम - प्रदा भगवतोऽपि कटाक्ष - माला, कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ।।५।।

जो मधु असुर को जीतने वाले श्री विष्णु के कौस्तुभ मणि से शोभित वक्षःस्थल पर इन्द्रनील-मयी हारावली जैसी शोभा पाती है और जो भगवान के भी मन में काम को उत्पन्न कर देती है, कमलालया लक्ष्मी की वह कटाक्ष-माला मेरा कल्याण करे ।।५।।

कालाम्बुदालि-ललितोरसि कैटभारे - र्धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव।
मातुः समस्त-जगतां महनीय - मूर्ति - र्भद्राणि मे दिशतु भार्गव - नन्दनायाः ।।६।।

जैस बादलों में बिजली चमकती है, वैसे ही जो कैटभासुर के शत्रु श्री विष्णु के काली मेघ-माला के समान श्याम-वर्ण सुन्दर वक्ष पर प्रकाशित होती है और जो सभी लोकों की माँ हैं, उन भार्गव नन्दनी लक्ष्मी की पूजनीया मूर्ति मेरा कल्याण करे ।।६।।

प्राप्तं पदं प्रथमतः खलु यत् - प्रभावान्, माङ्गल्य-भाजि मधु-माथिनि मन्मथेन।
मय्यापतेत् तदिह मन्थरमीक्षणार्द्धम्, मन्दालसं च मकरालय-कन्यकायाः ।।७।।

मगरों के निवास-स्थान — समुद्र से उत्पन्न कन्या (लक्ष्मी) की वह मन्द, अलसायी हुई, मन्थर और अधखुली दृष्टि, जिसके प्रभाव से कामदेव ने मङ्गल-मय मधु-सूदन श्री विष्णु के हृदय में पहले-पहल स्थान पाया था, इस संसार में मुझ पर पड़े ।।७।।

दद्याद् दयानुपवनो द्रविणाम्बु - धारा - मस्मिन्नकिञ्चन-विहङ्ग - शिशौ विषण्णे।
दुष्कर्म - धर्ममवनीय चिराय दूरं, नारायण - प्रणयिनी - नयनाम्बु - वाहः ।।८।।

श्री नारायण की प्रेमिका लक्ष्मी का नेत्र-रूपी बादल, दया-रूपी अनुकूल हवा से चलता हुआ, दुष्कर्म-रूपी धूप को सदा के लिए दूर कर दुःख में पड़े हुए मुझ दरिद्र-रूपी पक्षी-शिशु पर धन-रूपी जल-धारा की वर्षा करे ।।८।।

इष्टा विशिष्ट - मतयोऽपि मया दयार्द्र - दृष्ट्या त्रिविष्टप - पदं सुलभं लभन्ते।
दृष्टिः प्रहृष्ट - कमलोदर - दीप्तिरिष्टाम्, पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्कर-विष्टरायाः ।।९।।

विशेष बुद्धिमान लोग जिनके भक्त होकर उनकी दयालु दृष्टि के प्रभाव से देव-पद को सहज ही पा लेते हैं, उन कमलासन लक्ष्मी की खिले हुए कमल की भीतरी भाग जैसी शोभावली दृष्टि मुझे अभीष्ट पोषण प्रदान करे ।।९।।

गीर्देवतेति गरुड - ध्वज-सुन्दरीति, शाकम्भरीति शशि - शेखर - वल्लभेति।
सृष्टि - स्थिति - प्रलय-केलिषु संस्थितायै, तस्यै नमस्त्रिभुवनैक - गुरोस्तरुण्यै ।।१०।।

जो सृष्टि के समय सरस्वती, स्थिति-काल में गरुड़-ध्वज श्रीविष्णु-पत्नी लक्ष्मी और प्रलय-लीला के समय चन्द्र-शेखर श्रीशिव-प्रिया दुर्गा (शाकम्भरी) के रूप में स्थित होती हैं, उन त्रिभुवन के एक-मात्र गुरु भगवान नारायण की सदा युवावस्था में रहने वाली प्रिया श्री लक्ष्मी को नमस्कार है ।।१०।।

श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभ-कर्म-फल-प्रसूत्यै, रत्यै नमोऽस्तु रमणीय - गुणार्णवायै।
शक्तयै नमोऽस्तु शत-पत्र-निकेतनायै, पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तम - वल्लभायै ।।११।।

शुभ कर्मों का फल देने वाली श्रुति को नमस्कार है, मनोहर गुण-सागरा रति को नमस्कार है, कमल-वासिनी शक्ति को नमस्कार है, पुरुषोत्तम की प्रिया पुष्टि को नमस्कार है ।।११।।

नमोऽस्तु नालीक - निभाननायै, नमोऽस्तु दुग्धोदधि - जन्म - भूत्यै।
नमोऽस्तु सोमामृत - सोदरायै, नमोऽस्तु नारायण - वल्लभायै ।।१२।।

पद्मानना लक्ष्मी को नमस्कार है, क्षीर-सागर से जन्मी श्री को नमस्कार है, चन्द्रमा और अमृत की बहन लक्ष्मी को नमस्कार है, नारायण की प्रिया को नमस्कार है ।।१२।।

नमोऽस्तु हेमाम्बुज-पीठिकायै, नमोऽस्तु भूमण्डल - नायिकायै।
नमोऽस्तु देवादि-दया-परायै, नमोऽस्तु शार्ङ्गायुध - वल्लभायै ।।१३।।

स्वर्ण-कमल के पीठ पर विराजमान लक्ष्मी को नमस्कार है, भूमण्डल की स्वामिनी कमला को नमस्कार है, देवों पर दया करने वाली लक्ष्मी को नमस्कार है, शार्ङ्ग-शस्त्र-धारी श्रीविष्णु की प्रिया को नमस्कार है ।।१३।।

नमोऽस्तु देव्यै भृगु-नन्दनायै, नमोऽस्तु विष्णोरुरसि स्थितायै।
नमोऽस्तु लक्ष्म्यै कमलालयायै, नमोऽस्तु दामोदर - वल्लभायै ।।१४।।

भृगु ऋषि को आनन्दित करने वाली देवी को नमस्कार है, श्री विष्णु के वक्ष पर स्थित रहने वाली लक्ष्मी को नमस्कार है, कमल-वासिनी लक्ष्मी को नमस्कार है, दामोदर-प्रिया को नमस्कार है ।।१४।।

नमोऽस्तु कान्त्यै कमलेक्षणायै, नमोऽस्तु भूत्यै भुवन - प्रसूत्यै।
नमोऽस्तु देवादिभिरर्चितायै, नमोऽस्तु नन्दात्मज - वल्लभायै ।।१५।।

कमल-नेत्रा कान्ति को नमस्कार है, भुवनों की जननी विभूति को नमस्कार है, देवादि सभी के द्वारा पूजित लक्ष्मी को नमस्कार है, नन्द-पुत्र श्रीविष्णु की प्रिया को नमस्कार है ।।१५।।

सम्पत्-कराणि सकलेन्द्रिय-नन्दनानि, साम्राज्य - दान-विभवानि सरोरुहाक्षि!
त्वद्-वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि, मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यत् ।।१६।।

हे कमल-नयना पूज्या माँ! आपकी स्तुतियाँ सम्पत्ति देने वाली, सभी इन्द्रियों को आनन्द-दायिनी, साम्राज्य-वैभव-कारिणी, पापों को दूर करने वाली हैं, वे मुझे सदा ही अपनाएँ और मैं सदा ही आपकी स्तुतियाँ करता रहूँ ।।१६।।

यत्-कटाक्ष-समुपासना-विधिः, सेवकस्य सकलार्थ - सम्पदः।
सन्तनोति वचनाङ्ग - मानसै - स्त्वां मुरारि - हृदयेश्वरीं भजे ।।१७।।

जिनकी कृपा-दृष्टि की उपासना-विधि भक्त को सभी अर्थ और सम्पत्ति-दायिनी है, उन्हीं आपको — विष्णु-प्रिया लक्ष्मी को मैं वाणी, शरीर और मन से भजता हूँ ।।१७।।

सरसिज - निलये सरोज - हस्ते, धवल -तरांशुक-गन्ध-माल्य-शोभे!
भगवति हरि - वल्लभे मनोज्ञे, त्रिभुवन-भूति-करि! प्रसीद मह्यम् ।।१८।।

हे भगवती विष्णु-प्रिये! कमल-वासिनि, कमल-हस्ते! उज्ज्वल - वस्त्र - गन्ध - माला-धारिणी! मनोरमे! त्रिलोकैश्वर्य-दायिनी! मुझ पर प्रसन्न हो ।।१८।।

दिग्धस्तिभिः कनक-कुम्भ - मुखावसृष्ट - स्वर्वाहिनी - विमल - चारु-जल-प्लुताङ्गीं।
प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष - लोकाधिनाथ-गृहिणीममृताब्धि - पुत्रीम् ।।१९।।

दिग्गजों द्वारा स्वर्ण-कलशों के मुख से गिराए गए आकाश-गंगा के स्वच्छ सुन्दर जल से अभिषिक्त शरीर वाली जगज्जननी को, जो सभी लोकों के स्वामी विष्णु की गृहिणी और सुधा-सागर की पुत्री हैं, मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ ॥१९॥

कमले कमलाक्ष-वल्लभे त्वं, करुणा - पूर - तरङ्गितैरपाङ्गः।
अवलोकय मामकिञ्चनानां, प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ॥२०॥

हे कमले! कमल-नेत्र-विष्णु-प्रिये! दीनों में अग्र-गण्य मैं दया का वास्तविक अधिकारी हूँ। मुझे आप अपनी करुणा-पूर्ण दृष्टि से देखें ॥२०॥

॥ फलश्रुति ॥

स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं, त्रयी-मयीं त्रिभुवन-मातरं रमाम्।
गुणाधिका गुरु-तर-भाग्य-भाजिनो, भवन्ति ते भुवि बुध-भाविताशयः ॥२१॥

उक्त स्तुतियों से जो प्रतिदिन वेद-त्रय-स्वरूपा त्रैलोक्य-जननी लक्ष्मी की स्तुति करते हैं, वे पृथ्वी पर अति गुणी, बहु-भाग्यशाली होते हैं और विज्ञ भी उनके विचार को मानते हैं ॥२१॥

॥ इति श्रीकनक-धारा स्तोत्र ॥

●

श्री विष्णु पुराण में वर्णित

श्रीलक्ष्मीजी एवं भगवान विष्णु की एक-रूपता

श्री पाराशर उवाच :

नित्यैवैषा जगन्माता, विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्व-गतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम!।।१।।

अर्थो विष्णुरियं वाणी, नीतिरेषा नयो हरिः।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम्।।२।।

स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टिः, श्रीर्भूमिर्भूधरो हरिः।
सन्तोषो भगवाँल्लक्ष्मीस्तुष्टिर्मैत्रेय! शाश्वती।।३।।

इच्छा श्रीर्भगवान् कामो, यज्ञोऽसौ दक्षिणा त्वियम्।
आज्याहुतिरसौ देवी, पुरोडाशो जनार्दनः।।४।।

पत्नि-शाला मुने! लक्ष्मीः, प्राग्वंशो मधु-सूदनः।
चितिर्लक्ष्मीर्हरिर्यूप, इध्मा श्रीर्भगवान् कुशः।।५।।

साम-स्वरूपी भगवानुद्गीति कमलालया।
स्वाहा लक्ष्मीर्जगन्नाथो, वासुदेवो हुताशनः।।६।।

शङ्करो भगवाञ्छौरिर्गौरी लक्ष्मीर्द्विजोत्तम!
मैत्रेय! केशवः सूर्यस्तत्प्रभा कमलालया।।७।।

विष्णुः पितृ-गणः पद्मा, स्वधा शाश्वत-पुष्टिदा।
द्यौः श्रीः सर्वात्मको विष्णुरवकाशोऽति-विस्तरः।।८।।

शशाङ्कः श्रीधरः कान्तिः, श्रीस्तथैवानपायिनी।
धृतिर्लक्ष्मीर्जगच्चेष्टा वायुः सर्वत्रगो हरिः॥९॥
जलधिर्द्विज! गोविन्दस्तद्-वेला श्री महा-मुने!
लक्ष्मी - स्वरूपमिन्द्राणी, देवेन्द्रो मधु-सूदनः॥१०॥
यमश्चक्र - धरः साक्षाद्, धूमोर्णा कमलालया।
ऋद्धिः श्रीः श्रीधरो देवः, स्वयमेव धनेश्वरः॥११॥
गौरी लक्ष्मी महा-भाग! केशवो वरुणः स्वयम्।
श्रीर्देव-सेना विप्रेन्द्र! देव - सेना - पतिर्हरिः॥१२॥
अवष्टम्भो गदा-पाणिः, शक्तिर्लक्ष्मीर्द्विजोत्तम!
काष्ठा लक्ष्मीर्निमेषोऽसौ, मुहूर्तोऽसौ कला त्वियं॥१३॥
ज्योत्स्ना लक्ष्मीः प्रदीपोऽसौ, सर्वः सर्वेश्वरो हरिः।
लता-भृता जगन्माता, श्रीविष्णुर्द्रुम - संज्ञितः॥१४॥
विभावरी श्रीर्दिवसो, देवश्चचक्र - गदा - धरः।
वर - प्रदो वरो विष्णुर्वधूः पद्म-वनालया॥१५॥
नद - स्वरूपी भगवाञ्छ्रीर्नदी - रूप - संस्थिता।
ध्वजश्च पुण्डरीकाक्षः, पताका कमलालया॥१६॥
तृष्णा लक्ष्मीर्जगन्नाथो, लोभो नारायणः परः।
रती - रागश्च मैत्रेय! लक्ष्मीर्गोविन्द एव च॥१७॥
किं चाति - बहुनोक्तेनं, संक्षेपेणेदमुच्यते॥१८॥
देव- तिर्यङ्-मनुष्यादौ, पुन्नामा भगवान् हरिः।
स्त्री-नाम्नी श्रीश्च विज्ञेया, नानयोर्विद्यते परम्॥१९॥

- विष्णु पुराण, १/८/१७-३५

भावार्थ :

(श्री मैत्रेय जी के प्रश्न के उत्तर में) **श्री पाराशर जी बोले** — हे द्विजोत्तम! भगवान् का कभी साथ न छोड़ने वाली जगज्जननी लक्ष्मी जी नित्य हैं और जिस प्रकार श्री विष्णु भगवान् सर्व-व्यापक हैं, वैसे ही ये भी हैं॥१॥

विष्णु अर्थ हैं, तो लक्ष्मी जी वाणी हैं। हरि न्याय, तो लक्ष्मी जी नीति। भगवान विष्णु बोध हैं, तो ये बुद्धि तथा वे धर्म हैं, तो लक्ष्मी जी सत्क्रिया। भगवान् जगत् के स्रष्टा हैं, तो

लक्ष्मीजी सृष्टि। श्रीहरि भूधर हैं, तो लक्ष्मी जी भूमि। भगवान् संतोष हैं, तो लक्ष्मी जी नित्य-तुष्टि। भगवान् काम हैं, तो लक्ष्मीजी इच्छा। वे यज्ञ हैं, तो ये दक्षिणा। श्री जनार्दन पुरोडाश हैं, तो देवी लक्ष्मी जी आज्या (घृत की आहुति)।।२-४।।

हे मुने! मधुसूदन यजमान-गृह हैं, तो लक्ष्मी जी पत्नी-शाला। श्री हरि यूप (यज्ञ-स्तंभ) हैं, तो लक्ष्मी जी चिति (इष्ट का चयन)। भगवान् कुशा हैं, तो लक्ष्मी जी समिधा। भगवान् साम-स्वरूप हैं, तो कमला देवी उद्गीति। जगत्पति भगवान् वासुदेव अग्नि हैं, तो लक्ष्मीजी स्वाहा।।५-६।।

द्विजोत्तम! भगवान् विष्णु शंकर हैं, तो श्री लक्ष्मी जी गौरी। इसी प्रकार हे मैत्रेय! श्री केशव सूर्य हैं, तो कमल-वासिनी श्री लक्ष्मी जी प्रभा। श्री विष्णु पितृ-गण हैं, तो श्री कमला नित्य-पुष्टि-दायिनी स्वधा। विष्णु अति विस्तीर्ण सर्वात्मक आकाश हैं, तो लक्ष्मीजी स्वर्गलोक। भगवान् श्रीधर चन्द्रमा हैं, तो लक्ष्मीजी अक्षय कान्ति। श्री हरि सर्वगामी वायु हैं, तो लक्ष्मीजी जगत्चेष्टा (जगत् की गति) और धृति (आधार)।।७-९।।

हे महा-मुने! श्री गोविन्द समुद्र हैं, तो हे द्विज! लक्ष्मीजी तट-भूमि। भगवान् मधुसूदन देवराज इन्द्र हैं, तो लक्ष्मी इन्द्राणी। चक्रपाणि भगवान् साक्षात् यम हैं, तो श्री कमला यम-पत्नी - धूमोर्णा। देवाधिदेव श्री विष्णु स्वयं कुबेर हैं, तो लक्ष्मी जी साक्षात् ऋद्धि। केशव स्वयं वरुण हैं, तो महाभागा लक्ष्मी जी गौरी। हे द्विजराज! श्री हरि देव-सेनापति स्वामी कार्तिकेय हैं, तो श्री लक्ष्मी जी देव-सेना।।१०-१२।।

हे द्विजोत्तम! भगवान् गदाधर (शक्ति) के आधार हैं, तो लक्ष्मी जी शक्ति। भगवान निमेष, तो लक्ष्मी जी कष्ठा हैं। वे मुहूर्त हैं, तो ये कला। सर्वेश्वर सर्व-रूप हरि दीपक हैं, तो श्री लक्ष्मी जी ज्योति। श्री विष्णु वृक्ष-रूप हैं, तो जगन्माता श्री लक्ष्मी जी लता।।१३-१४।।

चक्र-गदा-धर देव श्री विष्णु दिन हैं, तो लक्ष्मी जी रात्रि। वर-दायक श्री हरि वर हैं, तो पद्म-निवासिनी श्री लक्ष्मीजी वधू। भगवान् नद हैं, तो श्री नदी। कमल-नयन भगवान् ध्वजा हैं, तो कमलालया लक्ष्मीजी पताका।।१५-१६।।

जगदीश्वर परमात्मा नारायण लोभ हैं, तो लक्ष्मी जी तृष्णा तथा हे मैत्रेय! रति और राग भी साक्षात् श्री लक्ष्मी और गोविन्द-रूप ही हैं।।१७।।

अधिक क्या कहा जाए, संक्षेप में यह कहना चाहिए कि देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि में पुरुष-वाची तत्त्व श्रीहरि हैं और स्त्री-वाची तत्त्व श्री लक्ष्मीजी। इनके परे और कोई नहीं है।।१८-१९।।

।। इति श्री लक्ष्मी और भगवान विष्णु की एकरूपता भावार्थ सहित।।

●

नाम-स्तोत्र

देवी महालक्ष्मी का यह नाम-स्तोत्र अगस्ति विरचित माना जाता है। इस स्तोत्र में देवी के विविध नाम, विशेषण एवं विशिष्टताओं का उल्लेख किया गया है।

ॐकार रूपिणी लक्ष्मी विष्णोर्हृदयसंस्थिता
विश्वांगनंदिनी नंदा नंदाक्षी बिंदुरूपिणी ।।१।।

हस्तिनी पद्मिनी चक्रा सुताम्र-कमलाक्षिणी
विष्णुशक्तिरितिख्याता स्वानंदशक्तिरूपिणी ।।२।।

चतुःषष्ठीसुपीठस्था कोटिचंद्रसमप्रभा
आद्यंतरहिता शक्तिर्मालिनी मंत्रयोगिनी ।।३।।

ब्रह्मांडकोटिसंयुक्ता वाराहि हंसवाहिनी
नादबिंदुकला शक्तिर्योगिहृत्स्थानसंस्थिता ।।४।।

शास्त्रस्थाना उमा पद्मा पद्माक्षी ज्वालशोभिता
ज्वालाज्वलनदीक्षांता महादेव्यतिसुप्रभा ।।५।।

सूर्यकोटिप्रताकाशा चंद्रकोटिसुशीतला
सर्वमूर्तिकलासूक्ष्मा ब्रह्मरूपव्यवस्थिता ।।६।।

अकारोब्रह्मणोरूपमुकारो विष्णुरेवच
मकारं रुद्रमित्याहुरेता प्रणवदेवताः ।।७।।

ओंकारे संस्थितं चापि तथा शक्तित्रयं विदुः।
ओंकारो ध्यायते येन सर्वपापैः समुच्यते ।।८।।

भावार्थ :

देवी लक्ष्मी भगवान् विष्णु के हृदय में निवास करने वाली, ओङ्कार (प्रणव) स्वरूप वाली, सम्पूर्ण विश्व को प्रसन्न रखने वाली, स्वयं प्रसन्नमुखी तथा मस्तक में लगे तिलक के समान शोभा देने वाली हैं ।।१।।

देवी लक्ष्मी हस्तिनी व पद्मिनी नामक विशेष गुणों वाली, चक्र धारण करने वाली, शुद्ध ताम्बे जैसे कमल समान विशेष नेत्रों वाली, विष्णु भगवान् की शक्ति कही जाने वाली, स्वानंद एवं शक्ति के वर्धन करने वाली हैं ।।२।।

देवी लक्ष्मी चौंसठ शक्तिपीठों में विराजमान रहने वाली, करोड़ों चन्द्रमाओं के समान कान्तिवाली, आदि और अन्त से रहित, शक्तिमती, मालिनी एवं योग-मंत्रों वाली हैं ।।३।।

देवी लक्ष्मी करोड़ों ब्रह्माण्डों से परिपूर्ण, वराह-रूपिणी, हंस पर सुशोभित, नाद तथा बिन्दुकला में रहने वाली शक्ति तथा योगियों के हृदयों में स्थित रहने वाली हैं ।।४।।

देवी लक्ष्मी को सभी शास्त्रों में स्थान प्राप्त है, अर्थात् सभी शास्त्रों में उनका स्थान है, वे उमा (पार्वती), पद्मा (कमल-रूपिणी लक्ष्मी), कमल-सदृश सुंदर नेत्रों वाली, अग्नि की लपटों जैसी दमकने वाली ज्वाला के प्रज्ज्वलन में सुदक्षा, महादेवी एवं सुंदर प्रभाव वाली हैं ।।५।।

देवी लक्ष्मी करोड़ों सूर्यों के समान तेजस्वी एवं प्रताप वाली है तथा करोड़ों चन्द्रमाओं के समान शीतलता प्रदान करने वाली हैं। सभी मूर्ति-कलाओं के सूक्ष्माति सूक्ष्म ज्ञान वाली तथा ब्रह्म के रूप में सुव्यवस्थित है ।।६।।

देवी लक्ष्मी ओङ्कार-रूपिणी भी हैं। अकार को ब्रह्मा तथा उकार को विष्णु तथा मकार (म) को शंकर माना गया है। इस प्रकार अ + उ + म से ओम अर्थात् ओङ्कार देवता यही हैं ।।७।।

ओङ्कार रूप में स्थित देवी प्रजा की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के तीनों रूपों वाली मानिये। जो व्यक्ति ओङ्कार का ध्यान धरता है, वह सभी पापों से छुटकारा पा जाता है।।८।।

।। इति भावार्थ सहित नाम स्तोत्र ।।

●

द्वादश नाम स्तोत्र

त्रैलोक्य-पूजिते देवि! कमले विष्णु-वल्लभे ।
यथा त्वमचला कृष्णे तथा भव मयि स्थिरा ।।१।।
ईश्वरी कमला लक्ष्मीश्चला भूतिर्हरि प्रिया ।
पद्मा पद्मालया सम्पदुच्चैः श्रीः पद्म-धारिणी ।।२।।
द्वादशैतानि नामानि, लक्ष्मीं समपूज्य यः पठेत ।
स्थिरा लक्ष्मीर्भवेत् तस्य पुत्र-दारादिभीः सह ।।३।।

भावार्थ :

तीनों लोकों में पूजित हे विष्णु-प्रिये देवी कमले! जिस प्रकार तुम भगवान कृष्ण में स्थिर रूप से विद्यमान हो, उसी प्रकार मेरे पास स्थायी रूप से निवास करो। भगवती लक्ष्मी के बारह नाम ये हैं :—

१. ईश्वरी	२. कमला
३. लक्ष्मी	४. चला
५. भूति	६. हरि-प्रिया
७. पद्मा	८. पद्मालया
९. सम्पद्	१०. उच्चै
११. श्री एवं	१२. पद्मधारिणी

इन बारह नामों से पूजा करने वाले के पास पुत्र-पत्नी सहित लक्ष्मी स्थिर होकर निवास करती है।

।। इति द्वादश नाम स्तोत्र ।।

●

अष्टोत्तर-शत-नाम-स्तोत्रम्

।। श्रीशिव उवाच ।।

शतमष्टोत्तरं नाम्नां, कमलाया वरानने!
प्रवक्ष्याम्यति-गुह्यं हि, न कदापि प्रकाशयेत्।।१।।

महा-माया महा-लक्ष्मीर्महा-वाणी महेश्वरी।
महा - देवी महा - रात्रिर्महिषासुर-मर्दिनी।।२।।

काल-रात्रिः कुहूः पूर्णानन्दाद्या भद्रिका निशा।
जया रिक्ता महा-शक्तिर्देव-माता कृशोदरी।।३।।

शचीन्द्राणी शक्रनुता, शङ्कर-प्रिय-वल्लभा।
महा - वराह - जननी, मदनोन्मथिनी मही।।४।।

वैकुण्ठ-नाथ-रमणी, विष्णु-वक्षः-स्थल-स्थिता।
विश्वेश्वरी विश्व-माता, वरदाऽभयदा शिवा।।५।।

शूलिनी चक्रिणी मा च, पाशिनी शङ्ख-धारिणी।
गदिनी मुण्ड-माला च कमला करुणालया।।६।।

पद्माक्ष-धारिणी ह्यम्बा, महा-विष्णु-प्रियङ्करी।
गो-लोक-नाथ-रमणी, गो-लोकेश्वर-पूजिता।।७।।

गया गङ्गा च यमुना, गोमती गरुडासना।
गण्डकी सरयूस्तापी, रेवा चैव पयस्विनी।।८।।

नर्मदा चैव कावेरी, केदार - स्थल - वासिनी!
किशोरी केशव - नुता, महेन्द्र - परिवन्दिता।।९।।

ब्रह्मादि -देव - निर्माण - कारिणी देव-पूजिता।
कोटि-ब्रह्माण्ड-मध्यस्था, कोटि-ब्रह्माण्ड-कारिणी।।१०।।

श्रुति-रूपा श्रुति-करी, श्रुति-स्मृति-परायणा।
इन्दिरा सिन्धु तनया, मातङ्गी लोक-मातृका।।११।।

त्रिलोक-जननी तन्त्रा, तन्त्र-मन्त्र-स्वरूपिणी।
तरुणी च तमो-हन्त्री, मङ्गला मङ्गलायना।।१२।।
मधु-कैटभ - मथिनी, शुम्भासुर - विनाशिनी।
निशुम्भादि - हरा माता, हरि-शङ्कर-पूजिता।।१३।।

सर्व - देव - मयी सर्वा, शरणागत - पालिनी।
शरण्या शम्भु-वनिता, सिन्धु-तीर-निवासिनी।।१४।।

गन्धर्व-गान-रसिका, गीता गोविन्द-वल्लभा।
त्रैलोक्य - पालिनी तत्त्व - रूप-तारुण्य-पूरिता।।१५।।

चन्द्रावली चन्द्र-मुखी, चन्द्रिका चन्द्र-पूजिता।
चन्द्रा शशाङ्क-भगिनी, गीत-वाद्य-परायणा।।१६।।

सृष्टि-रूपा सृष्टि-करी, सृष्टि-संहार-कारिणी।

।। फल-श्रुति ।।

इति ते कथितं देवि! रमा-नाम-शताष्टकम् ।।१७।।

त्रि-सन्ध्यं प्रयतो भूत्वा, पठेदेतत् समाहितः।
यं यं कामयते कामं, तं तं प्राप्नोत्यसंशयम्।।१।।

इमं स्तवं यः पठतीह मर्त्यो,
वैकुण्ठ - पत्न्याः परमादरेण।।

धनाधिपाद्यैः परि-वन्दितः स्यात्,
प्रयास्यति श्रीपदमन्त्त - काले।।२।।

।। श्री अष्टोत्तर-शत-नाम-स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

श्री महालक्ष्मी स्तुति

महादेवी महालक्ष्मी नमस्ते त्वं विष्णु प्रिये ।
शक्तिदायी महालक्ष्मी नमस्ते दु:ख भंजनि ।।१।।

श्रैया प्राप्ति निमित्ताय महालक्ष्मी नमाम्यहम ।
पतितोद्धारिणि देवि नमाम्यहं पुनः पुनः ।।२।।

वेदांस्त्वा संस्तुवन्ति ही शास्त्राणि च मुर्हुमुः ।
देवास्त्वां प्रणमन्तिही लक्ष्मीदेवी नमोऽस्तुते ।।३।।

नमस्ते महालक्ष्मी नमस्ते भवभंजनी ।
भुक्तिमुक्ति न लभ्यते महादेवी त्वयि कृपा विना ।।४।।

सुख सौभाग्यं न प्राप्नोति पत्र लक्ष्मी न विद्यते ।
न तत्फलं समाप्नोति महालक्ष्मी नमाम्यहम ।।५।।

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम ।
नमस्ते आद्यशक्ति त्वं नमस्ते भीडभंजनी ।।६।।

विधेहि देवी कल्याणं विधेहि परमां श्रियम ।
विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मवन्तं जनं कुरु ।।७।।

अचिन्त्य रूप-चरिते सर्वशत्रु विनाशिनि ।
नमस्तेतु महामाया सर्व सुख प्रदायिनी ।।८।।

नमाम्यहं महालक्ष्मी नमाम्यहम सुरेश्वरी ।
नमाम्यहं जगद्धात्री नमाम्यहं परमेश्वरी ।।९।।

भावार्थ :

हे महालक्ष्मी, हे महादेवी, हे विष्णु भगवान की प्रिया! तुम्हें नमस्कार। हे शक्ति देने वाली, हे दुःखों को नष्ट करने वाली महालक्ष्मी! तुम्हें फिर नमस्कार हो ।।१।।

मैं लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए महालक्ष्मी को प्रणाम करता हूँ। हे पतितों का उद्धार करने वाली देवी! मैं तुम्हें बार-बार प्रणाम करता हूँ ।।२।।

चारों वेद तुम्हारी स्तुति गा रहे हैं तथा सभी शास्त्र भी पुनः पुनः वर्णन कर रहे हैं। सभी देवता लोग तुम्हें प्रणाम करते ही हैं। हे लक्ष्मी देवी! तुम्हें मेरा नमस्कार हो ।।३।।

महालक्ष्मीजी को नमस्कार तथा हे भव-बंधनें को काटने वाली तुम्हें नमस्कार। महादेवी लक्ष्मी की कृपा के बिना मनुष्य न भोगों को प्राप्त कर सकता है और न ही मोक्ष को ।।४।।

जहाँ माता लक्ष्मी उपस्थित नहीं होती, वहाँ कोई सुख व सौभाग्य को नहीं पा सकता। वह अपने कर्म-फल को भी नहीं प्राप्त कर सकता है। अतः मैं महालक्ष्मीजी को प्रणाम करता हूँ ।।५।।

हे लक्ष्मी माता, मुझे सौभाग्य और आरोग्य दे दो तथा परम सुख को भी प्रदान करो। हे आदिशक्ति! तुम्हें नमन हो। तुम ही सभी बंधनें को समाप्त करने वाली हो ।।६।।

हे देवी! मेरा कल्याण करो और मुझे परम लक्ष्मी अर्थात् अपार धन-धान्य दे दो। इस दास को विद्वान, यशस्वी तथा लक्ष्मीवान कर दो ।।७।।

हे सभी शत्रुओं का नाश करने वाली माता, तुम्हारे रूप व चरित्र का चिंतन भी नहीं किया जा सकता अर्थात् ये अवर्णनीय हैं। हे सभी सुखों को देने वाली महालक्ष्मी! तुम्हें प्रणाम ।।८।।

मैं महालक्ष्मी को प्रणाम करता हूँ। मैं सभी देवों की स्वामिनी को प्रणाम करता हूँ। मैं संसार का पालन करने वाली माता परमेश्वरी देवी को प्रणाम करता हूँ ।।९।।

।। इति भावार्थ सहित महालक्ष्मी स्तुति ।।

●

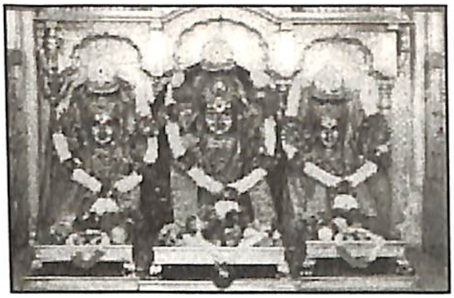

श्री महालक्ष्मी-स्तवन

सर्वेषामेव भूतानां महासौभाग्यदायिनी।
महालक्ष्मी र्महादेवी सर्वलोकैक मोहिनी।।
साम्राज्यदायिनी नित्यं सर्ववेदस्वरूपिणी।
महाविद्या जगन्माता मुनीनां मोक्षदायिनी।
ज्ञानिनां ज्ञानदा सत्यं दानवानां विनासिनी।।

- नारायण पू. ता. उपनिषद

भावार्थ : हे देवी! आप सभी मनुष्यों को महासौभाग्य देने वाली हो। हे महालक्ष्मी! हे महादेवी! आप समस्त जगत को मोहित करने वाली हो। हे महाविद्या! हे जगन्माता! आप मुनियों को मोक्ष देने वाली हो; ज्ञानियों को ज्ञान देने वाली हो तथा दानवों का विनाश करने वाली हो।

परिपालय देवि विश्वम्

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः।
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।।
श्रद्धा सतां कुल जन प्रभवस्य लज्जा।
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्।

(***भावार्थ*** : जो पुण्यात्माओं के घरों में स्वयं ही लक्ष्मी रूप से, पापियों के यहाँ दरिद्रता रूप से, शुद्धान्तःकरण वाले पुरुषों में बुद्धि रूप से, सत्पुरुषों में श्रद्धा रूप से तथा कुलीन मनुष्यों में लज्जा रूप से निवास करती हैं, उन भगवती को हम लोग नमस्कार करते हैं। देवि! विश्व का सर्वथा पालन कीजिये।)

●

संदर्भिका :

हिन्दी एवं अन्य भाषाओं की आधारभूत एवं सहायक पुस्तकें

१. अग्नि गृह्य सूत्र; सं. एल. आर. रवि वर्मा
२. अग्नि पुराण, प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
३. अथर्ववेद संहिता (संस्कृत), सं. पं. श्री दा. सातवलेकर
४. अथर्ववेद संहिता (मराठी भाषान्तर), अनु. डॉ. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव
५. अपरा, ले. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
६. अत्रि संहिता, प्र. श्री वेंकटेश्वर आरियन्टल सीरीज, मुंबई
७. आरती-संग्रह, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर
८. उत्तर प्रदेश की ऐतिहासिक विभूति, प्र. शिक्षा विभाग, उ. प्र.
९. उपनिषद् संग्रह (कुल १८८ उपनिषद्), (संस्कृत), सं. पं. जगदीश शास्त्री
१०. ऋग्वेद संहिता, व्याख्याकार - प्रो. सी. जी. काशिकर
११. ऋग्वेद संहिता (संस्कृत) सं. पं. श्री दा. सातवलेकर
१२. ऋग्वेद संहिता (मराठी भाषान्तर) अनु. डॉ. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव
१३. ऋग्वेद के सूक्तों का विकास, ले. ह. रा. दिवेकर
१४. ऐतरेय ब्राह्मण (सायण भाष्य हिन्दी टीका सहिता) प्र. तारा पब्लिकेशन, वाराणसी
१५. कन्नौज, ले. राजकुमार दीक्षित, प्र. शिक्षा विभाग, उ. प्र.
१६. काठक गृह्यसूत्र, सं. डब्ल्यु कैलेन्ड
१७. काठक संकलन, सं. डॉ. सूर्यकान्त
१८. कालिदास के नाटक, अनु. भगवतशरण उपाध्याय
१९. कुमार सम्भव (कालिदास रचित) सं. पं. परमेश्वरदीन
२०. कूर्म पुराण, प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

२१. गणेश पुराण (मराठी टीका सहित) सं. श्री गा. बालविनायक महाराज लालसरे

२२. गुप्तकालीन मुद्राएँ, ले. ए. एस. आल्तेकर

२३. जय गणेश, प्र. भारतीय विद्या भवन, मुंबई

२४. जय देवी सरस्वती, प्र. भारतीय विद्या भवन, मुंबई

२५. जैमिनीय ब्राह्मण, प्र. चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

२६. तैत्तिरीय आरण्य, सं. भी. जी आप्टे (आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज)

२७. तैत्तिरीय ब्राह्मण, प्र. आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज

२८. तुलसीदास (हिन्दी काव्य) ले. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

२९. तंत्रसार (अभिनव गुप्त कृत) अनु. पं. हेमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती

३०. तंत्रसार (हिन्दी), प्र. कल्याण मंदिर प्रकाशन, प्रयाग

३१. तांड्य (पंचविंश) ब्राह्मण, प्र. चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

३२. देवी भागवत (हिन्दी टीका), श्रीराम शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

३३. दुर्गा सप्तशती, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर

३४. निर्णय सिन्धु, सं. पं. नारायण राम आचार्य

३५. निर्णय सिन्धु, सं. व्रजरत्न भट्टाचार्य

३६. नेहरू अभिनन्दन ग्रंथ, प्र. अभिनन्दन समिति, दिल्ली

३७. नैषध महाकाव्य (श्री हर्ष प्रणीत) प्र. चौखम्बा अमर भारती, वाराणसी

३८. नौ रसों में हास्य रस, ले. विश्वनाथ शर्मा 'विमलेश'

३९. पद्म पुराण (दो भाग), टीकाकार पं. श्रीराम शर्मा

४०. पश्चिम एशिया और ऋग्वेध, ले. डॉ. रामविलास शर्मा

४१. पुराण-विमर्श, ले. आचार्य बलदेव उपाध्याय

४२. पंच-तंत्र (विष्णु शर्मा रचित), व्याख्या - डॉ. सुधाकर मालवीय

४३. पंचरात्रागम, ले. राघवप्रसाद चौधरी

४४. प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा, ले. राय गोविन्द चंद्र

४५. प्राणतोषिणी तंत्र (हिन्दी), प्र. कल्याण मंदिर प्रकाशन, प्रयाग

४६. बोधायन गृह्य सूत्र, सं. एस. के. सहगल

४७. बृहद्देवता (शौनकीय), अनु. रामकुमार राय

४८. बृहद्धर्म पुराण, सं. म. म. हरप्रसाद शास्त्री (कृष्णदास संस्कृत सीरीज, वाराणसी)

४९. बहन्नारदीय पुराण (दो भाग), प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

५०. ब्रह्म पुराण, प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

५१. ब्रह्म वैवर्त पुराण (तीन भाग), प्र. हि. सा. स., प्रयाग

५२. ब्रह्माण्ड पुराण, सं. के. वी. शर्मा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
५३. भविष्य पुराण (हिन्दी टीका), पं. बाबुराम उपाध्याय, प्र. हि. सा. स., प्रयाग
५४. भारत में शक्ति-पूजा, ले. स्वामी सारदानंद
५५. भारतीय कला प्रतीक, ले. डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव
५६. भारतीय संस्कृति एवं कला, ले. डॉ. रा. सिंह 'मधुर'
५७. भारतीय मूर्ति पूजा का इतिहास (मराठी), ले. प्र. रा. अहिरराव
५८. मत्स्य पुराण (दो भाग), प्र. हि. सा. स., प्रयाग
५९. महाभारत (छह खंड), प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर
६०. मुद्‌गल पुराण (मराठी टीका सहित), प्र. केशव भीकाजी ढवले, मुंबई
६१. मार्कण्डेय पुराण, प्र. हि. सा. स., प्रयाग
६२. मालती-माधव (भवभूति रचित), अनु. पं. शेषराज शर्मा
६३. मंत्र-कोश, सं. रमादत्त शुक्ल
६४. मंत्र पुष्पम् (संस्कृत), प्र. रामकृष्ण मठ, खार, मुंबई
६५. रघुवंश (कालिदास रचित), प्र. मोतीलाल बनारसीदास, मुंबई
६६. रुद्रयामल तंत्र (हिन्दी टीका सहित), डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी
६७. यजुर्वेद संहित, सं. पं. श्री. दा. सातवलेकर
६८. लक्ष्मी उपासना, ले. राधाकृष्ण श्रीमाली
६९. लक्ष्मी तंत्र, सं. वी. कृष्णमाचार्य
७०. लक्ष्मी महिमा, ले. दाऊदयाल गुप्त
७१. लक्ष्मी रहस्य, ले. अशोक कुमार गौड़
७२. लक्ष्मी वंदना (गुजराती), सं. जया मेहता
७३. लिंग पुराण, प्र. वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई
७४. व्रतराज, प्र. खेमराज श्रीकृष्णदास, मुंबई
७५. वामन पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. मालती त्रिपाठी
७६. वायु पुराण, प्र. हि. सा. स., प्रयाग
७७. वाल्मीकीय रामायण, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर
७८. विक्रमोर्वशी (कालिदास कृत), अनु. पं. श्रीरामचन्द्र मिश्र
७९. विश्व धर्म दर्शन, ले. सांवलिया बिहारी वर्मा
८०. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, प्र. वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई
८१. विष्णु पुराण, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर
८२. वैदिक एवं वेदोत्तर भारतीय संस्कृति, ले. गंगाधर मिश्र

८३. शतपथ ब्राह्मण (डॉ. अल्वेर्तेन बेबरेण संशोधित), प्र. चौखम्बा संस्कृत सीरीज
८४. शिव पुराण (हिन्दी टीका सहित), टीकाकर - पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र
८५. शिशुपाल वध (माघ प्रणीत), प्र. चौखम्बा अमर भारती, वाराणसी
८६. श्री अष्ट लक्ष्मी (गुजराती), ले. अरविन्द शास्त्री
८७. श्री कमला कल्पतरु, सं. रमादत्त शुक्ल
८८. श्री लक्ष्मी, ले. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'
८९. श्री लक्ष्मी सहस्रनाम, अनु. अनिल मोदी
९०. श्रीमद् भगवत गीता, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर
९१. श्रीमद् भागवत, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर
९२. श्री राधा का क्रम विकास, ले. एस. बी. दास
९३. श्री सूक्तम्, सं. स्वामी ऋतानंद पुरी
९४. सारदा तिलक, सं. आर्थर एभलान
९५. सौंदर्य लहरी (आद्यशंकराचार्य प्रणीत), प्र. कल्याण मंदिर प्रकाशन, प्रयाग
९६. संकलित कविताएँ और गद्य (सुब्रह्मण्य भारती), प्र. प्रकाशन विभाग, भारत प्रशासन
९७. स्कंद पुराण (हिन्दी टीका सहित), पं. श्रीराम शर्मा
९८. स्वप्रवासवदत्ता (भाष रचित), अनु. एम. आर. काले
९९. हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, ले. डॉ. भगवान सिंह
१००. हिन्दू दर्शन, ले. डॉ. कर्ण सिंह
१०१. हिन्दू धर्म कोश, ले. डॉ. राजबली पाण्डेय
१०२. हिन्दुओं के व्रत, पर्व और त्यौहार, ले. रामप्रताप त्रिपाठी
१०३. हर्ष-चरित (बाण भट्ट रचित), अनु. पं. नंदकिशोर शर्मा

अंग्रेजी भाषा की पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ

१०४. आर्कियोलोजीकल सर्वे ऑफ इंडिया, एन्युल रिपोर्ट १९१३-१४
१०५. आर्कियोलोजीकल सर्वे ऑफ इंडिया, एन्युल रिपोर्ट १९१५-१६
१०६. इंडिया एज सीन इन बृहत-संहिता, ले. अजय मित्र शास्त्री
१०७. इंडियन सिम्बोलीजम्, ले. राय गोविन्द चन्द्र
१०८. ए कैटेलोग ऑफ दि ब्राह्नेनिकल इमेजेज, ले. वासुदेवशरण अग्रवाल
१०९. एक्सकेवेशन एट हड़प्पा, ले. माधोस्वरूप वत्स
११०. एलिमेन्टस् ऑफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, ले. गोपीनाथ राव
१११. कल्ट आफ शक्ति इन तमिलनाडु, ले. टी. बी. महालिंगम्

११२. कैटेलोग आफ कोइन्स, ले. जे. एलेन
११३. गणेश कोश, ले. प्रो. एस. के. रामचंद्र राव
११४. गाडेस लक्ष्मी, ले. डॉ. उपेन्द्रनाथ धल
११५. ग्रेट विमेन आफ इंडिया, ले. शशिभूषण दास गुप्त
११६. जर्नल आफ न्युमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इंडिया, अंक १६
११७. जर्नल आफ न्युमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इंडिया, अंक १८
११८. जर्नल आफ यू. पी. हिस्टोरीकल सोसाइटी, वर्ष १९४८
११९. टेम्पल्स एंड लिजेन्ड आफ आन्ध्र प्रदेश, ले. एन. रमेशन
१२०. टेम्पल्स आफ तमिलनाडु, ले. आर. के. दास
१२१. टेम्पल्स एंड लिजेन्डस् आफ महाराष्ट्र, ले. एम. एस. माटे
१२२. दि ऑरिजन एण्ड डेव्हल्पमेन्ट आफ वैष्णवीजम्, ले. डॉ. सुवीरा जायसवाल
१२३. दि इण्डस सिविलिजेसन, ले. ए. एच. ह्वीलहर
१२४. दि डेव्हल्पमेन्ट आफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, ले. जे. एन. बनर्जी
१२५. दि ग्लोरियस आसाम, ले. राज मोहन नाथ
१२६. हेरिटेज एण्ड इंडियन आर्ट, ले. हेमावती
१२७. फरदर एक्सकेवेसन एट मोहें-जो-दड़ो, ले. मैके ई. जे. एच.
१२८. फारेनूनर्स इन एन्शियन्ट इंडिया, ले. डी. सी. सरकार
१२९. ब्रिटिश म्युजियम कैटेलाग आफ कोइन्स आफ एन्शियन्ट इंडिया
१३०. यक्ष (दो भाग), ले. आनन्द कुमार स्वामी
१३१. ला स्कल्पचर भरहुत, ले. आनन्द कुमार स्वामी
१३२. वैष्णवीजम् थ्रू दि एजेज, ले. रवीन्द्रकुमार सिद्धान्त शास्त्री
१३३. श्री सूक्त, ले. बी. बी. कोन्नूर
१३४. हिन्दू केनन्स आफ आइक्रोग्राफी पेंटिंग, ले. डी. एन. शुक्ल
१३५. हिन्दू गोडेसेज, ले. डेविड किन्सले
१३६. हिस्ट्री आफ इंडिया एंड इन्डोनेशियन आर्ट, ले. आनन्द कुमार स्वामी
१३७. हिस्ट्री आफ शाक्त रिलिजन, ले. नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य

हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ

१३८. कल्याण (वर्ष ९वाँ १९३५), शक्ति अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१३९. कल्याण (वर्ष १९वाँ १९४५), पद्म पुराण अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१४०. कल्याण (वर्ष १२वाँ १९४८), नारी अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)

१४१. कल्याण (वर्ष २३वाँ १९४९), उपनिषद अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१४२. कल्याण (वर्ष २५वाँ १९५१), स्कंद पुराण अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१४३. कल्याण (वर्ष ३१वाँ १९५७), तीर्थांक , प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१४४. कल्याण (वर्ष ३४वाँ १९६०), देवी भागवत अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१४५.. कल्याण (वर्ष ३६वाँ १९६२), शिव पुराण अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१४६. कल्याण (वर्ष ५१वाँ १९७७), वराह पुराण अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१४७. कल्याण (वर्ष ५६वाँ १९८२), वामन पुराण अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१४८. कल्याण (वर्ष ६१वाँ १९८७), शक्ति उपासना अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१४९. कल्याण (वर्ष ६४वाँ १९९०), देवता अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१५०. कल्याण (वर्ष ७१वाँ १९९७), कूर्म पुराण अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.) .
१५१. कल्याण (वर्ष ७४वाँ २०००), गरुड़ पुराण अंक, प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर (उ. प्र.)
१५२. पंचाल (अंक १२, सन् १९९९), प्र. पंचाल शोध संस्थान, कानपुर (उ. प्र.)
१५३. नवनीत (नवंबर, १९९९), प्र. भारतीय विद्या भवन, मुंबई
१५४. नवनीत (अक्टूबर, २०००), प्र. भारतीय विद्या भवन, मुंबई

●

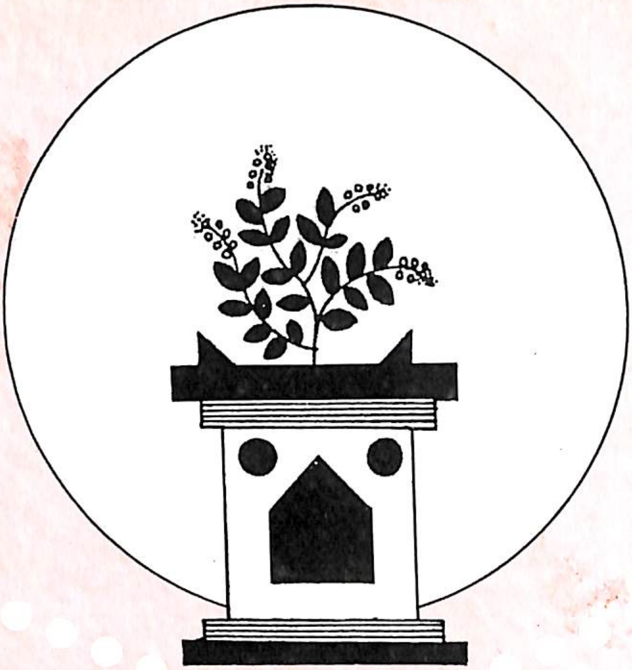

तुलसी वृन्दावन

यस्या रूपे वसेल्लक्ष्मीः स्कंधे सागरसम्भवा ।
पत्रेषु सततं श्रीश्च शाखासु कमला स्वयम् ।।
इन्दिरा पुष्पगा नित्यं फले क्षीराब्धिसम्भवा ।
तुलसीशुष्ककाष्ठेषु या रूपा विश्वव्यापिनी ।।
मज्जायां पद्मवासा च त्वचासु च हरिप्रिया ।

ISBN 817276-297-6